हृदयनाथ

लेखक

रमणलाल वसन्तलाल देसाई

प्रकाशक

भारतीय प्रकाशन मण्डल

वाराणसी—१

प्रकाशक
रघुनाथ प्रसाद
भारतीय प्रकाशन मण्डल
नन्दन साहू लेन, [illegible]

दिसम्बर, १९५७
मूल्य सजिल्द छः रुपये

रूपान्तरकार
गणेशप्रसाद जैन

मुद्रक
शिवनारायण उपाध्याय
नया संसार प्रेस
भदैनी, वाराणसी

दो शब्द

अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रचार के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में अपने गद्य का रूप स्थिर करने और उसके विकास की ओर ध्यान गया। सामाजिक क्रान्ति और समाज-सुधार का युग तो बहुत बाद आरंभ हुआ, यद्यपि उसका श्रीगणेश राजाराममोहन राय के ब्रह्मसमाज, थियासाफिकल सोसाइटी तथा आर्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने प्रारंभ किया था। गुजराती साहित्य मे बंधु-समाज के कतिपय सदस्यो ने इसका आरंभ किया। इसके पश्चात् गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी रचित सरस्वतीचन्द्र नामक अद्भुत उपन्यास प्रकाशित हुआ। श्रीनन्दशंकर का ऐतिहासिक उपन्यास 'करणघेलो' सामने आया जिसनें टेक्स्टबुक के रूप में साठ सत्तर वर्ष लौं एकाधिकार प्राप्त कर लिया।

वर्तमान शताब्दी मे दो महारथी मैदान में आये। श्री कन्हैयालाल मुंशी ने 'भारतीय स्वर्ण युग' के दर्शन करा कर जनता को विमुग्ध किया और श्री रमणलाल देसाई ने वर्तमान क्रान्तिकारी युग के अनुरूप सामाजिक उपन्यास लिखकर साहित्य को गौरव प्रदान किया।

श्री देसाई का जन्म १८९२ मे वड़ौदा के शिनोर ग्राम मे हुआ था। आपने १९१६ में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की और वड़ौदा स्टेट मे सर्विस करनें लगे।

आप जन्मजात साहित्य प्रेमी थे। १९१७ से ही आपने लेख लिखनो आरंभ किया और १९२० मे 'संयुक्ता' नाटक लिख कर अपनी प्रतिभा के लिए प्रसिद्धि प्राप्त करने लगे। सन् १९२५ में आपने 'शंकित हृदय' नामक दूसरा नाटक लिखा और १९२५ से सामाजिक उपन्यास लिखना ही अपना ध्येय

वना लिया। जयंत, कोकिला, शिरीष तथा 'हृदयनाथ' लिखकर आप पूर्णतया यशस्वी उपन्यासकार माने जाने लगे। इसके वाद आप प्रति वर्ष एक धारा-वाही उपन्यास 'सयाजी-विजय' पत्र के लिए लिखा करते थे तथा एक अन्य सामाजिक उपन्यास भारतीय 'स्वातंत्र्य आंदोलन' की विचारधारा को पुष्ट करनें के विचार से लिखा करते थे। आपके लिखने का ढंग निराला था।

एक वार स्व० प्रेमचंदजी, स्व० जयशंकर प्रसाद जी तथा श्री प्रवासीलाल वर्मा मेरे साथ उनसे मिलने गये। साहित्य-चर्चा हो रही थी। वे एक फाइल खोले कुछ लिखते भी जा रहे थे। यह कहने पर कि यदि कुछ जरूरी रिपोर्ट आदि लिख रहे हों तो हम लोग रुक सकते हैं—श्री देसाई महोदय ने कहा कि यह तो धारावाही उपन्यास का अंश है जो आज ही भेज देना है। मैं तो यों ही आप लोगों से वातचीत करते हुए भी लिख लेता हूं। किसी जिले के अधिकारी को कहाँ फुर्सत कि वह शांति में बैठ सके।

इस प्रकार श्री देसाई के सामाजिक उपन्यासों ने गुजराती साहित्य में यशस्वी स्थान प्राप्त किया है। प्रायः १५० पुस्तकें आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं।

आज से प्रायः तीन वर्ष पूर्व जब वे काशी पधारे थे तो भारतीय प्रकाशन मंडल के संचालक श्री रघुनाथ प्रसाद जी तथा श्री गणेशप्रसाद जी 'हृदयनाथ' के अनुवाद की प्रतिलिपि उनको दिखलाने ले गये थे। मैं संयोगवश वहाँ था। उन्होंने कुछ अंश सुना तथा संतोष प्रगट किया।

'हृदयनाथ' उनकी सफल रचना रही है। उसका अनुवाद कराके प्रकाशकों ने हिंदीवालों का उपकार किया है। इस युग में यह परम आवश्यक है कि हिंदी भाषा में गुजराती, मराठी, बंगला, तामील, तेलगु आदि सभी भाषाओं की प्रसिद्ध कृतियों का विशुद्ध अनुवाद किया जाय। इसमें भाषा विषयक विवाद समाप्त होगा और साहित्य को हम सव पूरा आदर प्रदान कर सकेंगे। मैं प्रकाशकों को इस अनुवाद के प्रकाशनार्थ बधाई देता हूं।

—सांवलजी नागर

अपनी बात

गुजरात की धरती का भारत ऋणी है। राष्ट्रपिता बापू उसी की देन थे। साहित्य-क्षेत्र में भी वहाँ अनेक कुशल माली हुए और हैं। उनके उद्यान का सौरभ दिग्दिगन्त को सुरभित करे, ऐसा है। इन महारथियों में श्री रमणलाल वसन्तलाल देसाई का नाम प्रथम श्रेणी में आता है। जीवन भर आप अपने साहित्यिक उद्यान को सींचते रहे। सदा नवीन सौरभ से पूरित नये-नये पुष्प गुजराती भाइयों को उपहार में प्राप्त होते रहे हैं। मैंने भी उनके उद्यान की दस कलियों को तोड़ कर (हिन्दी रूपान्तर कर) उन्हें अपनी वाटिका में लगाया।

'हम क्यों रुकें?' (कहानीसंग्रह) की सुगन्ध ने हिन्दीभाषियों को अत्यधिक मोहा, उसके सौरभ से मुग्ध हो उन्होंने उसे सम्मानित किया। यह श्री देसाई जी की लेखनी का चमत्कार था। मैले घूँघट के भीतर के प्राकृतिक सौंदर्य्य ने अपनी छाप लोगों पर डाली।

उसी समय हृदयनाथ का अनुवाद भी समाप्ति पर था। फिर भी इतने विलम्ब से प्रकाशित होने का कारण केवल विधि की विडम्बना ही कहना चाहिये। आज इतने वर्षों पश्चात् भी प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के कर-कमलों में भेंट करते हुए हमें इस कारण पर्याप्त सन्तोष है कि यह आदरणीय देसाई जी की ऐसी कृति है जो मनोरञ्जन के साथ ही साथ एक गम्भीर संदेश की भी द्योतक है। इससे पाठकों की विचारधारा को एक नवीन मोड़ मिलेगा।

श्री देसाई जी के उद्यान के इस पुष्प में जो सुगन्ध आपको मिलेगी उसमें उनके आत्म-भावों का सौरभ, उनकी सूक्ष्म दृष्टि, उनका राजनैतिक और सामाजिक अध्ययन आप परख पावेंगे। आज से ४० वर्ष पूर्व उनकी दृष्टि ने जो देखा वह आज सत्य है, यथार्थ है। उनका संदेश यह पुस्तक है। साथ ही आप विचार कर सकेंगे कि रोमान्स के अभाव में भी उपन्यास

कितना रोचक रचा जा सकता है। देसाई जी की इस अनुपम सूझ और संदेश के लिये उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा होगा।

आभार-प्रदर्शन में इतना ही कह सकता हूँ कि मैं उनका पुजारी हूँ, और उनकी आत्मा से मेरा साग्रह निवेदन है कि वे साहित्य में मुझे अनुराग और प्रेरणा दें।

श्री मुकुन्द लाल जी बी० ए० का मैं विशेष कृतज्ञ हूँ। आपकी तीस वर्षों की हिन्दी साहित्य की अनवरत सेवा से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। आपका स्थान उन व्यक्तियों में आता है जो कार्य्य करते हैं ढोल नहीं पीटते। हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए जो अपने सर्वस्व की बाजी लगा दे, दुःख को सुख मानते हुए बिना घबड़ाये बराबर अग्रसर होता जाय वह साधारण नहीं है।

मुझे गुजराती भाषा का जो थोड़ा साधारण सा ज्ञान प्राप्त हुआ है उसमें यथेष्ट सहयोग आपका ही रहा। प्रारम्भिक प्रेरणा आपके द्वारा ही हुई।

नाना भाई और मित्र श्री माधव प्रसाद जी मिश्र के प्रति आभार प्रदर्शित करना मेरा प्रथम पवित्र कर्तव्य है। नाना भाई से भाषासम्बन्धी कठिनाइयों में सहयोग और माधव जी से प्रोत्साहन इन दोनों के योग का प्रतिफल यह पुस्तक 'हृदयनाथ' आपके कर-कमलों में है।

यदि मिश्र जी का सहयोग न प्राप्त होता तो सम्भवतः मैं इस क्षेत्र में न आ पाता।

प्रकाशक श्री रघुनाथ प्रसाद जी का मैं सदा आभारी रहूँगा जिन्होंने मुझे हमेशा उत्साहित किया और उसी का प्रतिफल है कि 'हम क्यों रुकें ?' के बाद 'हृदयनाथ' का भी अनुवाद हो सका।

पाठकों से मुझे जो उत्साह प्राप्त हुआ उसके लिये मैं उनका चिर ऋणी हूँ।

—गणेश प्रसाद जैन

हृदयनाथ

१

विरोधाभास

कमरा छोटा था, परन्तु वह उच्चकोटि की सजावट की कला का प्रतीक था। जमीन पर बिछे हुए बहुमूल्य गलीचों पर चलने से थोड़ी-सी भी पदध्वनि नहीं सुनायी पड़ती थी। सुन्दर कुर्सियाँ, मखमल के मढ़े हुए मनोहर आसन और एक ओर झूला; भीत पर आदमकद आईना और देश-विदेश के ख्यतिप्राप्त चित्रकारों की तूलिका के भव्य चित्र, खूँटियों पर साटनके वेष्ठनों से वेष्ठित तन्तुवाद्य और बीचोबीच गुलाबजल की मधुर सुवास बिखेरता चाँदी का नन्हाँ-सा फौव्वारा। यदि सुख के साधनों से यथार्थतः सुख प्राप्त होता हो तो इस स्थान पर सुख प्राप्त होना ही चाहिए।

परन्तु सुख के इन साधनों का उपयोग करने वाला युवक अन्यमनस्क सा बैठा हुआ था। कुर्सी की मखमली गद्दी पर स्वाभाविक रीति से हाथ फिराने पर भी उसे स्पर्श द्वारा प्राप्त होती कोमलता का बोध नहीं होता था। वीनस की सौंदर्य्यपूर्ण छोटी प्रतिमा पर उसकी दृष्टि ठहरती, किन्तु उसकी लावण्ययुक्त रेखायें उसकी दृष्टि के लिये सर्जित ही नहीं हुई हों ऐसा प्रतीत होता था। फौव्वारे से अपने नियमित क्रम से ऊपर की ओर उड़ता गुलाबजल अपने मनोहारी सुवास से कमरे के कण-कण को सुवासित बना रहा था, परन्तु इस सुवास का अस्तित्व उस युवक के मन को तनिक भी प्रफुल्लित नहीं बना पा रहा था।

यह मखमल, वीनस की मूर्ति तथा फौव्वारा, कोई भी अपना प्रभाव उस युवक पर नहीं डाल पा रहे थे, कौन इसे निश्चयपूर्वक कह सकता है! उसके मुख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस साधनों का स्वाभाविक प्रभाव उस पर नहीं

पड़ रहा है। एक ही चन्द्रमा संयोगी और वियोगी पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालता है। तब यह युवक मखमल पर हाथ फिराते हुए, वीनस पर दृष्टि डालते हुए और फौव्वारे की सुवास ग्रहण करते हुए मन में क्या अनुभव करता है इसे कौन बतला सकता है ?

किन्तु यह यथार्थतः युवक है क्या ? यौवन की मर्य्यादा कब तक ? कहाँ तक ? पैंतीस वर्ष के ऊपर की वय में क्या वस्तुतः यौवन रहता है ? अरविन्द के मुख पर प्राथमिक यौवन के स्फुटित होते ही किशोरावस्थाके भाव अदृश्य हो चुके थे। भरावदार मुख पर निर्दोष मुस्कराहट अथवा शर्माती छिपती विलासप्रियता न थी। इस मुख पर भोग-विलास का प्रगाढ़ परिचय अंकित हो चुका था। अब अरविन्द के मुख पर उस परिचित विलास से विराम पाने की आकुलता से भरे भाव दिखलाई पड़ने लगे थे, अथवा अभी तक अतृप्त हुई वांछायें मुख पर असन्तोष की छाया फ़ैला रही थीं ? यदि दोनों भाव परस्पर खींच-तान भी कर रहे हों तो कौन जानता है ?

अरविन्द ने निःश्वास छोड़ा। साथ ही किवाड़ खुला और एक हृष्ट-पुष्ट युवक अन्दर आया। वह मोटी खादी का कुरता-धोती पहने था। दोनों ही वस्त्र अत्यधिक स्वच्छ थे। कुरते के अन्दर से झलकती उसकी चौड़ी छाती तथा पुष्ट गला उसकी ओर देखनेवालों का ध्यान आकर्षित करें ऐसे थे। उसकी आँखों तथा मुख पर कठोरता का भास होता था, किन्तु ध्यानपूर्वक देखने वालों को निश्चय हो जाता था कि यह कठोरता कृत्रिम है। वह अरविन्द का छोटा भाई हृदयनाथ था।

"कैसे आये हृदय ?" अरविन्द ने अपने छोटे भाई से पूछा। जैसे जीवन में कोई रस अथवा उत्साह न हो ऐसे शिथिल स्वरसे अरविन्द ने प्रश्न किया। हृदयनाथ के मुख की कठोर रेखायें भी क्वचित् तिरस्कार के भावों का दर्शन करा देती थीं। यह कसरती संयमी युवक, विलास के साधनों से परिपूरित इस कमरे में शायद ही कभी पैर धरता था, और जब कभी भी इस कमरे में आना पड़ता तब उसके मन ऐसी तिरस्कार-वृत्ति

जाग उठती, मानो कोई महाराजा झोपड़ी में प्रवेश कर रहा हो। उसने उत्तर दिया—

"जलसे का समय हो गया है। प्रतीक्षा के पश्चात् आपको ले चलने के लिए आया हूँ।"

"कैसा जलसा?" प्रातः निश्चित हुई बात विस्मृत हो जाने के कारण अरविन्द ने पूछा।

"क्यों? हमारी व्यायाम-शाला का आपने सभापतित्व स्वीकार किया था न!"

"हाँ-हाँ! उसका तो मुझे ध्यान ही न रहा। परन्तु हृदय! मेरे बिना काम नहीं चल सकेगा क्या? किसी दूसरे को चुन लो।"

अपने बड़े भाई को सभापति-पद पर सुशोभित कर व्यायाम-शाला को अच्छी आर्थिक सहायता दिलाने के विचार से हृदयनाथ ने आज के उत्सव का आयोजन किया था। दोनों भाइयों की वय में १० वर्ष का अन्तर था। दोनों का जीवनचर्य्या में बड़ा अन्तर था। जहाँ अरविन्द को जीवन का कलामय भाग आकर्षित करता वहाँ हृदयनाथ के मन को जीवन में घोर रौद्र रूप आकर्षित करता था। अरविन्द उद्यान में उड़ते हुए फौव्वारों के बीच सितार की गूँज में अपने को खो देता था, और हृदय एक व्यायामशाल स्थापित कर उसमें अपना शरीर दृढ़ और बलिष्ठ बनाने के सिवा अपने सरीखे वज्र-शरीरी जन के निर्माण का प्रयत्न इस व्यायामशाला द्वारा करता था।

फिर भी दोनों भाइयों में प्रेम था। हृदयनाथ बड़े भाई का पूर्ण सम्मान करता था। अरविन्द छोटे भाई की विचित्रताओं के पोषण में थोड़ी भी बाधा नहीं डालते थे। अतः अरविन्द की विलास प्रियता के प्रति हृदयनाथ के मन में तिरस्कार था, और अतिशय कठोर आदर्श दिनचर्या के पालन में रमे हुए अव्यावहारिक युवक हृदयनाथ की मूर्खतापूर्ण यही झक अरविन्द का विनोद करती।

सभापति-पद की स्वीकृति के पश्चात् उसे भूल जाना और स्मरण दिलाने

के लिए आने पर अन्तिम घड़ी में किसी दूसरे को चुन लेने के लिए कहना, हृदयनाथ को यह मानसिक शिथिलता अक्षम्य लगी। अरविन्द यदि उसका भाई न होता तो..........तो कौन जाने हृदय क्या कहता और क्या करता! इस क्षण तो केवल अश्रद्धा के भाव उसके मुख पर उदित हो उठे और एक क्षण पश्चात् उसने कहा—

"ठीक है। मैं दूसरी व्यवस्था कर लूँगा।"

इतना कह वह लौट पड़ा। अरविन्द को लगा कि जीवन में अतिशय गम्भीर दीखनेवाले उसके भाई को उसका व्यवहार निन्दनीय लगा। किसी के भी मन को दुखी कर देनेवाली कठोरता अरविन्दके स्वभाव के विपरीत थी। उसने मुस्कराते हुए हृदय को लौटने के लिये पुकारा :—

"हृदय! मोटर तैयार है!"

"जी हाँ!"

"मैं तुरन्त चल रहा हूँ।"

इतना कह अरविन्द ने पास में रक्खी हुई घण्टी बजायी। घण्टी यही धनिकों तथा सत्ताधीशों के जीवन का अङ्ग बनती जा रही है। घण्ट की जादूभरी पुकार सुन दो सेवक अन्दर आये। अरविन्द ने सेवकों से पहिनने के कपड़े मँगवाये। नियमित डग भरते सेवकों ने समीपवाले छोटे कमरे में जा दो-तीन आलमारियों के किवाड़ खोले और बन्द किये। पुनः पहिले जैसे डग भरते हुए हाथों में वस्त्रों का भार उठाए लौटे। ड्रेसिङ्ग रूम में अरविन्द ने प्रवेश किया और कपड़ों का परिवर्तन करना आरम्भ किया। कपड़ों के परिवर्तन के बीच के समय में हृदयनाथ ने थोड़ी देर में भाई के निम्नलिखित उद्गार सुने।

"इसकी बखिया खुल गई है! यह धब्बा कैसे लगा? इसमें सिकुड़न कैसे पड़ी? तेरी समझ में यह नहीं आता कि इसमें नैप्थलीन की महँक आ रही है?"

जिन वस्त्रों की सुरक्षा के लिये दो-दो नौकर हों फिर भी जिनकी इतनी अधिक टीका करनी पड़े वे वस्त्र क्या कभी भी पहिनने योग्य हो सकते हैं ? इस प्रकार का विचार हृदयनाथ के मन में उत्पन्न हुआ। कपड़े की चमक-दमक को धनिकों की मिटती हुई पौरुषता के चिन्ह-रूप में वह मानता था। अपने ही भाई में धनिकों की विलासिता के सभी अवगुण उसे प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होते थे, जिससे उसके मन के परिताप का पार न रहता और मानो भाई के पाप के निवारणार्थ ही उसका जन्म हुआ हो, इस कारण भी वह अपने शरीर का अधिकाधिक दमन करता था।

कुछ समय पश्चात् अरविन्द कपड़े पहनकर तैयार हो गया। मधुर सुगन्ध उसके वस्त्रों से प्रसारित हो रही थी। क्षुद्रमनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए प्रस्तुत किये हुए बाह्योपचार के प्रति तिरस्कार के भावों को व्यक्त होने देने से रोकते हुए हृदयनाथ आगे बढ़ा।

कुछ आगे बढ़ते ही हृदयनाथ का कमरा पड़ा। अरविन्द ने कमरे के अन्दर दृष्टि डाली। कमरे का दरवाजा खुला था। पहलवानों तथा कसरत-प्रेमियों के चित्र भीत पर टँगे हुये थे। मुगदल की भारी-भारी दो-तीन जोड़ियाँ, लोहे के ठोस भारी चक्र, नाना प्रकार के डम्बेल्स और गदा आदि सुव्यवस्थित रीति से सजे हुये रक्खे थे। एक मृगचर्म के समीप पुस्तकों का ढेर लगा पड़ा था। अरविन्द थोड़ा हँसा। अपने आगे-आगे चलते हुये हृदयनाथ से उसने पूछा:—

"हृदय ! इस महीने तुम्हारा वायसेप्स कितने इञ्च बढ़ा ?"

निर्बल, सुख में पड़े अथवा विलासी मनुष्य को युद्धरत योधा से इस प्रकार के प्रश्न पूछने का भला क्या अधिकार है ? अरविन्द अपने विनोद के लिये यह प्रश्न कर रहे हैं ऐसा हृदयनाथ ने समझा। परन्तु छोटे भाई के शिष्टाचार का उसे पूर्ण ज्ञान था। वह सदा कर्तव्य-पालन में ही जीवन व्यतीत करनेवाला युवक था। उसने बड़े भाई के व्यंग्य विनोद का उत्तर शान्तिपूर्वक दिया—

"इस महीने में तो नहीं बढ़ा।"

उसने घड़ी की ओर देखा। कलाई पर चमड़े के पट्टे में आभूषण-स्वरूप बँधी हुई एक मात्र घड़ी ही हृदयनाथ के शरीर की शोभा थी। उत्सव प्रारम्भ होने में १० मिनट का विलम्ब था। दोनों भाई मोटर में बैठे। ड्राइवर को बगल में बैठाकर हृदयनाथ ने स्टेयरिङ्ग सम्हाली और ठीक समय पर पहुँचने के लिये पूरे वेग से मोटर चलाने लगा।

२

व्यायाम-शाला

यदि हृदयनाथ की धारणानुसार भारत का क्रम चलता होता तो वह समूचे भारतीयों को एक दिन में वज्र-शरीरी बना देता। परन्तु इतनी शीघ्रता से यह हो सके ऐसा सम्भव न था। विद्यार्थी विवाहित हो रहे थे, बालक जन्म ले रहे थे और युवक वृद्ध होते जा रहे थे। भारत के उद्धार के लिये सभी अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे। कोई कहता कि स्वराज्य मिल जाय तो भारत सुखी हो जाय, किसी का विचार था कि बिना सामाजिक सुधार के कुछ नहीं हो सकता, कितनों का मत यह था कि वैज्ञानिक अभिवृद्धि पर ही देश की प्रगति आधारित है, तो कोई अपना यह मत प्रकट करता कि अस्पृश्यों को स्पर्श करने तथा हिन्दू-मुस्लिम-एकता के बिना भारत का उद्धार नहीं हो सकता है।

हृदयनाथ इन विचारों को सुनता, कुछ अंशों में मानता भी, परन्तु ये सभी मार्ग उसे अपूर्ण से लगते थे। राज्य मिलने पर भारत सुखी हो जायेगा यह बात यथार्थ थी। परन्तु उस स्वराज्य को दिलायेगा कौन? कौन भारतीय? सामाजिक सुधार कौन करेगा? बीस वर्ष की आयु में वृद्ध बन बैठनेवाले तथा तीस वर्ष में जीवनपूर्ण कर देनेवाले अल्पजीवी भारतवासी? विज्ञान में प्रगति चाहिये, किन्तु दो घंटे काम करने पर थकावट उतारने के लिये चाय पीनेवाले बाबुओं अथवा भांग छानकर मस्त बने मौज उड़ानेवाले पूर्वियों का विज्ञान की इस अटपटी विद्या में मन स्थिर हो सकेगा क्या? अंग्रेज तथा पठानों के समक्ष आँख न मिला सकनेवाले दुर्बल भारतीय हिन्दू मुस्लिम-ऐक्य किस प्रकार साध सकते हैं?

जब तक भारतीय अपना शरीर वज्र सरीखा न बना लें तब तक भविष्य के प्रगति की सभी बातें निरर्थक हैं ऐसा उसका विचार था। हृदयनाथ जब

पन्द्रह वर्ष की उम्र का विद्यार्थी था उस समय प्रसङ्गवश उसे एक बार अपनी माता के साथ रेलगाड़ी पर यात्रा करने का अवसर मिला था। धनिक पिता का पुत्र होने के कारण उसने सदा उच्च श्रेणी के डिब्बे में ही सफर किया था। उच्च श्रेणी के जिस डिब्बे में वह बैठने जा रहा था उस डिब्बे के दरवाजे पर एक अंग्रेज खड़ा था। हृदयनाथ को देखकर भी वह दरवाजे से जरा सा भी नहीं हिला। हृदयनाथ ने उस अंग्रेज से हटने के लिये कहा—दरवाजा रोककर पहाड़ सरीखे खड़े उस अंग्रेज ने उत्तर न देते हुये तिरस्कारपूर्वक आगे बढ़ जाने का इशारा किया। हृदयनाथ ने अपने नौकर से रास्ता बनाने के लिये कहा—परन्तु काला नौकर गोरे साहब का क्या कर सकता था! माँ बेचारी खड़ी हुई पुत्र जहाँ बिठाये वहां बैठने को तैयार थीं। हृदयनाथ के रोम-रोम में अपमान की ज्वाला धधक उठी। उसने बलपूर्वक अंग्रेज को ढकेल देना चाहा, भिखमङ्गों का हाथ पकड़ जिस प्रकार कोई घसीटकर झटक देता है उसी प्रकार उस अंग्रेज ने हृदयनाथ को अलग झटक दिया। वहाँ प्लेटफार्म पर एकत्रित भीड़ ने उसे दूसरे डिब्बे में बैठ जाने की सलाह दी। उसके मन में आया कि ये नामर्द लोग उस अंग्रेज को भी यही सलाह क्यों नहीं देते। वह अत्यन्त क्रोधित हो उठा। उसने पुनः दरवाजे के पायदान पर पैर रक्खा और गोरे ने पुनः ढकेल दिया। इस धक्के से वह जमीन पर गिर पड़ा। रेलवे अधिकारी ने आकर उससे दूसरे डिब्बे में बैठ जाने का अनुरोध किया।

'इस खाली डिब्बे में क्यों न बैठूँ? उस गोरे ने क्या पूरा डिब्बा रिजर्व करा लिया है?" हृदयनाथ ने प्रश्न किया।

"आपको कहीं बैठना ही चाहिये न? चलिये मैं बिठा देता हूँ।" नम्रतापूर्वक एक रेलवे अधिकारी ने कहा।

"मुझे जहाँ-तहाँ नहीं बैठना है, इसी डिब्बे में बैठना है।" हृदयनाथ ने जिद की। माँ पीछे खड़ी थरथर काँप रही थीं। साथवाला नौकर स्टेशन के बाहर गया और गाड़ी पर से साथ आये हुये घर के जमादार रहमतुल्ला को

बुला लाया। सवा छः फुट ऊँचा, सफेद बाल तथा दाढ़ी-मूँछ से रोआबदार, हाथ में डंडा लिये वह अफगान जमादार रास्ता बनाता आगे आकर हृदयनाथ से पूछने लगा—

"क्या हुक्म है सरकार?"

"मुझे इसी डिब्बे में बैठना है।"

"तो बैठिये न क्या दिक्कत है?"

"यह गोरा बैठने नहीं देता है।"

"कौन ससुरा है रे····?"

रहमतुल्ला ने वृद्धावस्था आने पर सभ्यता से किनारा खींच लिया था। वह गोरा इस पठान को देखकर अपनी सीट पर जाकर बैठ गया। वह जान गया कि यह भी कोई धनी आदमी है। हृदयनाथ और उसकी माता ने डिब्बे में प्रवेश किया किन्तु अब उस अंग्रेज ने कोई विरोध न किया। परन्तु आज के अपमान के पश्चात् हृदयनाथ में एक नई चेतना आ गई। उसने शक्ति की महिमा को पहिचाना। भव्य शरीर का मूल्य उसकी दृष्टि में आ गया। उस तीव्रबुद्धि किशोर के मन में यह निश्चय हो गया कि पौरुष पूर्ण शरीर ही प्रजा अथवा व्यक्ति की पहली दौलत है। प्रजा का प्रतिबिम्ब व्यक्ति में पड़ना ही चाहिये। प्रजा की दुर्बलता पृथक्-पृथक् जन में बहुत अच्छे प्रकार से प्रकट होती ही रहती है। उसने स्वयं अपने ऊपर प्रयोग प्रारम्भ किया। वृद्ध रहमतुल्ला लकड़ी बहुत अच्छी फिराता था। हृदय रोज उससे लकड़ी के दाँव सीखने लगा। इसी वृद्ध ने हृदयनाथ को देशी व्यायाम की ओर प्रेरित किया। दण्ड, बैठक, मुगदल, मलखम, लेजिम, इन सब प्रकार की कसरतों तथा साधनों का उपयुक्त वर्णन कर विकसित होते हुये हृदयनाथ को व्यायाम की महिमा समझाई, इतना ही नहीं, हिन्दू-मुसलिम पहलवानों का परिचय भी कराया। विद्याभ्यास और व्यायाम के सिवा हृदय ने और सब दूसरी प्रवृत्तियों से अपना मन खींच लिया। सुखी और धनवान् कुटुम्ब में सुख के साधनों की कमी नहीं होती, परन्तु इसने इन सभी साधनों का क्रम-क्रम से त्याग कर

दिया। प्रातः उठना, ठंढे जल से स्नान करना, अखाड़ा खोदना कुश्ती लड़ना, दूध पीना और विद्याभ्यास करना, यह उसका नित्यकर्म हो गया था। भोजन में चरपरी और गरिष्ठ वस्तुए वर्जित कर दीं। रोटी, बाटी, उरद की दाल तथा अन्य इसी प्रकार के मोटे अनाज ही पसन्द करता और खाता। सोनेवाला पलङ्ग कमरे से निकाल दिया और जमीन में बिछौना बिछा कर सोने लगा। गद्दे इत्यादि भी उसे भारी लगे इसलिये केवल तकिया और दरी ही उसने सोने के लिये बिछौने-रूप में स्वीकार किया।

उसके माता-पिता उसकी ऐसी दिनचर्य्या को लड़कपन की झक समझकर हँसते। उसका बड़ा भाई अरविन्द उसकी हँसी उड़ाया करता। फिर भी कोई उसके कार्य्यों में बाधा नहीं डालता था। वह जो कुछ भी करता था उसमें आपत्ति करने का कोई कारण ही नहीं होता था। किन्तु धनवान् माता-पिता की दृष्टि में यह सब कुछ निरर्थक है यह सत्य था। कुछ दिनों बाद ये तरंगें उछलकर शान्त हो जायेंगी ऐसी मान्यता के कारण उसकी इच्छा में कोई बाधक नहीं होता था।

परन्तु हृदयनाथ की तरंगे शिथिल पड़ी हों ऐसा अनुभव नहीं हुआ। उसकी शरीर दमन-क्रिया में दिन-प्रतिदिन प्रगति होती जा रही थी। उसके कपड़ों में मोटापन आ गया था। शरीर के साज-शृङ्गार से वह उस समय उदासीन हो चुका था। कलात्मक ढङ्ग से बाल सँवारना, सुगन्धित तैल-फुलेल लगाना, नये डिजाइन के कीमती कपड़े सिलाकर पहिनना, अच्छे उच्च कोटि के नये-नये फैशनों के जूते पहिनना, साबुन का उपयोग करना, यह सब उसके लिये निरर्थक हो चुका था। सभ्य समाज में जाने की वह कभी परवाह न करता, और कदाचित् कभी गए बिना छुट्टी न मिलती तो वह समाज के अनुकूल वस्त्रों के पहिनने की थोड़ी भी आवश्यकता नहीं समझता था। और इस प्रकार इस कोमल किशोर में एक पहाड़ सरीखा पहलवान विकसित हो उठा। छह फुट से ऊँचा कद, लौहखण्ड सदृश स्नायुबद्ध भुजा, विशाल उभड़ा चौड़ा वक्षःस्थल, पुष्ट गरदन, दृढ़ चौड़े कन्धे, सिंह की कटि से होड़

लेनेवाली पतली कमर, धोती की कोर से निकले पैरों की पत्थर जैसी पिण्ड-लियाँ, ये सभी एक दर्शनीय युवक की मूर्ति प्रस्तुत कर रही थीं। हृदयनाथ पर दृष्टि पड़ते ही लगता था मानो पौरुष स्वयं साकार रूप में खड़ा है। और उसके मुख पर जो पौरुष के भाव दीख पड़ते थे उनमें कठोरता प्रवेश पा सकी हो ऐसा नहीं था।

और इतने पर भी उसके शरीर का विकास क्रम शिथिल नहीं हुआ था। वह क्रम-क्रम कर बराबर वृद्धि पाता जा रहा था। हृदय के मन में ऐसा पूर्ण निश्चय हो गया था कि जब तक वह स्वयं दृष्टान्त रूप नहीं बन जाता तब तक वह दूसरों को वैसा नहीं बना सकता। उसका किशोरावस्थामें हुआ अप-मान सारी भारतीय प्रजा का अपमान था और शारीरिक विकास ही दूसरे सभी भारतीयों को ऐसे अपमान से बचाने के लिए साधन स्वरूप है ऐसा उसने अनुभव किया था। इसलिए जिस एक निष्ठा से वह अपने शरीर का विकास कर रहा था उसी निष्ठा से वह दूसरों के शरीर के विकास का भी प्रयत्न करता था।

प्रत्येक विद्यार्थी में शरीर के विकास के प्रति हृदयनाथ जैसी लगन का होना सम्भव नहीं। यह लगन बनी रहे इसके लिए वह पहलवानों के चित्रों तथा चरित्रों को प्रत्येक के समक्ष रखता और स्वयं उनका विवेचन करता, देश तथा विदेश के व्यायाम-विशारदों को, वीरों को अपनी व्यायामशाला में निमन्त्रित कर संस्था के उत्साह को बढ़ाए रखता। धीरे-धीरे उसकी व्यायाम-शाला मानसिक और शारीरिक उत्कर्ष-साधना की एक उच्च संस्था बन गई। व्यायाम ही इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था। देश-उद्धार का प्रश्न भी अनेक दृष्टियों से वहाँ चर्चित होने लगा था। केवल बुद्धि-जन्य वाद-विवाद ही हृदयनाथ पसन्द न करता था। जिन बातों में शारीरिक उत्थान का स्थान न होता वे नीरस हो उठतीं। किन्तु दुर्बल और बुद्धिमान् विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिए वह इन चर्चाओं को सहन कर लेता। चश्माधारी, डगमगाते पैरों चलनेवाले विद्यार्थियों को वह विशेष रूप से निमन्त्रित करता। क्रमशः

हृदयनाथ के प्रयत्न से व्यायाम-शाला का शौक सभी विद्यार्थियोंमें न्यूनाधिक जाग्रत हुआ। ग्रेज्युयेट होने तक न केवल वह स्वयं पहलवानों की श्रेणी में आ गया वरन् अपने अखाड़े को उसने एक भव्य छात्रप्रिय संस्था भी बना दी।

ज्यों-ज्यों उसका अभ्यास बढ़ता गया, त्यों-त्यों गोरों के प्रति उसके हृदय में अत्यधिक अश्रद्धा बढ़ती गयी। इतिहास के पन्नों ने उसके रोष में और वृद्धि की तथा स्वराज्य-आन्दोलन ने इस रोष को प्रज्वलित कर दिया। व्यायाम-शाला में उसके अनेक घनिष्ठ मित्र थे, उनमें से उसने अपना एक निजी मण्डल निर्वाचित कर लिया था और इस मण्डल पर उसे पूर्ण भरोसा था। मण्डल में पन्द्रह युवक थे, प्रत्येक में कुछ न कुछ विलक्षणता अवश्य थी। देशोद्धार की तेजस्वी भावनाओं से सभी प्रेरित थे, मगर शरीर-विकास में प्रत्येक की हृदयनाथ जैसी ही लगन थी ऐसा नहीं कहा जा सकता। उग्र स्वभाव का निरंजन उसका हम उम्र था। वह बुद्धिजन्य अशान्ति का अवतार था पारे जैसी अस्थिर और झलझलाती निरञ्जन की कुशाग्र बुद्धि सभी से टकराने को तैयार रहती, और हृदयनाथ को इस मण्डल की आत्मा होने के कारण निरञ्जन से वाद-प्रतिवाद के अनेकों प्रसङ्ग आते ही थे। निरंजन को प्रसन्न रखते हुये दूसरे सदस्यों को भी भटके मार्ग से लौटाना हृदयनाथ का कठिन से कठिन कार्य था।

फिर भी दोनों में बहुत घनिष्ठता थी। दोनों खूब लड़ते, मगर किसी का एक दूसरे के बिना चलता ही न था। अनेकों प्रश्न पर दोनों का परस्पर मतभेद होता, पर वे एक ही निर्णय पर किसी न किसी विचार-सरणि का अवलम्बन कर आ ही जाते, और व्यायामशाला का कार्य बहुत ही सुचारु रूप से चलने लगता। निरंजन कसरती न था, व्यायाम-शाला में वह आता तो नित्य परन्तु कसरत कभी-कभी ही करता। किन्तु व्यायाम-शाला का लाभ जब वह दूसरों को समझाता उस समय ऐसा तर्क उपस्थित करता जो बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध होता।

हृदयनाथ के ग्रेजुएट होते-होते उसका तथा व्यायामशाला का अद्भुत

विकास हो चुका था। विद्यार्थी गण उस व्यायाम-शाला से लाभ उठाने लगे थे। दुर्बल गुजराती बालक भी शरीर-सौंदर्य्य की उपासना करने लगे। इतना ही नहीं, व्यायामव्यसनी दक्षिणी बन्धुओं से मुकाबला करने की हिम्मत भी उनमें हो आई थी।

इस व्यायाम शाला द्वारा शिक्षा ग्रहण किये युवक जहाँ-तहाँ व्यायाम की महत्ता का प्रचार कर रहे थे। हृदयनाथ अज्ञात रूप से अपने ध्येय की सफलता में क्रमशः उत्तम रीति से फलीभूत होता जा रहा था।

३

प्रतिज्ञा

अपने उद्देश्य को फलीभूत बनाने के लिए जीवन अर्पित कर देने को प्रस्तुत रहना चाहिए। मानव जाति को उन्नत होने के लिये वीर पुरुषों के दृष्टान्त से ही सारी सामग्री प्राप्त हो सकती है। हृदयनाथ के हृदय में हनुमान और भीम सदा प्रतिबिंबित होते रहते थे। बाल्यावस्था में इन वीरों के विकृत रूप चित्रों में देखकर अपनी शिक्षा और कल्पना के बल से अनेकों सुधार करके उसने बेजोड़ आदर्श वज्र-रूप शरीर आकर्षित मूर्तियाँ निर्मित की थीं। ये मूर्तियाँ स्वयं हृदयनाथ में तथा उसी प्रकार उसके सहयोगियों के व्यक्तित्व में नव जीवन संचारित कर रही हैं इसे प्रत्यक्ष देखने के लिए हृदयनाथ ने अपना जीवन समर्पण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

उसने अपने एकमात्र ध्येय की सिद्धि के लिए व्यायामशाला स्थापित की। इतना ही नहीं, शरीरशास्त्र का भी बड़े ही मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया। इस अध्ययन से वह ब्रह्मचर्य की महिमा को पूर्णतया समझ गया। अपने देश की ही नहीं, बल्कि मानव जाति की अनेक दुर्बलताओं का रहस्य जैसे वह जान गया हो ऐसा उसे लगा। व्याधि, वार्धक्य और पाप का मूल ब्रह्मचर्य के भंग में ही रहता है ऐसा उसको विश्वास हो गया। भोग-विलास सर्वदा त्याग करने योग्य हैं - इतना ही उसने जाना हो ऐसा नहीं, बल्कि संगीत, चित्र, काव्य, नृत्य इत्यादि ललित कलाओं को सुशिक्षित किन्तु भोग-लोलुप समाज की शोधपूर्ण बहानेबाजी मानता था।

उसकी मान्यता झूठी है यह कैसे कहा जा सकता है। संगीत में पसन्दगी की क्या वस्तु है? केवल सप्तस्वरों की विविध मिलावट से कितना प्रसन्न हुआ जा सकता है? किसी भी भाव, विशेषकर श्रृङ्गारी भावों को व्यक्त

करनेवाले साधनों के बिना और उसके साथ ही किसी मोहक गायिका के बिना, शास्त्रीय संगीत सुनने और ग्रहण करने को कितने प्रस्तुत हैं ? चित्रों से स्त्रियों के अंगों की सुन्दरता को पृथक कर दिया जाय तो केवल कला के रूप में वह कितने दिनों तक जीवित रह सकती है ? यद्यपि काव्य-शास्त्र ने शृङ्गार को रसराज की मान्यता देकर मानव जाति की विलासप्रिय प्रवृत्ति को सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया और नृत्य में नारी अंग के संचालन को मोहक स्वरूप देकर उसके नियम आदि की रचना कर उसे शास्त्र का रूप दिया है, तथापि नारी रूप की सर्व कलाओं में अपेक्षा रक्खी है, किन्तु शास्त्र का रूप देकर भी कला प्रियता में संनिविष्ट पाशविकवृत्तियों के तुष्टि की वासना हटाई नहीं जा सकी। इसी मान्यतानुसार सम्पूर्ण कलायें वासना की पोषक, पौरुष का ह्रास करनेवाली-सी ही दीख पड़ती हैं।

और इन कलाओं का मध्य-विन्दु स्त्री।..............अथवा स्त्री का आकर्षण ? इस आकर्षण का पोषण करनेवाले तत्त्वों को निरर्थक कर डालने में ही पौरुष समाया हुआ है। यही है ब्रह्मचर्य्य। यही है संसार के जीर्णोद्धार का उपाय।

हृदयनाथ ने कलाओं की ओर से तिरस्कारपूर्वक पीठ फेर ली। उसी के साथ ही इन कलाओं की अधिष्ठात्रीस्वरूप स्त्रियों को भी उसने हृदय से दूर हटा दिया। निःसन्देह वह मानवजाति का दुश्मन नहीं बना था, मानवजाति में स्त्रियों को महत्त्वपूर्ण स्थान इस समय मिल गया है इस बात से वह असहमत नहीं था। मानवजाति के उद्धार में ही स्त्रियों का उद्धार भी निहित है" ऐसी उसकी धारणा थी। इसलिए वह स्वयं स्त्री जाति को शत्रु रूप में नहीं देखता था। फिर भी स्त्रियों के आकर्षण में समाई भयङ्करता को टालकर, मानवजाति के इन्हीं सम्बन्धों के परिणामस्वरूप बन्धन में बँधती जाती कला की और समाज की बेड़ियाँ तोड़कर, पुरुष और स्त्रियाँ दोनों को मुक्त कर, प्रत्येक के स्वयं स्वतंत्र मार्ग ग्रहण करने की स्थिति उत्पन्न करने का निश्चय उसके मन में जाग्रत हुआ, और उसके प्रतिफल में स्त्रीजाति के प्रति उसके मन ने एक प्रकार का उपेक्षा भाव ग्रहण कर लिया।

अपने विचारों का दूसरे के मन पर प्रभाव डालने का प्रयत्न जाने-अनजाने सभी करते हैं। हृदयनाथ की भी स्थिति ऐसी ही थी, वह अपने विचारों का दूसरों के ऊपर प्रभाव डालने के लिये प्रसंग उपस्थित करने का का सतत प्रयत्न करता था। संस्था उसी की थी, उसके विद्यार्थी उसे गुरु के समान मानते थे। इसलिये उसके विचारों के अनुसार ये अपने चरित्रनिर्माण के लिये तत्पर रहते थे। क्रमशः उसके निजी मण्डल ने सिद्धान्त स्वीकार कर लिया कि कोई सदस्य विवाह नहीं करेगा। जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा सबसे प्रथम हृदयनाथ ने ली, इसकी चर्चा उसके निजी मण्डल में बड़े जोरों की थी। कितने ही विरुद्ध थे, कितनों ने अनुमोदन किया। निरंजन का विशेष विरोध था, और उसके विरोध को लेकर पूर्ण संस्था के टूटने का प्रसंग भी उपस्थित हो गया।

"तुम्हें जो प्रतिज्ञा लेना हो भले ही लो। परन्तु पूरी संस्था को किस लिये इस बन्धन में बाँध लेते हो?" निरंजन ने अपने भाव व्यक्त किये।

"तीस करोड़ जनसंख्या में से यदि पाँच व्यक्ति भी दृढ़तापूर्वक ऐसी प्रतिज्ञा ले लें तो भी यथेष्ट है।"

"यह कोई नई प्रतिज्ञा है ऐसा मैं नहीं मानता। हिन्दू, बौद्ध ईसाई आदि कितने ही साधुओं ने इसका प्रयत्न किया है, उसका क्या परिणाम निकला, वह भी इतिहास में अंकित है।" निरंजन ने इतिहास की शरण ली।

"एक अथवा अनेक बार मानव-सन्तान यदि निष्फल हुई तो उसका यह अर्थ नहीं है कि सत् प्रयत्न करने के लिये इतिहास मना ही कर रहा है। हम लोगों को ब्रह्मचर्य्य को धार्मिक रूप नहीं देना है। मैं तो उसके ऐहिक परिणाम पर ही विचार कर रहा हूँ।"

"यह बात ही मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध है, इस कारण ऐसा परिश्रम व्यर्थ है।"

"मनुष्य-स्वभाव में क्या-क्या शक्य है उसका तुमने विचार ही नहीं किया है। मानव-स्वभाव की अशक्तता की आड़ में अपनी दुर्बलताओं का पोषण करने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ।"

"कल सुबह उठकर तुम कहो कि कोई भोजन नहीं करे, कोई पीये नहीं, कोई सोये नहीं। यह भी क्या सम्भव है?"

"जिनसे यह न निभ सके उनके लिये संस्था से पृथक् हो जाना ही अधिक उचित है। ऐसा प्रसंग उपस्थित हो जाय तो पुरुषार्थ की आनवाले को न तो भोजन करना चाहिये न पानी पीना चाहिये और न सोना ही चाहिये। लक्ष्मण के बारह वर्ष के बनवास का स्मरण करो।" हृदयनाथ ने कहा।

"जिसे लक्ष्मण बनना हो बने। मैं तो राम बनूँगा और राम की बिना सीता के निभेगी ही नहीं।" निरंजन ने हँसी की। कितने ही उपरोक्त बातें सुन खिलखिलाकर हँस पड़े। हृदयनाथ को यह गम्भीर विषय हँसी योग्य न लगा। वह क्रोधित हो आवेश में कह उठा—

"हँसने के लिये इसके सिवाय अनेक विषय हैं। तुम सब कौन सा मुँह लेकर विवाह करने का अनुमोदन कर रहे हो? तुम स्वतन्त्र हो? यदि नहीं हो तो फिर गुलामों को विवाह का अधिकार है ही नहीं। स्त्री जाति का अपमान करने के पश्चात् भविष्य की गुलाम प्रजा उत्पन्न करने का तुम भयङ्कर पाप करोगे। तुम्हारे पास स्वतन्त्र होने योग्य शरीर ही नहीं है, तुम्हारा शरीर.... ....।"

"भाषण की आवश्यकता नहीं है। स्वतन्त्र होने के लिए अकेले ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता है, ऐसी मान्यता तुम्हारे सिवा और किसी की नहीं है।"

"जिसकी मान्यता न हो वह सम्मति दें।"

"स्वीकार है।"

व्यायाम-शाला में भाग लेनेवाले कुछ विवाहित भी थे, कितने कुछ ही दिनों में विवाहित होनेवाले थे और जिनके जल्दी विवाहित होने की कोई आशा न थी उनकी भी वांछा अविवाहित आदर्श जीवन बिताने की न थी। हृदयनाथ को अपने सिखाए शिष्यों पर बहुत अधिक भरोसा था। परन्तु अपने अभिप्राय की ओर सम्मति देने के लिए असमंजस में पड़े लोगों को उसने देखा। उसका मन तिरस्कार से भर उठा। उसने अपना ममत्व छोड़ दिया और कहा—

"सुख बलिदान करने को कोई प्रस्तुत न हो, किन्तु आवश्यक कदम बढ़ाने को भी कोई प्रस्तुत नहीं है इसमें मैं तो अखाड़े की निष्फलता ही देख रहा हूँ।"

"व्यायाम-शाला निष्फल रही यदि ऐसा कोई कहता हो तो यह भारी भूल होगी। हृदयनाथ की व्यायाम-शाला तो अमर-प्रभाव प्रसारित कर रही है।" निरंजन ने कहा।

अपने विचारों की जीत हो जाने के पश्चात् हृदयनाथ की बात के महत्त्व की ओर सबका ध्यान आकर्षित करने का लाभ निरञ्जन ने लिया। सबने निरञ्जन के उद्गार पर ताली पीटकर उसका उत्साह बढ़ाया।

किन्तु जो कार्य कोई दूसरा न कर सके उसे ही करने में महत्ता रहती है। दूसरे सदस्य अविवाहित जीवन बिताने की क्षमता अपने में नहीं प्रकट कर सके। हृदयनाथ ने उसी क्षण निश्चय किया कि वह स्वयं आजीवन अविवाहित रहेगा।

अपना निश्चय उसने निरंजन के समक्ष प्रकट किया।

निरंजन ने उत्तर दिया—"तुम्हारा कहना एक रीत से ठीक है। भारतीय यदि एक दशक तक भी विवाह करना बन्द रक्खें तो निश्चय ही स्वराज्य मिल जाय।"

"तुम क्या कह रहे हो?" हृदयनाथ ने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

"मैं सत्य कह रहा हूँ।" निरंजन ने हँसते हुये उत्तर दिया।

"तब तुम हमारे विरुद्ध क्यों बोले थे?"

"इस सम्बन्ध में कौन कितना तैयार है इसकी परीक्षा विरुद्ध बोलने के के सिवा नहीं हो सकती थी। सबको देख लिया न?"

"तुम सबके मन को इसके लिये प्रस्तुत करो यही मेरी इच्छा है।"

"यह अब होगा।"

"तुम यह भार ग्रहण करो।"

"हाँ-हाँ, मैं भी लगभग तुम्हारे ही विचार का होता जा रहा हूँ।"

हृदयनाथ निरंजन को टकटकी लगा कर देखता रहा।

४

आघात

हृदयनाथ की प्रतिज्ञा से उसके अभिभावक अनभिज्ञ न रहे। उसके विवाह की बात छोटी ही अवस्था में निश्चित हो चुकी थी। यदि माता-पिता आधुनिक विचार के न होते तो विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया होता। उसके पिता बहुत धनी और प्रतिष्ठित गृहस्थ गिने जाते थे। अभी भी हिन्दू समाज में सन्तान का उत्तरदायित्व माँ-बाप पर न हो ऐसा समय नहीं आया था। जगत् भर को उलझन में डालनेवाले विवाह के प्रश्न को हल करने में अनुभवी वृद्धों की प्राथमिक पसन्दगी, लम्बी छान-बीन, पश्चात् विवाह यह क्रम उपयोगी है या नहीं इसका आधार तो व्यक्ति विशेष के अनुभव पर ही है। फिर भी उसमें कितने इच्छित तत्व रहते हैं इसे भाग्य से भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

हृदयनाथ के विषय में यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। रम्भा नाम की एक रूपवती कन्या के साथ उसके विवाह की बात तै हो चुकी थी। रम्भा हृदयनाथ से उम्र में दो-तीन वर्ष ही छोटी थी। जिस समाज में कन्याओं के विवाह की सीमा पन्द्रह वर्ष के ऊपर समाप्त समझी जाती हो वहाँ यह दो-तीन वर्ष का अन्तर बहुत सी झंझटें उपस्थित कर देता है। रम्भा भी एक धनी पिता की पुत्री थी। उच्चकोटि की शिक्षा से पुत्री को शिक्षित करने की माता-पिता की इच्छा को पूर्ण करने की रम्भा में योग्यता थी। स्त्री-शिक्षा का अति कठिन प्रश्न गरीब तथा मध्यम वर्ग में जो परिस्थिति उत्पन्न कर देता है वह धनिक वर्ग में उपस्थित नहीं होती, यदि ऐसा कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। उसमें भी यदि किसी कन्या का भविष्य किसी धनिक युवक के साथ जुड़ जाने का निश्चय हो गया हो तो वह तो उच्च शिक्षा स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहणकर ही सकती है।

रम्भा का विवाह हृदयनाथ के साथ निश्चित हो चुका था। रम्भा को बाल्य-काल से ही एक अवर्णनीय प्रसन्नता हृदय को देखने से होती थी। उसकी शिक्षा और सौंदर्य में वृद्धि होती गई। उसके संस्कार उसकी कल्पना को विकसित करते जा रहे थे। विवाह ही जिसका ध्येय है ऐसे स्त्रीवर्ग की वांछाओं की तुष्टि कर सके यदि ऐसे पति के प्राप्त होने की आशा हो तो फिर आधुनिक शिक्षा उसकी स्वाभाविक विलासप्रियता को नहीं अटकाती।

रम्भा हृदयनाथ की विचित्रताओं से परिचित थी। स्त्री-हृदय थोड़ा-बहुत बाल्यकाल से ही पुरुष को परखने का यत्न किया करता है। हृदयनाथ पढ़ने में तेज था। किन्तु उसे कपड़ों का बिलकुल शौक न था। मनोहर वस्त्रों से सुसज्जित हुये सुन्दर युवकों को देख कर रम्भा थोड़ा सकुचाती। किस कारण-वश हृदयनाथ अपने शरीर को नहीं सजाता यह प्रश्न उसे बराबर चिन्तित करता। तड़क-भड़क पोशाकवाले युवकों से हृदयनाथ का बहुधा साथ न होता, फिर भी वह अनेकों ऐसे युवकों के मध्य में दिखलायी पड़ ही जाता था। रम्भा पूर्ण-रूपेण शान-शौकत से रहती। सभी को आकर्षित कर ले ऐसे वस्त्रों व कला-पूर्ण अलङ्कारों से परिपूर्ण वह सभी का ध्यान अपनी ओर खींचती। अपनी ओर दृष्टि डालनेवाले पुरुषों में से अच्छे और बुरे को पृथक्-पृथक् छाँट देने की स्त्रियाँ क्षमता रखती हैं। तथापि उनकी ओर जो दृष्टि डाले ही नहीं ऐसे पुरुष की वे कभी इच्छा भी नहीं कर सकतीं। सभी युवक रम्भा की ओर आश्चर्यपूर्वक देखा करते। एक ही युवक ऐसा था जिसने रम्भा की ओर कभी आँख उठाई हो ऐसा रम्भा को स्मरण नहीं आता था। वह था हृदयनाथ। रम्भा उससे अपनी दृष्टि का एकाकार चाहती थी। जब-जब रम्भा उसे समझने का प्रयत्न करती तब-तब अकल्पित सादगी के होते हुए भी उसमें मोहक अंशों को खोज निकालने का प्रयत्न करती। वह अंश उसमें नहीं था यह भी कहा नहीं जा सकता। उसका विकसित सुडौल शरीर सबको ही आकर्षित करे ऐसा था। पुरुषों की टोली में वह अपनी ऊँचाई के कारण पृथक् हो जाता था। वस्त्रों के संयोग से अपने शरीर को पुष्ट दिखाने का प्रयत्न करनेवाले विद्यार्थियों के बीच में उसका सौष्ठवपूर्ण

शरीर तुरन्त परखा जाता था।

परन्तु यह पृथक्ता वाला अंश ही अनेक न्यूनताओं को भी अधिक व्यक्त करता रहता था। उस भव्य शरीरी को जब रम्भा निहारती तब उसका मुख उसे मानो सारी दुनिया पर क्रोध से चढ़ा दीखता था। बलवान आकृति दृष्टि को आकर्षित करती, उसके अव्यवस्थित केश, लापरवाही से पहनी ग्रामीणों जैसी पोशाक और कदाचित् नंगे पैर रम्भा को लज्जित करने को पर्याप्त थे।

व्यवस्थित पोशाक, प्रसन्न मुख और सुन्दर व्यवहार यह सबको मोहक हो जाता है। विशेषकर युवतियों के लिये तो अचूक होता है। रम्भा की कल्पना उसके भविष्य के पति में ऐसे गुणों की अपेक्षा रखती यह स्वाभाविक था। परन्तु वह उसे हृदय में नहीं पाती थी। उसकी सखियाँ भी अनेकों बार उसकी हँसी उड़ातीं। कोई कहती—

"यह कौन गँवार है?"

दूसरी कहती—"यह देहाती किसका नौकर है?"

तीसरी कहती—"यह कोई भील या ग्वाल है। बेचारे को जूता लाकर पहनने के लिये देना चाहिये।"

भील या ग्वालों में लावण्यपूर्ण सौंदर्य दूसरी उच्चकोटि की जाति की तुलना में अधिक मात्रा में दिखलाई पड़ता है यदि ऐसा कोई कहे तो भाग्य-वश ही माना जा सकता है। कोट-पतलून की सजावट में सौंदर्य के परखने की अभ्यस्त दृष्टि को केवल घुटने ढके हुये मिल या खादी की मोटी धोती और चादर ओढ़े और सिर पर भारी पगड़ी बांधे ग्वाला अच्छा नहीं लगेगा। साड़ी के घेरे और पोलके के कटाव में सौंदर्य नापनेवाली आँखें रास में चक्कर मारते हुये लँहगे के घुमाव अथवा टिकलियों से जड़ी चमकती रंगीन ओढ़नी के भीतर छिपे सौंदर्य्य को कभी नहीं पहिचान सकतीं. शरीर के आंतरिक सौन्दर्य के निष्पक्ष परीक्षणके अवसर पर भील विजयी होगा या ब्राह्मण, ग्वालिन उत्तीर्ण होगी या राजकुमारी इसे भला कोई कैसे कह सकेगा। ऐसा सम्भव है कि ब्राह्मण के मुकाबले भील और राजकुमारी की प्रतिद्वन्द्विता में ग्वालिनका शरीर-सौष्ठव उत्तीर्ण हो जाय। परन्तु प्राकृतिक सौंदर्य्य पहिचानने

के बदले परिधानों से सुसज्जित हुये कृत्रिम सौंदर्य को पहिचानने का अभ्यासी समाज वस्त्र की अनावश्यकता की हँसी उड़ाता है। सखियों के व्यंग्य से रम्भा का हृदय बिंध जाता था। उसने हृदयनाथ के साथ बात करने का प्रसङ्ग ढूँढ़ा। जिस प्रकार दूध का जला मट्ठा से किनारा करे उसी प्रकार हृदयनाथ भी रम्भा के नाम से भागा करता था। रम्भा की एक सहेली ने हिम्मत कर हृदयनाथ से कहा—

"रम्भा आपसे बातें करना चाहती है।"

हृदयनाथ ने लापरवाही से रूखे स्वर में उत्तर दिया—"मुझे बातें नहीं करनी हैं। मैं किसी को नहीं पहिचानता।"

एक छोटी बालिका ने अकेले जाते हुए हृदयनाथ के हाथ में एक पत्र दिया। हृदयनाथ ने पूछा—

"कहाँ से लायी हो ?"

"रम्भा बहन ने दिया है।" निर्दोष बालिका ने सत्य बात बतला दी। पत्र खोलने की बात तो अलग रही, पत्र पर साधारण सी दृष्टि डाले बिना ही हृदय ने क्रूरतापूर्वक पत्र फाड़कर फेंक दिया।

हृदयनाथ की भाभी की दृष्टि में यह सारी दिनचर्या आ गई। विलासी रसिक अरविन्द की पत्नी बकुल हृदयनाथ पर अधिक ममता रखती थीं। अज्ञान, अनुभवहीन, नीरस देवर को विवेकशील और आधुनिक सभ्यता से पूर्ण बनाने का बकुल सतत प्रयत्न करती थीं। बड़ी बहन का वात्सल्य और सखी सा सुहृदय इन दोनों के मिश्रण से सुसंस्कृत बनी हुई भाभी में देवर के प्रति ऐसे सुन्दर भाव होते ही हैं। हृदयनाथ को भी संसार में यदि किसी भी स्त्री का क्षणिक संसर्ग सह्य हो सकता था तो वह उसकी भाभी बकुल ही थी।

एक दिन परिवार के सब लोग घर से बाहर गये थे। हृदयनाथ अकेला अपने अखाड़े की योजनाओं पर विचार करता बरामदे में टहल रहा था। कुछ समय पश्चात् बकुल आई। परन्तु साथ में कोई दूसरी युवती को भी लेती आई। हृदयनाथ उसे देख किन्तु अनदेखी करके अपने कमरे में चला गया।

कुछ देर बाद वह युवती पैर दबाती हुई हृदयनाथ के कमरे के पास

आई और उसने कमरे के दरवाजे को खोलकर अन्दर झाँका। किन्तु तुरन्त ही उसने पूर्ववत् दरवाजे को बन्द कर दिया, उसके मुख पर निराशा और घृणा के भाव प्रकट हो आये। उसके पैर पीछे की ओर लौट पड़े। बकुल ने शान्ति-पूर्वक उसके कन्धों पर हाथ रक्खा। युवती थोड़ा सकुचाई किन्तु कुछ बोली नहीं।

बकुल ने कहा—'रम्भा ! अन्दर क्यों नहीं जाती ?"

रम्भा ने उत्तर नहीं दिया। बकुल ने ताना दिया—"शरमाती है, क्यों ?"

रम्भा शरमा नहीं रही है इसे बकुल ने उसके मुख पर के भावों से समझ कर निश्चय कर लिया था। पढ़े-लिखे सुसंस्कृत युवक-युवती साक्षात् के प्रसङ्ग को इस प्रकार हाथों से निकल जाने दें यह किसी भी सहृदय पुरुष या स्त्री को कदाचित् ही सहन होगा। बकुल ने रम्भा के हाथ को अपने एक हाथ से पकड़ा और दूसरे हाथ से दरवाजे में धक्का मारा। दरवाजा खुल गया।

सिर्फ लंगोट और जांघिया पहिने पूर्ण शक्ति से मुगदल की जोड़ी फिराता हृदयनाथ कमरे में एक ओर खड़ा था।

व्यायाम से अनेकों अगणित लाभ भले ही हों तथापि जांघिया पहिनकर मुगदल फिराता पसीने से तर शरीर, श्वाँस भरती आकृति यह सब प्रियतमा से मिलन के अवसर पर प्रदर्शित करने योग्य है ऐसा आज तक किसी भी रस-मीमांसक ने बताने की हिम्मत की हो ऐसा नहीं जाना जाता। कवच और शस्त्रों से सुसज्जित वीर वेषधारी मनुष्य द्वारा स्त्रियों के मन-हरण की कल्पना कवि और चित्रकार करते हैं, मगर कुश्ती लड़ते, मलखम पर शरीर को उलट पुलट करते और लगातार लम्बे समय तक दण्ड-बैठक लगाते जाते, दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेते नंगे शरीरवाले पहलवान के ऊपर किसी रमणी की प्रेम-दृष्टि ठहरी हो ऐसी किसी साहित्यकार अथवा चित्रकार ने कल्पना की हो ऐसा जाना नहीं गया।

"तुम अभी तक मूर्ख हो।" कह बकुल रम्भा को साथ ले वहाँ से अपने बैठने के कमरे में चली आई। उसने हृदयनाथ की विचित्रताओं को बहुत

कुछ ढंक दिया। एक माता अपने बुद्धि-हीन वा उपद्रवी बालक के कार्यों में क्षमायोग्य कारणों को इधर-उधर कर ढूँढ़ ही सकती है उसी प्रकार बकुल को भी हृदयनाथ के प्रत्येक कार्यों में स्वाभाविक सरलता दीखती थी।

रम्भा को बकुल का कमरा बहुत ही रुचा! संस्कारी युवती भावी पति की मूर्खता देख कुण्ठित हो गयी थी। कलाविधान द्वारा सजाया गृह-शृङ्गार उसकी दृष्टि में गड़ गया था अतः अन्तःकरण में उष्णता आती सी प्रतीत हुई। बकुल ने प्रेमपूर्वक सब वस्तुएँ दिखला रम्भा की जिज्ञासा बढ़ाई—"इस गुलाबपास को देखा? इत्र की उस शीशी को देखो? लखनऊ के नवाब वाजिदअलीशाह के लिये प्रस्तुत किया खास गुलाबजल इसमें है। ढाका के मलमल के बारे में तो तुमने सुना ही होगा। देखो यह उसका बचा-खुचा शेष नमूना है।.... ....ये बनारसी साड़ियाँ, अब ऐसा कोई बनवाता ही नहीं ... .यह कटक का फूल। चाँदी में इतना सरस और सुन्दर महीन काम हो सकता है ऐसा इसे देखे बिना क्या कोई मान सकता है? तुम जब बहू बनकर आओगी तब मैं तुम्हें ये सब वस्तुएँ भेंट में दूँगी।" बकुल ने बड़े प्रेम से कहा।

रम्भा सभी वस्तुओं को रसपूर्वक देख रही थी। बकुल ने ज्योंही उसके विवाह की चर्चा की त्योंही अभी-अभी कुछ समय पहिले हृदयनाथ के कमरे में देखा हुआ दृश्य उसे स्मरण हो आया। उसका मुख उतर गया। वह अपनी रसिक मनोवृत्ति और स्त्री की परछाईं से भागनेवाले कोपीनधारी से मेल नहीं बैठा सकी। उसने निःश्वास छोड़ा।

"क्यों निःश्वास ले रही हो? हृदय रुचा नहीं क्या?"

इतना पूछकर बकुल ने कमरे में कोने से एक छोटा सा चित्र उतार कर रम्भा के सामने रक्खा।

"क्यों? रुचता है कि नहीं? बताओ क्या कमी है इसमें?" बकुल ने प्रश्न किया। हृदयनाथ के मुख का छोटा सा चित्र रम्भा देखती रही। उसे यह मुख आकर्षित लगा। उसमें कठोरता अथवा संसार के प्रति उपेक्षा

का भाव न था। उसमें स्वाभाविक मुस्कान थी, बाल सँवारे हुए थे। ऐसा मुँह रहता हो तो वह किसे न रुचेगा। तथापि हृदयनाथ का कुछ समय पूर्व का देखा हुआ मुख इस चित्र से पृथक् प्रभाव डाल चुका था।

रम्भा ने कहा—"यह तो चित्र है। चित्र तो सुन्दर होते ही हैं।"

"नहीं यह तुम्हारी भूल है। हृदय भाई इस चित्र की तुलना से कहीं अधिक सुन्दर दीखते हैं। तुमने कभी उसे अच्छी तरह देखा है?" बकुल ने पूछा।

"हूँ.........!" इतना ही कहकर रम्भा ने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया।

बकुल भी जैसे थक गयी हो इस प्रकार कुर्सी पर बैठ गयी। उसे चक्कर सा आ गया। उसने अपने मुख और आँखों पर हाथ फिराया और एक हाथ की अँगुलियों को दूसरे हाथ की अँगुलियों से मिला कैंची सी बना दोनों हाथों को सिर पर उठा अँगड़ाई ले थकावट उतारने का प्रयत्न करने लगी।

"तो अब मैं जा रही हूँ।" रम्भा ने कहा।

"नहीं-नहीं, थोड़ा बैठो। मुझे थोड़ा चक्कर आ गया था।"

रम्भा को आश्चर्य हुआ। इतने वैभव के सुख में जीवनयापन करती सुशील युवती को चक्कर क्यों? उच्च से उच्चकोटि का गुलाबजल जिसके पास हो उसे क्या कोई वस्तु चक्कर ला सकती है? रम्भा ने विचार किया और पूछा—"आपको चक्कर क्यों?"

बकुल ने फीकी हँसी हँस दी। हथेली जाँघ पर रख उसी हाथ की बाँह को दूसरे हाथ की हथेली और उँगलियों से दबा तुरन्त उत्तर दिया—"तू भी कभी इसे समझ जायेगी?"

बकुल के गोरे हाथ पर गोरी उँगलियों के दबाव के पड़े स्पष्ट निशान को रम्भा ने देखा। उसकी समझ में कुछ नहीं आया बल्कि नवीनता लगी।

कुछ देर बाद रम्भा ने बिदा ली। लौटने के लिए हृदयनाथ के कमरे के आगे से होकर जाना था। कमरे के पड़ते ही रम्भा ने अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली। मानो उसके रोयें भरभरा उठे हों।

५

बकुल

बकुल ने रम्भा के चले जाने के बाद हृदयनाथ को बुलाया। बकुल के यहाँ वह बुलाये बिना नहीं जाता था। परन्तु बकुल दिन में कई बार उसे बिना बुलाये नहीं रहती थी। बकुल को चार बच्चे थे, दो पुत्र और दो पुत्री। बहुत छोटा बच्चा हृदय को अच्छा नहीं लगता था। खिलौने सरीखा निरर्थक, खिलौने की समानता में अधिक दूषित और भास जनक, जंजाल-स्वरूप ये सरई के समान दुर्बल अविकसित बालक उसकी बुद्धि और रसिकता को थोड़ा भी अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते थे। बड़ी दस वर्ष की बालिका सुहासिनी और आठ वर्ष का बलिष्ठ और तूफानी शशिकान्त ये दोनों उसे प्रिय थे; और इन दोनों को भी हृदयनाथ रुचता था। प्रत्येक बालक की देखरेख के लिए एक-एक दाई थी। हृदयनाथ के लिये जैसे इन दाइयों का कोई अस्तित्व ही नहीं ऐसा वह व्यवहार करता और उसके इस व्यवहार से उदासीन हुई दाइयों की परवाह किये बिना ही दोनों बालक अपने चाचा की खोज में फिरा करते थे। जीवन में उत्कर्ष पाते हुये बालकों को चाचाजी के कमरे में स्फूर्ति का उपयोग करने के लिये पूरा साधन मिलता रहता, इस कारण गृहशृङ्गार की वस्तुओं से भरी पिता की बैठक और फूल की क्यारियों से नियमित बन्धन से बँधे बगीचे के मुकाबले में हृदयनाथ का कमरा उन्हें अधिक प्रिय जान पड़ता था। देखो काँच नहीं टूटे, पैर कुर्सी के ऊपर मत रक्खो ···फूल मत कचरना, पानी से कपड़े मत भिगाओ, ऐसी-ऐसी नियन्त्रण की आज्ञाओं से ऊबे दोनों बालक हृदयनाथ के अखाड़े में आकर मनमानी दौड़ लगाते, मनचाही वस्तु से खेलते, और काफी ठंडी चिकनी मिट्टी में मनचाही कलइयाँ खाते।

बकुल का सन्देश पाते ही हृदयनाथ का मुँह चढ़ गया। परन्तु उसके पास गये बिना छुट्टी भी नहीं मिल सकती थी। उसने मुँह धोया और खादी के वस्त्र पहिने। शीशे में अपने शरीर को निहार कर देखने पर उसके मुख पर यथेष्ट संतोष के भाव दीखे। बकुल के कमरे के अन्दर घुसते हुए वह जरा अटका। उसकी पग ध्वनि पहचानकर बकुल ने आवाज दी।

"अन्दर आओ।"

बकुल क्या कहेगी इसका अन्दाज हृदयनाथ को था ही। दरवाजा खोलकर वह अन्दर गया। बकुल एक सोफे पर पीठ अड़ाकर बैठी थी। उसने हृदयनाथ को देखा और उसकी भृकुटी में सहज ही बल हो आये।

"यहाँ मेरे पास आओ।" कहकर बकुल ने आपने समीपवाली कुर्सी पर उसे बिठाया। कुछ क्षणों तक एकटक उसकी ओर देखने के पश्चात् क्षीण-क्रोधमिश्रित वाणी से वह बोली—

"क्यों? आज अभी कान पकड़ूँ? बैठकी लगवाऊँ?"

"क्या हुआ?" अनजान हृदयनाथ ने पूछा।

"तुम्हारा सर। बाईस वर्ष की उम्र पानी में गई। मैं आज पहिले तुम्हारा वह मजदूरखाना गिरवा देनेवाली हूँ। याद रखना।" बकुल ने अखाड़े का नाम मजदूरखाना रक्खा था।

"परन्तु क्यों? मैंने क्या किया है?"

"उस बेचारी को मैं खास तौर से बुलाकर लायी थी, और तुम यहाँ बन्दरों की नकल करने बैठे। कुछ भी बुद्धि तुममें नहीं है।"

"मैं अपनी कसरत करता जा रहा था। मुझे क्या करना होगा इसे आपने मुझे कभी बतलाया था क्या?"

बकुल ने अधिक चिढ़ते हुए हृदयनाथ की ओर देखा। हृदयनाथ ने अपनी आँखें दूसरी ओर घुमा लीं।

"आज मैं तुमसे ठीक-ठीक पूछ रही हूँ। क्या रम्भा तुम्हें पसन्द नहीं है?"

"मेरी पसन्दगी अथवा ना-पसन्दगी से क्या है ? बहुत-से लोग कहते हैं कि वह शिक्षित और सुन्दर है।"

"परन्तु तुम क्या कहते हो ?"

"मैं तो यह सब कुछ भी नहीं कहता।"

थोड़ी देर बाद बकुल ने हृदय के गाल पर एक चपत लगाई। हृदय सभी स्त्रियों से दूर भागा फिरता था, परन्तु बकुल की उपस्थिति को वह टाल नहीं सकता था। बकुल उसका निश्चय जानती थी। वह उसकी स्त्री जाति के प्रति उदासीनता भी समझती थी, फिर भी उसके निश्चय की कुछ भी परवाह किये बिना वह अपने देवर को परेशान करती। बकुल की चपत से हृदयनाथ का मुँह लज्जा से लाल हो उठा। मानो उसका हाथ, मुख, पग सभी संकुचित होते जा रहे हों। बकुल हँसी।

"हो तो काले, पर मुख पर रताश कितनी आती है ? अब बतलाओ कि तुम्हें विवाह करना है कि नहीं ?"

"नहीं !" हृदय ने उत्तर दिया।

"क्या कहा ! फिर तो कहो !" बकुल ने क्रोध भरे स्वर में पूछा।

इतने में अरविन्द ने प्रवेश किया। अरविन्द के दोनों हाथ उसके छोटे बालक पकड़े हुए थे। खूबसूरत, मौजी अरविन्द जब चलता तब उसकी छटा सभी से अलग होती। उसकी चाल भी उसके दिखावे जैसी ही मोहक थी। बकुल और अरविन्द की आँखें मिलीं। अरविन्द की आँखों में तेज चमक उठा। बकुल ने भी अपनी आँखों के तेज को चमकाने का प्रयत्न किया। परन्तु इन आँखों पर किसी की समझ में न आ सकनेवाला भार चमक को दबा देता सा लगा।

"आज हृदय को यहाँ कैसे बैठाया है ?" अरविन्द ने पूछा। अरविन्द को आते देख हृदयनाथ खड़ा हो गया था। बड़े भाई के प्रति वह पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करता और छोटे से छोटे विवेक के व्यवहार में भी कभी न चूकता था। अरविन्द और बकुल दोनों इसके लिये उसकी बहुधा हँसी उड़ाते

और उसके इस विवेकीपन की नकल भी उतारते। किन्तु उसने अपने इन दोनों बड़ों के प्रति पूज्य भाव अथवा व्यवहार में थोड़ी भी शिथिलता न आने दी। उसके माता-पिता कितने ही वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधार चुके थे। अरविन्द और बकुल ने स्वभावतः ही उस स्थान को ले लिया था। हृदयनाथ की प्रत्येक इच्छा पूर्ण हो इसका दोनों ही पूरा-पूरा यत्न रखते। किन्तु हृदयनाथ की इच्छा बहुत ही मर्य्यादित थी। उसे अच्छे भोजन व पेय की रुचि थी ही नहीं, सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र पहिनने की इच्छा ही न होती. केवल मात्र उसकी व्यायाम-शाला सुचारु रूप से चलती रहे और उसकी इच्छानुकूल सभी को सहायता प्राप्त हो जाने के सिवा और कोई उसका खर्च न था। भाई और भाभी को इस उदासीनता से असंतोष रहता। इतना वैभव, इतना साधन, इतना धन रहते हुए भी हृदयनाथ को किसी भी प्रकार का कोई व्यसन न था। सम्पत्ति में बराबरी का हिस्सेदार वह था। तो भी वह अपने मौज-शौक में कुछ भी खर्च नहीं करता था, इसका अरविन्द और बकुल दोनों को दुःख था, और जब-जब अखाड़े के कार्य अथवा किसी की सहायतार्थ हृदय की ओर से कुछ माँग होती तो दोनों बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक हृदय की माँग से अधिक धन दिया करते। जिस प्रकार हृदयनाथ उन लोगों के प्रति अपने में पूज्य भाव में कमी नहीं आने देता था, उसी प्रकार अरविन्द और बकुल का भी हृदयनाथ पर वात्सल्य भाव कभी जरा भी कम नहीं हुआ! अपने सत्कार के हेतु खड़े हुये छोटे भाई हृदयनाथ को अरविन्द ने हाथ पकड़ कर बिठा लिया। दोनों छोटे बालक हृदय की ओर देखने लगे। ये छोटे बच्चें उसे प्रिय न थे। एक बालक उस समय तक दुर्बल था। उसकी ओर से हृदय को एक प्रकार की उदासीनता उत्पन्न हो गयी थी।

"हृदय भाई में कुछ बुद्धि है अथवा नहीं इसकी आज मैं परीक्षा ले रही थी।" अरविन्द के प्रश्न का बकुल ने उत्तर दिया।

"फिर तुमने क्या निर्णय किया?" अरविन्द ने पूछा—

"यही कि इनमें कुछ भी बुद्धि नहीं है।"

"कितने ही विद्यार्थी इसे गुरु मानते हैं यह तो तुम्हें मालूम ही है। यह

तो युवकों का नेता है।"

"हुआ नेता। जिसका सेनापति अन्धा होगा वह सेना कुएँ में गिरेगी।"

"क्यों तुम ऐसा कहती हो?"

"इसमें साहस तो है ही नहीं।"

"यह तो वड़ा पहलवान है न!"

"रहा पहलवान। एक लड़की को देखकर तो कमरे में छिप गया।"

यह सुन हृदय के मुख पर स्वाभाविक मुस्कराहट आ गई। अरविन्द की समझ में न आया, भाभी-देवर की यह कोई दिल्लगी है, यह सोच उसने पूछा—

"हृदय! यह जो कह रही है सच है?"

मर्यादा का ध्यान रखते हुए हृदयनाथ ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। चुप रहने का लाभ ले बकुल ने कहा—

"देखो न, वह क्या बोल सकते हैं? सच बात में कोई क्या कहेगा?"

इतने में एक बालक जो कुर्सी पर चढ़ रहा था गिर कर रोने लगा। रोने की कला में धनवान् और धनहीन दोनों के ही बालक एक से ही होते हैं। धनवान् के बालक कुछ विशेष सभ्यता के साथ नहीं रोते। वह जोर-जोर से रोने लगा। रुदन और आँसू में काव्य निरखने के लिए रोनेवालों की वय मर्यादा निर्धारित है। बालकों के रोने में काव्य होता ही नहीं, माता और किसी समय पिता बालक का रोना सहन कर लेते हैं, परन्तु इन दोनों के सिवा तीसरे के हृदय में बालकों का रोना खीझ तथा क्रोध उत्पन्न करता है। ऊबे हुए स्वर में बकुल ने कहा—

"इन्हें अन्दर कहाँ से लाये? बाहर धाय के पास भेज दीजिये।"

हृदयनाथ के मन में विचार आया कि जिसके पास धन नहीं है उनके बालकों का क्या होता होगा?

"तुम जरा गोद में ले लो।" अरविन्द ने बकुल से कहा।

"नहीं नहीं! आज तो मुझे बहुत अधिक थकावट महसूस हो रही है।

लड़के तो जानके दुश्मन है।" बकुल के दुःखी मन से उद्‌गार निकल पड़ा।

बालक का रोना सुन उसकी धाय ने अन्दर आकर उसे उठा लिया और प्रेम पूर्वक बालक की पीठ पर हाथ फिरा उसे चुप कराने का प्रयत्न करने लगी। माँ का हृदय इन बातों को देख पिघल उठा। उसकी थकावट दूर मालूम होती जान पड़ी, उसने धाय से कहा—"लाओ मुझे दो।"

माँ के सहलाते ही बच्चा चुप हो गया। इतने में दोनों बड़े बालक दौड़ते हुये कमरे में आये। बालक घर में न दौड़ें इसका विशेष ध्यान रखने पर भी वह दौड़ते हैं और उस पर उनके चाचा वहाँ उपस्थित हैं यह जानते ही सुहासनी और शशिकान्त दोनों ने चाचा के पास पहिले पहुँचने की शर्त बद दौड़ते हुये कमरे के अन्दर घुस आये। धड़-धड़-धड़ दौड़ते बलवान बालक आकर हृदयनाथ के साथ झूम उठे। आज कौन जाने क्यों बकुल से थोड़ा भी शोर सहन नहीं हो रहा था ऐसा प्रतीत हो रहा था।

"सुहा! अभी तुम लोग बाहर खेलो।" बकुल ने ऊबे हुये स्वर से कहा। गोद में लिये बालक को भी उसने उसकी धाय को दे दिया। धाय बालकों को बाहर लिवा ले गयी। अपने ही बालकों को इस प्रकार कमरे से निकालने की क्रूरता प्रदर्शित करने के पश्चात् माँ का हृदय भर आया। बकुल की आँखों में आँसू उमड़ पड़े! अरविन्द और हृदय आश्चर्यित हो उठे। अरविन्द बकुल के निकट बैठ गया।

"तुम्हें क्या हो रहा है?" अरविन्द ने अति मृदुलता से पूछा।

"कुछ नहीं।" आधा हँसते आधा रोते हुये बकुल ने कहा।

"तुम्हारी तबियत आज अच्छी नहीं है। फिर क्यों बाहर गयी थी?"

"रम्भा को बुलाना था।"

"हाँ-हाँ। मैंने रास्ते में उसे देखा था, लड़की देखने में तो काफी सुन्दर है। क्यों?" अरविन्द ने पूछा।

"रम्भा की माँ को अब उसका विवाह कर ही डालना है और आपके भाई साहब को विवाह करना ही नहीं है।

"इसमें बुद्धि ही कहाँ ? यह भले ही जो चाहे बके । हम अपनी इच्छानुसार कार्य करेंगे ।"

हृदयनाथ चौंका । उसके इच्छा के विरुद्ध यदि अभिभावक लोग उसका विवाह कर देंगे तब ? ऐसे अनेकों प्रसङ्ग भारत में हुये हैं । उसने अपने पूर्व किये हुये निश्चय को एक बार पुनः दृढ़ किया । यह वार्ता जल्दी ही समाप्त हो जाय इस हेतु उसने बकुल से कहा—

"भाभी ! आपकी तबीयत तो ठीक नहीं है, फिर सो क्यों नहीं जातीं ? बेकार की बातें क्यों किया करती हैं !"

"तुम्हारे ही पाप का फल भोग रही हूँ । तुम्हारा हट कहाँ छूटता है ?"

"इसके ज़िद की तुम चिन्ता ही न करो । तुम कहो और यह न माने, यह क्या कभी सम्भव है ?" अरविन्द ने कहा ।

इस भयंकर दलील को सुन हृदयनाथ का कलेजा काँप उठा, अपनी भाभी को प्रसन्न रखने के लिये वह क्या नहीं करेगा ?

"परन्तु आज इन्होंने कितनी बड़ी मूर्खता की है उसे कहूँ ? कदाचित अब ये मान भी जांये और रम्भा न माने तो ?" बकुल ने अपनी बात कही । उसके मुख पर विशेष दुःख के भाव दिखलायी पड़ रहे थे ।

हृदयनाथ की कठिनाई का हल अपने ही आप होने लगा । यदि रम्भा इन्कार कर दे तो बहुत ही अच्छा हो और आज के उसके विचित्र बर्ताव से रम्भा चिढ़ गई है । ऐसा उसे विश्वास हुआ ।

"मैं जा रहा हूँ ।" कह वह वहाँ से चला गया ।

प्रतीक्षा करते बालकों के साथ वह अपने कमरे में थोड़ी देर तक खेलकूद करता रहा, पुस्तकें पढ़ी, ब्रह्मचर्य्य और जीवन के संबंध में कितने ही विचार भी उसने किया, चार बालकों में ही ऊबी बकुल जैसी साधन सम्पन्न माता का दृष्टान्त उसने अपने दृष्टि के आगे रक्खा और विवाह यह अनिवार्य कष्टों के परम्परारूप है ऐसा उसने पुनः एक बार निश्चय किया ।

रात्रि में वह पुनः बकुल की तबीयत देखने के लिये गया । अरविन्द दूसरे

खण्ड में एक गवैया से गाना सुन रहा था। बकुल का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण गाने के लिये इस गवैये को अरविन्द ने बुलाया था। अरविन्द के समान ही बकुल को भी संगीत का बहुत शौक था। अरविन्द की संगति में उच्चकोटि के शास्त्रीय संगीत में वह रस लिया करती थी। परन्तु आज उसे संगीत भी रुचिकर न हुआ। एक दो चीजें सुन उसने नींद का बहाना बनाया इस कारण अरविन्द ने गवैये का दूसरे कमरे में प्रबन्ध किया।

एक झूले पर तकिये के सहारे आड़ी लेटी हुई बकुल हलका-हलका झोंका ले रही थी। उसे अभी नींद आ रही थी किन्तु वह विचार-मग्न मालूम होती थी। उसकी विचित्र आँखों से प्रतीत होता था कि वह किसी गम्भीर विचार में मग्न है। हृदयनाथ के आने तक वह बराबर लेटे ही लेटे झूले का झोंक लेती रही। हृदयनाथ ने समीप आ मन्द स्वर में पुकारा "भाभी"

बकुल ने आधी मूंदी आँखें पूरी पूरी खोल दीं, और फिर बैठ कर बोली—"मैं सोच रही थी कि तुम आओगे। मैं तुम्हारा ही विचार कर रही थी।"

"आपकी तबीयत कैसी है?"—हृदयनाथ ने पूछा।

"अच्छी है।"

कुछ देर रुक कर पुनः हृदयनाथ ने कहा—"भाभी! मुझे एक बात कहना है।"

"कहो।"

"आप कृपा करके मुझसे विवाह करने के लिये जिद मत करियेगा।"

"क्यों? ऐसा क्या है?"

"मैंने प्रतिज्ञा ली है कि मैं अविवाहित रहूँगा।"

बकुल हृदयनाथ की ओर देखती रही! उसकी आँखों से वात्सल्य के आँसू झड़ पड़े। बड़े करुण स्वर में बोली:—

"भाई तुम्हारा विवाह करने के पहिले ही यदि मैं मर गई तो भी भूत होकर तुम्हें विवाहित करूँगी !"

इतना कहकर वह खिलखिला कर हंस पड़ी। किसी से भी भय न खाने वाला हृदयनाथ काँप गया। बकुल की हँसी उसे किसी भूत का अट्टहास सरीखा निरर्थक और भयावना लगी। उसकी आँखों में कोई अडिग निश्चय वास कर रहा हो ऐसा उसे प्रतीत हुआ। बकुल सरीखी सरल और सहृदय स्त्री के मन में ऐसा दृढ़ निश्चय देखना आश्चर्य था। और बातों में उसने अपने मृत्यु की कल्पना को प्रधानता दिया ऐसा किस लिए ? सदा प्रफुल्लित रहने वाली स्त्री के मन को क्या मरने की कल्पना आनी चाहिये ? हृदयनाथ का मन उपरोक्त वार्ता से दुःखी हो गया। उसने कहा—

"आप मरने की बातें क्यों करती हैं ?"

"ऐसे ही।"

"नहीं नहीं ! आपकी ऐसी धारणा क्यों हुई ? मुझे भय लग रहा है। सच सच कहिये ?"

"देखो ! स्त्रियाँ इस प्रकार जल्दी नहीं मरती। परन्तु मरने की घड़ियाँ तो उनके जीवन में बहुधा आती ही रहती है।"

"मेरी समझ में नहीं आया। साफ साफ कहिये, आपने क्यों ऐसा कहा ?"

"जाओ, जाओ। तुम सब समझ गये हो। अब जाकर सो रहो मुझे कुछ हुआ नहीं है।"

हृदयनाथ दुखी मन बाहर निकला। विचार मग्न अपने कमरे में गया। बत्ती बुझा वह सतरंजी पर लेटा। कमरे के बाहर कोई बातें कर रहा है ऐसा उसे सुनाई दिया। वह सतर्क हो ध्यान पूर्वक सुनने

लगा। बालकों को पालन करने वाली धाय के आवाज की भनक उसके कानो में पड़ी।

"लड़की पैदा होगी ऐसा मालूम होता है।"

अब उसने समझा, चमक कर उठ बैठा, और पुनः उसने संकल्प किया। मुझे विवाह नहीं करना है।

६

मृत्यु-शायी

हृदयनाथ की प्रतिज्ञा अब सभी पर प्रगट हो गई थी। उसने अपनी संस्था के सदस्यों से भी अखण्ड ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करने का आग्रह किया, और निरंजन के विरोध करने के कारण वह सफल न हो सका, अतः वह स्वयं कभी विवाह नहीं करने वाला है इस निश्चय को सभी ने जान लिया था। उसके प्रति सबको सद्भाव तथा आदर था ही, उस पर प्रतिज्ञा करने के कारण और आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ। वैसी ही कुछ इच्छा हृदयनाथ को देखते ही सबकी होने लगी।

एक दिन रमा ने रम्भा को उपरोक्त बात बतलाई। रमा और रम्भा की उम्र लगभग बराबर ही थी। दोनों में कुछ दूर की रिश्तेदारी भी थी। रमा विधवा थी। वह माता और एक छोटी बहन के साथ रह कर शिक्षा ग्रहण कर रही थी। रम्भा के माता पिता इस छोटे दुखी कुटुम्ब को दूर से ही प्रयत्न कर कोई न कोई सहायता करने का प्रयत्न करते रहते। परन्तु यह आत्मभिमानी परिवार किसी का उपकार अपने उपर ले सके ऐसा नहीं था। इसलिये रमा रम्भा के साथ बराबरी का ही व्यवहार रखती थी।

रमा की बात सुन पहिले तो रम्भा का मुँह उतर गया। दिल के किसी नाजुक वर्म को कचरने जैसी रम्भा के दम्भ को चोट सी लगती मालूम हुई। वह तो स्वयं पहिले ही अस्वीकार करने वाली थी। यह तो हृदयनाथ पहिले ही उस पर हावी हो गया ऐसा उसे लगा।

"तुमसे किसने कहा ?" रम्भा ने पूछा।

"निरंजन ने।" रमा ने उत्तर दिया।

"निरंजन कौन?" रम्भा ने उसका नाम सुना था। किन्तु झटपट किसी को दूसरों के समक्ष पहिचान लेना यह रईसी में पले व्यक्ति के अनुकूल नहीं होता।

"क्यों? वह तो हृदयनाथ का मित्र है।"

"हाँ हाँ! वही न जो चश्मा लगाये भाषण दिया करता है, क्यों?"

रमा को इस प्रकार का परिचय बहुत अच्छा नहीं लगा। फिर भी उसने हाँ कह दिया।

रम्भा ने फिर जरा भी दुख प्रगट नहीं किया। उसने हृदयनाथ के प्रति अपनी धारणा बनाने का कारण और प्रसङ्ग भी प्रगट कर दिया, और यदि हृदयनाथ ने ऐसा निश्चय न किया होता तो स्वयं उसे ही यही निश्चय प्रगट करना पड़ता यह बात भी उसने रमा से कह दिया।

"देखो रमा मुझे तो उसमें अभी तक बिलकुल लड़कपन ही दिखाई देता है। सिर्फ बड़ा दिखावा है पर तत्व कुछ भी नहीं है। उसे जो अच्छा लगता है वही भेष बनाता है। सुबह यदि नङ्गे माथे घूमेगा तो शाम को खादी का देहाती ढङ्ग का साफा बांधे। कभी कुरता पहिनेगा तो कभी फकीर के समान लम्बा चोंगा पहिनता है। और उस पर भी नङ्गे पैर देख कर मैं तो शर्म के मारे मर जाती हूँ। मुझे तो ऐसा लगता है कि कदाचित वह कुछ पागल न हो।

पागल कैसे कहा जा सकता है? कितने विद्यार्थी उसकी पूजा करते हैं। एक प्रकार की लत जिसे लग गयी हो उसे पूजने वाले भी मिलते हैं। मुझसे किसी ने कहा था कि जिसका शरीर ठस देखो उसकी बुद्धि भी ठस समझो। इन्हें देख मुझे उस बात का पूर्ण निश्चय हो गया। निरंजन द्वारा तुम मेरा यह सन्देशा कहला देना कि जो हुआ वह अच्छा हुआ। माँ बाप के भूल की बलिदान मैं नहीं बनी।"

परन्तु निरंजन जब यह संदेशा हृदयनाथ से कहने वहाँ गया तो उसने

समूचे घर को किसी विचित्र स्थिति में पाया। नौकर घबड़ाये इधर उधर दौड़ रहे थे। उनमें बातें बहुत धीरे धीरे हो रही थी। अरविन्द के बालकों को वे घर के दूसरे हिस्से में ले जा रहे थे। पहिले निरंजन आता तो उसका सभी सत्कार करते थे, आज उसे देखने पर भी किसी को बात करने या सत्कार की फ़ुरसत नहीं है ऐसा उसे लगा। उसने एक नौकर से पूछा—"हृदय है ?"

"जी !" नौकर ने उत्तर दिया। उसके उत्तर में गम्भीरता का बोध हुआ।

"कहाँ है ?"

ऊपर। कह वह उतावले पन से तुरन्त चला गया।

ऊपर जाते हुए वृद्ध और अशक्त रहमतुल्लाह ने शोक जनक समाचार बतलाया कि बकुल एक बालक का जन्म दे स्वर्ग सिधार गईं।

निरञ्जन को इस समाचार से चोट लगी। हृदयनाथ का अन्तरङ्ग मित्र होने के नाते उसका उस घर में सभी लोगों से अच्छा परिचय था। और वाचाल होने के कारण वह सबको प्रिय भी हो गया था। बकुल के बालक तो निरञ्जन के आने पर बहुत ही प्रसन्न हो उठते। हँसने की अनेकों प्रकार की बातें और गप्पें सुना वह बालकों को खूब प्रसन्न रखता। इतना ही नहीं, बकुल का भी उसके प्रति स्नेह था। हृदयनाथ से जब जब भी वह मिलने आता तब तब वह बकुल से बिना मिले न रहता था। विशुद्ध हृदय और सबसे स्नेह करने वाली बकुल देवर के मित्रों को उत्साह पूर्वक बुलाती। हृदयनाथ के मुकाबले निरञ्जन के साथ गप्प मारने में बकुल को आनन्द मिलता।

वापस लौट जाना या हृदयनाथ से भेंट करना यह निश्चय निरञ्जन से पहिले नहीं हो सका। मृत्यु के बारे में बातें करना सरल था। उसके बारे में दार्शनिकता पूर्वक विचार करना आसान था। किन्तु उसका प्रत्यक्ष स्वरूप आँखों से देखना यह बहुत कठिन है। मृत्यु का क्रम निरन्तर चलते रहने पर भी उसका साक्षात्कार कंपा देने वाला प्रसङ्ग है ऐसा निरञ्जन को भान हुआ। वह लौटा तो नहीं परन्तु उसके पैर भारी हो उठे हों इस प्रकार मुश्किल से कदम आगे बढ़ता।

हृदयनाथ अपने कमरे के दरवाजे से अड़ा खड़ा था। इस बलशाली भावहीन युवक के मन में क्या हो रहा है, इसकी कल्पना निरञ्जन नहीं कर सका। जड़ की सामर्थ धारक इस पुजारी का हृदय इस घटना से कैसी मर्म वेदना का अनुभव करता होगा यह जानने की उसकी जिज्ञासा हुई। हृदयनाथ संयोगवश ही वेदना को अपने मुख पर प्रदर्शित होने देता। सचमुच ही उसे दूसरों के समान ही पीड़ा होती है क्या, इसकी भी अनेकों को शंका थी। शरीर की दुर्बलता ही सारे दुखों की मूल है ऐसी जिसकी मान्यता हो और शरीर दुर्बलता सौ में से नव्वे में केवल भोग-विलास के परिणाम स्वरूप है ऐसा निश्चित सिद्धान्त जिसने मान लिया हो उसे मृत्यु का दुःख भी दूसरे संसारी लोगों के समान ही अकस्मात् की विपत्ति स्वरूप न लगना चाहिए। कार्य कारण के जन्जीर का परिणाम तो बुद्धिजन को प्रत्यक्ष दिखायी देता है। इस कारण सिद्धान्त विमुख सामान्यकोटि के मनुष्य के समान उसकी दशा न होना चाहिए।

किसी की बीमारी अथवा मृत्यु सुनकर हृदयनाथ शायद ही दया प्रदर्शित करता। फिर भी वह क्रूर न था। दुखः दूर करने का वह अपने भरसक प्रयत्न न करता हो यह बात नहीं थी। तथापि रोगी की परख करने वाले वैद्य के समान ही ऐसे प्रसंगों में तटस्थ वृत्ति धारण कर सकता था।

अमुक को क्षय हुआ है ऐसा सुन वह कहता:—"हाँ मैं जानता ही था।" 'अमुक की सब आशा छोड़ बैठे हैं' यह सुन कर वह कहता 'दूसरा क्या हो सकता है? उसका यही एक मार्ग ही है।' उसकी मान्यता ही ऐसी थी कि संसार में से रोग और मृत्यु को अदृश्य हो जाना चाहिये। जब तक हम उसे समूल मिटा नहीं सकते तब तक हमी दोषी हैं।

ऐसे सिद्धान्तवादी के अपने प्राणी के मृत्यु पर उसके भाव कैसे होते हैं इसे जानने की जिज्ञासा चपल निरंजन को हो यह स्वाभाविक ही था। हृदय ने निरंजन को देखा, वह कुछ बोला नहीं। उसकी नित्य वाली मुख की कठोरता इस समय बढ़ गयी हो ऐसा लगा। कठोर होने और कठोर दिखलाने का

आज भगीरथ प्रयत्न वह कर रहा हो यह दिखलायी देना चाहिये, नहीं तो साधारणतः अपने स्नेहियों के ऐसे प्रसङ्गों को देख कोमल मन पिघल पड़ता है। हृदयनाथ के आँखों में आँसू होता, आँसू ढलने के पूर्व की ललाई भी न थी। परन्तु मानसिक भार की पराकाष्ठा का महान् दुःख कट्टर हृदय से कोई घायल अश्रु शून्य वीर की अशान्त शान्ति उसके मुख पर प्रगट हो रही थी। आँसुओं से हृदयनाथ परिचित न हो ऐसा तो नहीं था। अश्रु प्रदर्शन को वह पौरुषहीनता मानता था। इस कारण कितने ही वर्षों से उसने आँसुओं का अनुभव ही नहीं किया यह कहा जा सकता है।

"भाभी मर गई ?" शोक से भर्राये कण्ठ से निरंजन ने पूछा।

हृदयनाथ का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। उसके गले में कोई भारी अवरोध हो पड़ा। इससे एक भी उद्‌गार मुँह से नहीं निकल सका। उसकी आँखों से आँसू ढुलके आ रहे हैं, ऐसा उसे लगा। सतत प्रयत्न कर उसने आँखों में ही आँसू रोक रक्खा। उसके कण्ठ से स्वर गायब हो गया था, अन्तः अकस्मात उसमें से स्वर फूट पड़ा :—

"मेरी भाभी ही नहीं, माँ भी गई।"

हृदयनाथ ने मुख फेर लिया। उससे अधिक बोला नहीं जा सका। अधिक बोलने का प्रयत्न करेगा तो आँखों से आँसू का बाँध फूट पड़ेगा ऐसा उसे लगा। दूसरी ओर से अरविन्द करुणस्वर से अक्रान्त करता बाहर आया। मृत्यु इतना बड़ा दुःख उत्पन्न करती है यह उसे आज ही समझ में आया।

सेवक, रिश्तेदार, मित्र इधर उधर आ जा रहे थे। हृदयनाथ ने किसी को कहते सुना :—

"सभी को दुःख है, यह ठीक है। परन्तु बच्चे बिना माँ के हो गये।"

हृदयनाथ को यह बात थोड़ी अप्रिय लगी। बकुल के मरने का अधिक दुःख किसे ? सबको एक सा दुःख नहीं ? दुःख में भी नाप जोख ? और बच्चों को ही अधिक दुःख ?

नीचे के खण्ड में बकुल के दोनों बालक कौन जाने किस कारणवश खिलखिला कर हँस पड़े। शोक पूर्ण वातावरण में इन बालकों के प्रसन्न अट्टहास ने सबके ध्यान को आकृष्ट किया।

किसी ने कहा :—बेचारे बच्चे हैं। इनके समझ में क्या आयेगा।

जिन्हें दुःख का ज्ञान न हो सके, जिन्हें ऐसे समय में हँसी आये, वे बालक किस कारणवश मन में दया उत्पन्न करते हैं? इतने में किसी ने कहा—

"मरे हुये बालक ने ही जन्म लेकर बेचारी की जान ली।"

बकुल के चार जीवित और एक मरा बालक हृदयनाथ की आँखों के सामने दिखलायी देने लगे! पाँचों ने बकुल का हिस्सा बाँट लिया।

जो बालक माता के जीवन में थोड़ी भी सहायता पहुँचाये वही जन्म लेने के अधिकारी हैं क्या?

इस विचार के आने के साथ ही मृत्यु यह विवाह के भयङ्कर परिणाम स्वरूप उसे दिखलायी दी। अमर्य्यादित वासना की तृप्ति ऊपर अंकुश लगे ऐसे विवाह में क्या कोई तत्त्व है? वैसा तत्त्व न हो तो फिर विवाह को इष्ट मानने वाले कैसी भयङ्कर भूल कर रहे हैं? फिर विवाह करना क्यों न रोकना चाहिये?

जीते जागते संसार के बीच अपना पंजा फैला कर अपना भोग (बलिदान) ले लेनेवाली मृत्यु के समक्ष दृष्टि करना कठिन है। सर्वज्ञ, सर्वशक्ति बनने का प्रयत्न करता मनुष्य आश्वासन के मार्ग की खोज करता है। वह भाग्य का दोष निकालता है, ग्रह का दोष निकलाता है, रोगों के माथे दोष मढ़ता है, हवा को आरोप लगाता है। विवाह की संस्था पर क्यों न आरोप लगाया जाय? विवाह की छत्र छाया के नीचे मनुष्य कौन कौन से घृणित पाप नहीं करते?

७

भाग्य का फेर

रम्भा के पिता मनमोहनराय एक प्रतिष्ठित वकील थे। प्रारम्भ में ही उनका प्रभाव अच्छा पड़ गया था, इसलिए उन्हें वकालत में सहायक रूप सार्वजनिक जीवन की सहायता नहीं लेनी पड़ी थी। राजनीति में वे जरा भी उत्सुक नहीं थे, उसी प्रकार म्युनिस्पेल्टी के मेम्बर अथवा चेअरमैन होने की भी लालसा नहीं रखते थे। कितने ही वकील प्रारम्भ में अधिक अवकाश होने के कारण प्रत्येक सार्वजनिक कार्य में उपस्थित रह भाषण आदि करने में समय व्यतीत करते हैं। कितने वकील इतने कमाये हुए होते हैं कि वृद्धावस्था में व्यवसाय का एक मार्गीपना हाल, रस के लिये उन्हें सार्वजनिक जीवन में पड़ना पड़ता है। मनमोहनराय को अपने ही धन्धे में परिपूर्णता लगती। वह नेता नहीं थे, किन्तु अच्छे प्रतिष्ठित वकीलों में उनकी गणना थी।

वकालत का व्यवसाय दो धारी तलवार सरीखा है, जिस ओर की धार के वर्तन में अधिक आर्थिक लाभ होनेवाला होगा उस ओर कार्य-रत रहने को प्रयत्न शील रहते हैं। मनमोहनराय ने अपनी कार्य-कुशलता से अनेक राज-द्रोही अपराधियों को मुक्त करा कर देश सेवा के लिए उन्हें पुनः मुक्त करा दिया था। परन्तु राज्य-द्रोही अपराधी जो सरकार की आँखों में अधिक खटकते और सरकार की जिन पर वक्र दृष्टि हो जाती थी तब मनमोहनराय खुशी से अपनी बुद्धि-शक्ति का प्रयोग सरकार की ओर से करते, और राज्य-द्रोही को काले पानी भिजवा देते। वे बड़े तथा जटिल मुकदमों के सिवाय सामान्य मुकदमों को हाथ में नहीं लेते थे। कितने रजवाड़े भी अपने राजकीय मामलों में उनकी सलाह लेते थे।

देशी राज्यों की स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। एक ओर ब्रिटिश-सरकार अपने सर्वभौम सत्ता की धौंस जब तब इन राज्यों पर जताती रहती, और दूसरी ओर प्रजा राज्य कार्य में अपने विशेष अधिकार की माँग बढ़ाती जा रही थी। अभी तक महाराजाओं की आधीनता स्वीकार करने में राजाओं को कठिनाई नहीं होती थी, सर्वभौम सत्ता का सिद्धान्त प्राचीन काल से ही मान्य रहा है। परन्तु राज्य व्यवस्था में प्रजा-सत्ता की माँग यह नई और पश्चात् प्रणाली थी। निःसन्देह कितने इतिहास-वेत्ताओं ने प्रजा-सत्ता की नींव प्राचीन काल में भी सुनी लिखा है, तथापि राजा को निरर्थक बना देने का प्रयत्न करती प्रजा की माँग और लड़ाइयाँ यह अर्वाचीन युग का लक्षण है।

कोई भी शासन अथवा कोई भी संस्था अपने आप विलय होने के लिये प्रस्तुत नहीं होती। और यह अनेक युगों से प्रजा-जनों द्वारा स्वीकृत चला आता हुआ राजा, हर संभव प्रयत्न करने के सिवाय अपने को शून्य में मिला दे यह असम्भव था। प्रजा-सत्ता के ज्वार समक्ष स्वयं अपने को क्रम-क्रम मर्यादित कर, केवल मात्र यत्न पूर्वक सम्हाल रखने जैसा अवशेष बनता, अथवा रङ्ग-विरङ्गी भावनाओं को प्रेरकर अन्धकार समूल अदृश्य बन जाता राजा, यह वर्तमान युग का महाकरुण दृश्य था!

सुन्दरपुर के राज्यव्यवस्था के विषय में मनमोहनराय की सम्मति लेने के लिये वहाँ के अधिकारी महेशचन्द्र आये थे। मनमोहनराय और महेशचन्द्र दोनों परस्पर भिन्न प्रकृति के व्यक्ति थे। अदालत में अधिक बोलने के कारण मनमोहनराय अदालत के बाहर बहुत कम बोलते थे।

महेशचन्द्र की जिह्वा पर सरस्वती का वास हो ऐसा जान पड़ता था। वे बराबर बोला ही करते थे ऐसा प्रतीत होता था। मनमोहनराय एक आसन से आराम से बैठे रहते। महेशचन्द्र बैठे हुए भी अस्थिर लगते जितने तेजी से उनकी जीभ चलती थी उतने ही गति से उनकी आँख और हाथ भी चलते रहते। यहाँ तक किसी समय उनकी चपलता अधिक

होने लगती। कुर्सी के नीचे लटके हिलते हुए पैरों को वे कुछ क्षणों में ऊपर खींच लेते और पुनः कुछ क्षणों में नीचे गिरा देते।

"कहिये साहब! कागजों को पढ़कर आपने क्या विचार किया?" उसने पूछा।

"कागज तो आपके राजासाहब के विपक्ष ही मालूम होते हैं।" मनमोहन-राय ने कहा।

"ऐसा! तब मैं क्या कहता था? रायजी साहब! अब ऐजेन्सी में पहिले सरीखे आदमी नहीं रहे और यह तो मुझे खबर मिली उनके नये दीवान को नहीं मिली। मेरा तो स्वभाव ही ऐसा है कि जिसका बन सके काम कर देना। विल्सन साहब का आग्रह न होता तो मैं. इनके राज्य में न गया होता। और यदि मुझे रहने दिये होते तो उनका यह वक्त आता ही नहीं। अब झक मारकर मुझे बुलाना पड़ा?—महेशचन्द्र ने कागज़ों की बात छोड़ अपना इतिहास कहा—

महेशचन्द्र ब्रिटिश शासन के राज्य विभाग में कर्मचारी थे। वे ग्रेजुएट थे। किन्तु अपने बुद्धि चातुर्य्य से अपने विभाग से शासन-व्यवस्था विभाग में आ गये। कार्य कुशलता की एक व्योंत उनके हाथ लग गयी थी। जो जो ऊपर के अफसर आते थे उनके निकट घुस पैठ कर आगत-स्वागत में उनके चारो ओर फिरा करता था और उनका इतना उच्चकोटि का सुभव्य स्वागत करता कि उन अफसरों का उसके प्रति बुरा विचार आही नहीं सकता था। फूलों के हार, मेवा, मिठाई, इन सब मिजवानों द्वारा न जीता गया हो ऐसा कोई आफिसर संसार भर में बिरला ही होगा। आफिसरों को अपने बुद्धि कौशल से इस प्रकार वशीभूत बना, महेशचन्द्र निर्भयता से अपनी सत्ता बर-तता था। उसके विरोधी भी उसके माथे इच्छानुसार औचित्य बरतते। भेंट के बहाने वस्तुयें ग्रहण करता। पुनः किये हुये कार्य के लाभ में हिस्सा बँटाता, बाद में काम पूरा करने की आशा दिला कीमत ठहराता, उससे आगे बढ़ दोनों पक्षों से धन ले लेता, जिसका कार्य विरुद्ध पड़ जाता उसे बड़ी योग्यता

से धन लौटा देता, परन्तु तुरन्त दोनों पक्षों से रिश्वत लेकर दोनों के धन पर अपना स्वामित्व रखता. इस प्रकार की उसके बारे में बहुत बातें सुनने में आती थी। किन्तु यह विरोधी लोगों का ही कथन था। न्याय की अदालत में अथवा किसी ऊपर की तलाश में ऐसी कोई बात प्रकट हुई हो ऐसा नहीं था। उसे न्याय दिखाने के लिये कहना चाहिये, जो कि विरोधी हैं वे तो उसके विरुद्ध की जाँच में भी दूषण खोज उसका कारण बतलाते जाते थे। कलक्टर साहब के यहाँ वह पूरा गल्ला भेजा करता था, असिस्टेन्ट कलक्टर को मुफ्त में घोड़ा गाड़ी दी थी, डिप्टी कलक्टर ने अपने वेतन से घर बनवाया उसमें सागवान लकड़ी के दो बैगन उसने भिजवाये थे, ऐसी ऐसी चुगली कर, निष्फल बने विरोधी अपने मन में बहुत प्रसन्न होते। लेकिन महेशचन्द्र अपनी उच्च धर्म भावना का सबको प्रत्यक्ष प्रमाण स्वयं ही दे सकता था। गीता का वह नित्य पाठ करता। शिक्षित व्यक्तियों को तिलक लगाने में जो लज्जा लगती है उस लज्जा को कभी उसने ग्रहण नहीं किया। सारा संसार देख सके ऐसा दीर्घाकार त्रिपुंड ललाट पर लगा, वह हिन्दू धर्म्म का अनुयायी होने का अभिमान करता था। और वैसे ही उससे अथवा किसी दूसरे से यह बात भूल न जाय ऐसी धारणा बना, पहिरे हुये सफेद वस्त्रों के ऊपर अनोखे ढंग से लहराती रुद्राक्ष की सोने के तार से मढ़ी माला वह खास कर पहिनता।

उच्च अधिकारियों से रक्षित महेशचन्द्र अफसरों का सद्उपयोग करना जानता था। जीवन विजय प्राप्त करने के लिये मनुष्य को प्राप्त हुआ है। इस विजय का साधन—जो हो उसका—उपयोग वह करे उसमें सफलता न प्राप्त करने वाले सब कोई महेशचन्द्र को खुशामदी, हाँजी, हाँजी कहने वाले का खिताब देते। इन खिताबों के देने वालों को एक ओर ढकेल महेशचन्द्र ने एक यूरोपियन आफिसर की मेहरबानी से सुन्दरपुर की दीवानगिरी प्राप्त की।

सुन्दरपुर एक छोटा सा आठ लाख वार्षिक आय का राज्य था। वहाँ के ठाकुर साहब जो कालान्तर पश्चात् राजा की उपाधि से विभूषित हुए थे एजेन्सी के अधिकारियों के आँख में काँटे के भाँति बहुत ही गड़ रहे थे। राजा वीरसिंह ने अंग्रेज सरकार की महती कृपा वश ही सुन्दरपुर की गद्दी पायी थी।

एक दयालु के पुत्र स्वरूप उन्होंने बीस इक्कीस वर्ष तक कठिनाइयों का अच्छी तरह अनुभव किया था। ऋण देने में ही मिट गया उसके गर्विष्ठ पिता ने वंश परम्परा से चला आता अभिमान् दूर कर, अपने पुत्र वीरसिंह को अंग्रेजी भाषा का अभ्यास स्वार्थ साधन हेतु कराया था। वहाँ के राज्याधिकारियों ने उसी प्रकार उनके लेनदारों ने उनकी जमीन जागीर छीन ली थी। पुत्र पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त कर लेगा तब अंग्रेज अधिकारियों में मान पायेगा और गई हुई सम्पत्ति भी कुछ अंशों में वापस मिलेगी, इस आशा में उन्होंने वीरसिंह को शिक्षा प्राप्त करने लिये दूसरे नगर में भेजा। सौभाग्य वश वीरसिंह को शिक्षा ग्रहण करने में रुचि हो गई। मधुसूदन नाम के तेज विद्यार्थी से वीरसिंह का साथ बाल्यकाल ही से हो गया और वीरसिंह की शिक्षा में उन्नति होती गई। वीरसिंह को उम्र वृद्धि के साथ अपनी परिस्थिति का भी थोड़ा ध्यान होने लगा पिता की इच्छा उन्हें पूर्ण शिक्षित बनाने की थी किन्तु इच्छानुसार शिक्षा दिलाने का साधन वह पूर्ण कर नहीं पाते। पायजामे और साफे के कारण अन्य सह पाठियों से पृथक हो जाता वीरसिंह अनेकों बार पुस्तकों का मूल्य और फीस भी समय पर नहीं दे सकता था। धनवान राज्य-कुटुम्ब की ज्ञात लापरवाही आलस्य तथा अनियमितता के कारण एक वर्ष चले, दो वर्ष चल जाय, परन्तु उधार की आर्थिक व्यवस्था शीघ्र ही भूल जाता व्यापारी समाज, दो वर्ष से अधिक किसी की साख रक्खे यह क्रम बनना मुश्किल है।

एक दिन शिक्षक ने कक्षा में कहाः—क्यों ठाकुर साहब! अभीतक आपने फीस नहीं दिया। कलतक नहीं लायेंगे तो आप का नाम पृथक कर दिया जायेगा।

ठाकुर वीरसिंह ने मुख नीचा कर लिया। पिता को रुपयों के लिये चार पत्र लिखने पर एक का भी उत्तर नहीं आया था। उसी प्रकार फीस न देने पर यह कठोर हृदय और किसी की लज्जा न रखने वाले शिक्षक अवश्य ही नाम काट देंगे ऐसा उसके मन को निश्चय लगा। भविष्य में कल दिन होने वाले अपमान से बचने की इसने कोशिश की।

"सर! पिताजी को मैंने खर्च भेजने के लिये लिखा है।"

"तुम्हारे पिता सौ दिन में भी रुपया न भेजे तो मैं क्या करूँ ? तुम हर महीने में ऐसा करते हो। जुरमाना भरते हो फिर भी समय पर फीस नहीं देते ?"

वीरसिंह कुछ उत्तर न दे सका ।

मधुसूदन के पास आज ही मनीआर्डर से आया हुआ रुपया था। उसने तुरन्त रुपया निकाल कर वीरसिंह को दे कर बोलाः—

"लो वीरसिंह ! फीस दे दो। तुम्हारा मनिआर्डर मैंने ले लिया।"

मधुसूधन ने अपने कुलीन मित्र की प्रतिष्ठा के लिये झूट बोला। झूठा भले ही पापी गिना जाय, किन्तु कितने ही झूठ के गर्भ में छिपा हुआ उच्च उद्देश्य रहता है, जो कि झूठ दोष की कक्षा में से समूल—निकल जाता है। हृदय में अग्नि प्रज्ज्वलित करता कठोर सत्य के समक्ष मन को शान्ति प्रदान करने वाले असत्य क्या अधिक पवित्र नहीं !

एक दिन पुस्तक विक्रेता ने ठाकुर साहब को पकड़ा।

"ठाकुर साहब ! अभी तक डिक्शनरी का दाम अपने नहीं दिया ? कितने वर्ष हुए आप जानते हैं ?"

वीरसिंह जानता ही था कि उसका पैसा तीन वर्ष का बाकी है। "हाँ हाँ ! अब मैं आज कल में ही तुम्हारा दाम दे दूँगा।"—वह दूसरा क्या उत्तर देता।

"दे दूँगा वाली बात अब नहीं चलेगी। मैं तो अभी लूँगा।"

"परन्तु पैसा क्या मैं लिये लिये फिरा करता हूँ ?" वीरसिंह ने साहूकारी प्रदर्शित की।

"पैसा न देने के कारण ही तो आपने यह रास्ता छोड़ दिया है ? चलिये आपके साथ घर चलता हूँ।" पुस्तक विक्रेता ने कहा।

वीरसिंह ने खूब शोर-गुल मचाया। कर्ज वसूल न होने के कारण जितना भी अपमान सम्भव था उतना करने के पश्चात् उस पुस्तक विक्रेता ने वीरसिंह को जाने दिया। उसके साथ में एक व्यक्ति और था, उसने जोर से पूछा—!

"कौन है यह ठाकुर।"

"भगवान जाने किस जहन्नुम का ठाकुर है।"

"अब भी न दे तो साफा उतार लेना।"

बहुत तेज चाल से जाने पर भी वीरसिंह ने उपरोक्त बात सुनी। आवश्यकतानुसार जिसके पास धन नहीं होता उसकी स्थिति अतिशय दयनीय होती है। सभी का खुशामदी, सभी से दबा हुआ, अपमान का पात्र न होते हुये भी वह अपमान सहन करता है। लेनदारों का कर्ज चुकाने की इच्छा रखते हुये भी, उस इच्छा की पूर्ति न कर सकने के कारण लेनदारों को यह स्थिति पूर्ण दया उत्पन्न करनेवाली होनी चाहिये। अपघात होता ही क्यों है? ऐसा जिसके मन में प्रश्न उठता हो उसे ऋणी के स्थिति में डाल देना चाहिये।

अपमान की अन्तरज्वाला का दहन सहता उस राजपूत बालक ने घर आकर अपने बालों को नोंच खसोट डाला। रसोई परोसी थाली में उसने लात मार दिया। क्रोध शमन का कोई रास्ता न दीखने पर वह दोनों हथेलियों के बीच मुँह ढक कर रोने लगा। उसका नौकर थोड़ा विस्मित हुआ, आँसू बहाते हुये वीरसिंह को मालूम नहीं हुआ कि उसका मित्र मधुसूदन उसके सामने आकर खड़ा है। मधुसूदन ने नौकर से संकेत से प्रश्न किया। नौकर ने भी संकेत ही द्वारा उत्तर दिया कि वह कुछ नहीं जानता है। कुछ देर रुकने के पश्चात् मधुसूदन ने पूछा :—

"क्यों वीरसिंह! क्या हुआ?"

वीरसिंह ने सिर उठाया, उसकी अश्रुपूर्ण आँखों ने मधुसूदन के हृदय में अत्यधिक दया उत्पन्न कर दिया। कौटुम्बिक अभिमान जब टिक नहीं सकता तब वह अवश्य सहारा माँगता है। वीरसिंह ने नौकर को अन्दर भेज दिया और बहुत कुछ अंशों में उसकी स्थिति को समझ जाने वाले मधुसूदन से उसने गद्‌गद कंठ से अपनी गरीबी की कथा कह दी। अपने मुँह पर स्वयं तमाचा मार कर मुख लाल करने की कहावत प्रचलित है,, वह सचमुच एकदम ठीक है और बिना अतिशयोक्ति के है ऐसा मधुसूदन को निश्चय हुआ।

अवश्य किसी मनुष्य ने ऐसा व्यवहार किया होगा उसी से यह कहावत चल पड़ी होगी। परन्तु यह स्थिति कैसी ! इस मनुष्य पर भले ही कोई हँसता हो, पर मधुसूदन नहीं हँसा। जाति और कुटुम्ब के पीढ़ियों से चले आते अभिमान को अपमान भरा धक्का उससे सहन नहीं हुआ। अनेकों बार उसने वीरसिंह को दयनीय स्थिति से उबार लिया था और वीरसिंह के मन को ठेस न लगे ऐसी गोपनीय योजना द्वारा उसने सहायता की थी। आज वीरसिंह ने खुले मन अपनी करुण कहानी मित्र से कह सुनायी इसलिए मित्र ने भी उदार हृदय से उसकी कठिनाइयों में योग देने का वचन दिया।

मधुसूदन के पिता उसे पूर्ण रूपेण शिक्षा दे सकें ऐसे स्थिति के थे, उन्हें मध्यम वर्ग का ही कहा जा सकेगा। फिर भी पुत्र की शिक्षा के लिये खर्च न कर सकें ऐसे मध्यम वर्ग में उनकी गणना नहीं की जा सकती। मधुसूदन ने अपने खर्च पर अंकुश लगाया और अपनी बचत का उपयोग वीरसिंह की कठिनाइयों को हल करने में करने लगा। वीरसिंह भी अनेकों बार दीनता का प्रदर्शन कर मधुसूदन का उपकार मानता।

"मधु तुम न होते तो मैं किस प्रकार शिक्षा ग्रहण करता ?"

"चुप रहो, क्या बका करते हो ? समूचे कालेज में विद्यार्थी भरे हुये हैं, वे जिस प्रकार पढ़ पाते हैं वैसे ही तुम भी पढ़ते !" मधुसूदन प्रसङ्ग बदल देता।

"परन्तु तुम्हारी सहायता बिना मुझे मध्य में ही शिक्षा बन्द कर देना पड़ता यह क्या मैं नहीं समझता !" उपकार का आभार मानते हुए वीरसिंह कहता।

"तुम्हारे पास क्या मिल्कियत कम है। हाथ में इन्तजाम आने पर सूद सहित बदला चुका देना।" वीरसिंह की ग्लानि मिटाने के लिए मधुसूदन कहता।

वीरसिंह के पिता भी इस विद्यार्थी मित्र के उपकार को जान गये। अपनी राजवंशीय उदारता के आवेश में वे ऐसे सुपात्र मित्र के उपकार का प्रतिकार करने को उत्सुक रहते। किन्तु अहिंसक गुजरातियों के प्रयोग में न लाने के

कारण बहुत दिनों से खूँटी पर टंगी ढाल तथा चाँदी के मूठ की तलवार तथा रेशमी सामानों के सिवाय बदले में देने के लिये और किसी वस्तु का जुगाड़ उनके पास न था। ये स्वतुएँ भी साहूकार के पास जाने को उतावली मालूम पड़तीं। इसलिए वीरसिंह को कमा कर अपने मित्र को उम्दा हीरे की अगूँठी अथवा मोतियों का कण्ठा दे देने की सलाह दे, वृद्ध पिता उसे आश्वासन देते।

वीरसिंह और मधुसूदन दोनों मित्र खेलों में भी अग्रगणी रहते। उनके कालेज टीम ने एक गोरे कलक्टर को क्रिकेट खेलने के लिये आमन्त्रित किया। वीरसिंह के खेलने की कुशलता देखकर कलक्टर साहब प्रसन्न हुए। पत्नी से वीरसिंह का परिचय कराया और टेनिस के खेल में अपने पत्नी का प्रतिद्वन्दी बनाया। छुट्टी के दिनों में वीरसिंह अपने घर आये हुए थे, तब वही अंग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट के पद पर उसी गाँव में मुकाम कर वहाँ के ठाकुर का मेहमान बना था। ठाकुर साहब के विरुद्ध आरोपों की जाँच भी उन्हें ही करनी थी।

एक दिन वीरसिंह को अपने पिता के साथ मार्ग में जाते हुए साहब ने देखा, आदमी को भेज कर तुरन्त ही उन्होंने अपनेपास बुलाया। पिता की छाती फूल कर बित्तों ऊँची हो गयी। बेटे को पढ़ाने में किया हुआ खर्च इतने में ही वसूल हो गया ऐसा उन्हें अनुभव हुआ। वीरसिंह साहब को पहिचानते थे और समूचे गाँव में अकेले वही अंग्रेजी जानते थे, इस कारण साहब गाँव में जब तक थे, तब तक सुबह शाम उन्हें बुलाते। इतना ही नहीं वह उन्हें अपने साथ हवा खोरी के लिए भी ले जाते। साहब ने एक दिन ठाकुर साहब को चाय पीने का निमन्त्रण दिया। पाँच सात दरबारियों के झुंड के साथ ठाकुर साहब ने साहब के तम्बू में प्रवेश करते ही वीरसिंह को देखा। वीरसिंह और उनके पिता से ठाकुर साहब का मन कभी नहीं मिला था। वीरसिंह को साहब ने बहुत ही मुँह लगा लिया है, यह बात ठाकुर साहब के कानों में पड़ चुकी थी। वीरसिंह को वहाँ बैठा देख ठाकुर साहब की भवें तन उठीं। चतुर

अंग्रेज ने इसे देख लिया, और जान बूझकर वीरसिंह और ठाकुर साहब में परिचय कराया।

"ठाकुर साहब! आप इनसे परिचित हैं क्या?" अंग्रेजी ढंग से गुजराती भाषा बोलते हुए साहब ने प्रश्न किया।

"जी, हजूर! यह वीरू हमारे ही कुटुम्ब का लड़का है।" ठाकुर साहब ने उत्तर दिया।

"तब तो आप इन्हें पढ़ा रहे होंगे?"

"नहीं, सरकार।"

"नहीं! क्यों? अपने कुटुम्बी युवकों को आपको शिक्षित बनाना चाहिये!"

"जी हाँ! परन्तु यह हमारे दूर के कुटुम्बी हैं।"

"ठीक! समझ लिया। आप इन्हें विलायत भेजें और इसका कुल खर्च सम्हालें। क्यों सम्हालेंगे न?"

"जी सरकार। बात तो यह है कि विलायत भेजने पर लड़के बिगड़ जाते हैं और खर्च सम्हालने की बात के बारे में राज्य की हालत क्या आपसे छिपी है? कर्ज चुकाना अभी बाकी है।"

"नहीं नहीं, ठाकुर साहब! यह आपकी भूल है। ऐसा होशियार युवक आपके कुटुम्ब में हो, और मैं आपके स्थान पर होऊँ तो अवश्य गोद लूँ तथा विलायत भेजूँ।"

ठाकुर साहब को सन्तान न थी। गोद लेने के विषय में इन्हें साहब की इच्छा अपने अनुकूल बनानी थी। वह पहिले ही दो चार लड़कों के लिये सूचना भेज चुके थे, और साहब के आने पर उनसे भेंट भी कराई थी। पिछड़े जमाने के ठाकुरों की मूर्खता और व्यसनों के मूर्त अवतार रूप ये बालक बहुमूल्य आभूषणों और वस्त्रों से लदे होने के सिवा, अपनी नालायकी तथा कुरूपता को नहीं छिपा सके, इसलिये एजेन्ट साहब ने उनमें से किसी का

पसन्द करने से इन्कार कर दिया था। ठाकुर साहब को यह बात अच्छी नहीं लगी, और उसपर यह लगाव देख तथा उसे दत्तक लेने की बात सुन बिना किसी खास कारण के एक रिश्तेदारी के लड़के वीरसिंह की सिफारिश करने से ठाकुर साहब के मन में वीरसिंह के प्रति जो पहिले से प्रतिकूल भावनायें थीं वह और बढ़ीं। समूचे गाँव में यह बात फैल गई कि ठाकुर साहब वीरसिंह को दत्तक लेने वाले हैं। ठाकुर साहब ने निश्चय किया कि राज्य भले ही चला जाये परन्तु वीरसिंह को दत्तक नहीं लेंगे।

साहब की पुत्र के ऊपर कृपा से हर्षित हुए वीरसिंह के पिता ने यह बात सुनी, उसका क्रोध भभक उठा। मेरा पुत्र इस नालायक ठाकुर के यहाँ दत्तक होकर जाय ? यह राज्य तो क्या इन्द्रासन मिलने पर भी यह नहीं होगा।

ठाकुर साहब निःसन्तान ही स्वर्ग सिधार गये। निकट का कोई सम्बन्धी न था। था तो केवल विकृत दिमाग का एक नाती। पोलिटिकल एजेन्ट पदसे साहब ने वीरसिंह के लिए पहिले ही से लिख दिया था। ये ही एजेन्ट साहब सरकार के राजकीय विभाग में उच्चपद पर उस समय पदारूढ़ हुए। उन्होंने अपने पूर्व अनुभव की सहायता ले, वीरसिंह की शिक्षा और क्षमता पर विश्वास कर, उनकी विशेष रूप से सहायता की। उत्तराधिकारी के निर्वाचन में अंग्रेज अधिकारी बहुत सतर्कता बरतते मालूम होते हैं। वहाँ ही दूसरे वारिस जितनी चाहिए उससे अधिक झंझट खड़ी करते हैं। किन्तु वीरसिंह के लिये हुई स्वयं स्फुरित भलाई में वह अंग्रेजी अधिकारी अपने पूर्व निश्चय पर ही दृढ़ रहा। अंग्रेज अधिकारी जिसका हाथ पकड़ लेते हैं उसका पूरा पूरा कल्याण करते हैं। ऐसी उनकी ख्याति ऐसे प्रसङ्गों द्वारा प्रचारित है। वीरसिंह को ज्ञान भी न था कि उनके प्रति इस प्रकार का कार्य क्रम चल रहा है। पोलिटिकल एजेन्ट के पद से उन्नति करने के बाद से वह साहब से मिला ही न था। बी० ए० की परीक्षा का परिणाम मिला वह अच्छे रूप में उत्तीर्ण हुआ था। भविष्य का विचार उसने शुरू किया। राज्याधिकारियों के कुटुम्ब में अधिक लोग कम शिक्षित थे। उसे विश्वास था कि किसी देशी रियासत में उसे एक

अच्छा पद प्राप्त हो जायेगा। कदाचित् सरकारी नौकरी में भी उसका थोड़ा परिचय होने के कारण कोई ठीक नौकरी मिल सकती है। पोलिटिकल एजेन्ट बदल कर कहाँ गए इसकी खोज उसने शुरू की। एकाएक उसे उन्हीं की ओर से तुरन्त मिलने के लिए एक तार मिला।

मधुसूदन को साथ लेकर साहब से मिलने के लिए वह रवाना हो गया। वह ग्रेजुयेट हो गया है इस कारण उससे मिलने और मुबारकबाद देने के लिये साहब ने पुराने परिचय का ध्यान कर उसे बुलाया है। ऐसा उसे लगा। गद्दी के लिए उस ठाकुर से उसके समक्ष की हुई बातों में केवल मेहरबानी दिखलाने का माया भरे प्रवास की कल्पना उसने की और बाद में उसके विरुद्ध राज्य में चलती बातों के विषय में इस विचार को ही शशक शृंगवत् मान, उसने अपना विद्याभ्यास चालू रक्खा था। इसलिये साहब से अपने भविष्य के बारे में किस प्रकार से कहना चाहिये इसी योजना का विचार विनमय गाड़ी में वह मधुसूदन से करता हुआ जा रहा था।

दोनों मित्र साहब के बँगले पहुँचे। साहब बंगले में बाहर पेड़ के नीचे कुर्सी डाले बैठे हुए थे। दूर से उन्होंने दोनों को देखा मधुसूदन भी क्रिकेट के खेल में साहब के परिचय में सहज ही आ गया था। साहब ने दोनों विद्यार्थियों को समीप बुलाया और वीरसिंह को सम्बोधित कर कहा—"आइये! सुन्दरपुर के ठाकुर साहब।"

वीरसिंह थोड़े विचार में पड़ गया, साहब मुझे भूल गये या मजाक कर रहे हैं!

"साहब! मैं सुन्दरपुर का अवश्य हूँ, परन्तु वहाँ का ठाकुर नहीं। ठाकुर साहब का तो स्वर्गवास हो गया।"

"The King is dead long live the Ki g!" साहब ने थोड़ा हँसते हुए कहा।

"अभी गद्दी पर कोई आया नहीं है। जसी ही है।"

"इस राज्य के अधिकारी यदि आप बना दिए जाँय तो!" साहब ने पूछा।

बीरसिंह को पूर्व घटित घटना स्मृति में आयी। घटना महत्व की न होने के कारण जो विस्मृत हो चुकी थी, उसी की पुनः आज साहब ने क्यों चर्चा चलायी? वह थोड़ा स्तब्ध हुआ। निर्धन व्यक्ति के पैरों का अभिषेक स्वर्ण कलश से हाथी यदि करे तो जितना आश्चर्य होगा, उतना ही आश्चर्य उसे हुआ। मधुसूदन बोला—

"इनकी गद्दी के लिए उम्मीदवारी ही कहाँ है? परन्तु यदि ये राजा हो जाँय तो निश्चय ही गद्दी की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।"

"मेरी भी ऐसी ही धारणा है। एक सप्ताह में ही ये राजा बना दिये गये ऐसी साधिकार घोषणा प्रचारित होगी। इस बीच इन्हें गवर्नर साहब से भेंट करनी है।" साहब ने कहा।

बिना कल्पना के ही अपना मित्र ऐसे उच्च पद पर प्रतिष्ठित होगा इस विचार के उदय होते ही मधुसूदन अत्यधिक प्रसन्न हो उठा। सारा दिन आनन्द विभोर हो बीरसिंह के सद्भाग्य पर विचार और बातें ही करता रहा। गवर्नर साहब के पास जाते समय कैसी पोशाक पहिनना, किस तरह बैठना, किस प्रकार की बातें करना, ऐसी अनेक सम्मतियाँ उसने दीं। बीरसिंह पूर्णतः गम्भीर बन अपना भूतकाल आँखों के समक्ष प्रतिबिम्बित कर रहा था।

"मधुसूदन! मेरे पास तो कपड़े ही नहीं हैं।" बीरसिंह ने स्थिति स्पष्ट की।

"जो तुम्हें कपड़े पसन्द होंगे वह मिल जायगा। गवर्नर साहब के सामने भिखारी के रूप में गरीबी का तो प्रदर्शन करना नहीं है!"

बीरसिंह थोड़ा हँसा, उसके हँसी में दुख का भार लग रहा था।

"क्यों? अब क्या हुआ? तुम्हें राज्य मिलनेवाला है, अब तो मन प्रसन्न रक्खो। इतने मूजी क्यों बने जाते हो?"

"मैं न मालूम क्यों उदासीन हो रहा हूँ।"

"तुम नर्वस (Nervous) हो गये हो। घबड़ाओ नहीं। तुम्हारी शिक्षा ने तुम्हें कितना लाभ पहुँचाया इसका विचार करो।"

"इसीका मैं विचार कर रहा हूँ। यदि तुम न होते तो हमारी शिक्षा अधूरे में अटक जाती मैं क्या यह भूल सकता हूँ? यथार्थतः राजा तो तुम्हें होना चाहिये।" वीरसिंह ने कहा।

मधुसूदन को खूब हँसी आयी। हँसते हँसते उसने कहा—

"वाह वाह! तुम असल क्षत्री हो। अभी राज्य तो मिला ही नहीं और उसके पूर्व ही उसे दूसरे को देने को तैयार हो गये।"

"मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ। मैं स्वयं अपने को और यह राज्य दोनों तुम्हे सौंप दूँ तो भी तुम्हारे उपकार के ऋण से मुक्त नहीं हो सकता।"

"बहुत ठीक, बहुत ठीक। मुझे पूरा पूरा विश्वास है कि तुम अपनी जाति और अपना राज्य दोनों बेचोगे। उड़ाऊ जाति का भरोसा ही क्या? परन्तु मुझे तुम्हारा राज्य नहीं चाहिये। सिंहासन पर बैठना और उससे च्युत होना तुम राजवंशियों को ही आता है"—हँसी में थोड़ा कटुबचन कह मधुसूदन ने वीरसिंह द्वारा होती हुई अपने उपकारों की व्याख्या को रोक दिया।

गवर्नर साहब से मुलाकात में वीरसिंह ने अपना अच्छा प्रभाव डाला। यदि आपको राज्य मिल जाय तो आप क्या करेंगे ऐसे प्रश्न प्रत्येक उम्मीदवार से गवर्नर साहब ने पूछा था। ग्राम-बस्ती में रहनेवाले, शब्दों का भी शुद्ध उच्चारण न कर सकनेवाले कितने ही उम्मीदवार गवर्नर साहब को देख रा पड़े थे। कितनों ने घोड़ा रखने, हाथी पर सवारी करने, और ऊँची २ इमारतों के निर्माण तथा थियेटर आदि देखने की आकांक्षा प्रगट की। भविष्य की रसिकता का किशोर-अवस्था में साधारणतः प्रदर्शन करते हुए एक पन्द्रह वर्ष के गद्दी के वारिस ने सात आठ रानियों से विवाह करने की पूर्व लालसा कह सुनायी। गवर्नर साहब ने सभी वारिसों को ना पसन्द किया और

जिसकी ओर से कुछ भी प्रयत्न नहीं हुआ था उस वीरसिंह को उस साहब के सिफारिश पर साक्षात्कार के लिये निमन्त्रित किया।

ग्रेजुयेट और अनुभवी वीरसिंह, राज्य प्राप्त हो जाने पर क्या-क्या विकास करेंगे, इसे वह उचित रूप में बतला सकें ऐसा था। उन्होंने अपने संस्कार और गम्भीरता की छाप गवर्नर साहब पर डाली। बातों ही बातों में गवर्नर साहब ने हँसते हुए कहा—

"आप राज-पद पाने पर क्या-क्या करेंगे उसे तो उचित ही समझाया। किन्तु एक महत्व की बात भूल रहे हैं, ऐसा क्या आपको अनुभव नहीं हो रहा है?"

"मान्यवर! मैं कुछ महत्त्वपूर्ण बात भूलता होऊँ, यह स्वाभाविक है। राज्य-प्रकरण के व्यवहारिकता का अनुभव मैंने नहीं किया है, फिर भी जहाँ मैं चलूँगा वहाँ आप सरीखे मेरे शुभ-चिन्तक अवश्य ही योग्य समय पर मुझे मेरी भूल से सचेत करेंगे!" वीरसिंह ने कहा।

गवर्नर साहब यह उत्तर सुन अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—

"निश्चय ही! अवश्य ही उस बात को समझायेंगे। हम आपके हितचिन्तक हैं यह आपने कहा इससे मैं बहुत खुश हुआ। विचार में एकदम और आप आगे बढ़ें तब समझेंगे कि अंग्रेज सरकार आपकी शुभेच्छुक है। हाँ अब करना क्या रहा?"

"अंग्रेज सरकार की सलाह मुझे सर्वदा मान्य रहेगी।"

"और उसी प्रकार आप आदरणीय सम्राट के प्रति वफादार रहेंगे! ऐसा मेरा विश्वास है।"—गवर्नर साहब ने वचन लेने के लिये कहा।

सम्राट के प्रति वफादार रहने का वचन गवर्नर साहब ले रहे हैं इसे अब वीरसिंह ने समझा। इतना उच्च अधिकारी इस विषय में कितनी सतर्कता पूर्वक वचन लेता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करने से वीरसिंह को शासननीति की कूटनीति पर स्वाभाविक ध्यान आकर्षित हुआ।

वीरसिंह ने वफादार रहने का विश्वास दिलाया। गवर्नर साहब ने भी वीरसिंह को ही राज्य मिलेगा इसका वचन दिया। पास तथा दूर के कुटुम्बियों का विचार मन से निकाल, साधारण रिश्तेदारी का आधार मान वीरसिंह को कुछ समय पश्चात् सुन्दरपुर की गद्दी पर बिठा दिया गया। ठाकुर के रूप में आज तक परिचित वहाँ के राज्याधिकारी को वीरसिंह के राज्याधिकार के समय राजा की उपाधि भी प्रदत्त की गई।

८

राज्य सुख

अकस्मात अपने संरक्षण में आयी हुई प्रजा की चतुर्मुख उन्नति हो ऐसी वीरसिंह की प्रबल इच्छा थी। इसमें शिक्षा के नवीन संस्कार पड़े थे। इस कारण पुराने प्रकार की दिखावट तथा लपझप इसे जरा भी पसन्द न थी। दस सेवक पीछे-पीछे चलें तब ही राजा बाहर निकल सकता है, ऐसी लोगों की मान्यता थी। अपने दुर्ग के बाहर कदम रखते ही बीस सेवकों की टुकड़ी वीरसिंह के साथ साथ चलने को प्रस्तुत रहती। इसे अनुभव हुआ कि निरपराध ही बन्दी बनना निरुपयोगी है। अतएव आज्ञा दिया कि उसके साथ एक अथवा दो सेवक रहें, अधिक को आवश्यकतानुसार स्वयं बुला लिया जायगा।

दिखावट की अभ्यस्त प्रजा को यह परिवर्तन अनुकूल नहीं पड़ा। पन्द्रह बीस सेवकों के बीच राजा अधिक रोबदार दिखेगा या एक दो सेवकों के साथ पहिचाना भी न जा सके ऐसी रीति से भ्रमण करता राजा अधिक प्रभावयुक्त मालूम होगा? राजाओं और महाराजाओं से परिचित हुई हिन्दुस्तानी प्रजा एक ही उत्तर देगी।

जरी की पोशाक, हीरे मोती के आभूषण, सोने का तोड़ा और कड़ा पहिनने का प्रसंग राजाओं को अनेकों बार आता है। रोबदार दर्बार, सोने चाँदी की छड़ी लिये विरुदावली कहते नकीब, पैर और कमर द्वारा त्रिकोण बना भूमि से ललाट तक हाथों को हिला अभिवादन करते हुये दरबारी, राजा चाहे जैसा होने पर भी उसके रूप गुण की सर्वदा प्रशंसा करते बन्दीजन, राजा मानो चोर है इस प्रकार चारो ओर से गिद्ध दृष्टि रखनेवाले सेवक, रात दिन में एक क्षण भी विश्राम न लेने देते और उसी प्रकार एक पल भी

स्वतन्त्रता न भोगने देते अंग रक्षक; यह सम्पूर्ण राज्य-शोभा वीरसिंह का एक भारी झंझट समान लगने लगी। उसने बहुत रीति-रिवाजों को कम कर दिया, फिर भी राज्य का अंग होने के कारण साधारणतः उपस्थित होनेवाले शिष्टाचार क्या किसी प्रकार भी एक दम हट सकते थे? बोर्डिङ्ग हाउस में रह धक्का खाते और धक्का मारनेवाले विद्यार्थियों वाली छूट को एक राजा व्यवहारित नहीं कर सकता, इसका वीरसिंह ने मन में दुःख का भार वहन करते हुए अनुभव किया। जब वह ऊबता तब अपने मित्र मधुसूदन के यहाँ चला जाता। मधुसूदन अपनी शक्ति अनुसार राजा वीरसिंह को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता, किन्तु वीरसिंह सदा सादे व्यवहार की इच्छा रखता था। राजा के रूप में बीती मुसीबतों का वर्णन सुनकर मधुसूदन खूब हँसता।

क्यों, मधुसूदन! यह राज्य सुख है अथवा कोई भोगदण्ड? घोड़े की सवारी द्वारा थोड़ी हवाखोरी करके आते ही दो सेवक बाँह चढ़ाये पैर दबाने के लिए खड़े रहते हैं। मेरा पैर दुख नहीं रहा है यह कहने पर वे बहुत अधिक नाराज हो वापस लौटते हैं। एक दिन मैं स्नान करने बैठा। तीन पहलवान मेरे ऊपर टूट पड़े। एक ने मेरी गर्दन पकड़ी, दूसरे ने मेरा हाथ पकड़ा और तीसरे ने मेरा पैर पकड़ लिया। तीनों में से मैंने किसी को पहिचाना नहीं। मुझे लगा कि मेरे खून करने की यह योजना है। जुलियस सीज़र का प्रसंग याद आया। मैंने उनसे कहा—"अरे भाइयों! तुम पर अन्याय हुआ हो यह संभावित है, परन्तु तुम लोग इस प्रकार मेरे स्नान घर में चले आये हो, यह तुम्हारे और मेरे लिये भी शोभा की बात नहीं है। मैं बहुत अधिक लम्बा भाषण देता, किन्तु इतने में एक व्यक्ति बोल उठा—

"मालिक हम तो आपके चाकर हैं।"

"चाकर हो तो चाकरी करो। यहाँ नहाने के समय क्यों आये?"

"मालिक को तेल फुलेल लगा स्नान कराने के लिए आये हैं।"

"जाओ भागो यहाँ से। मुझे हाथ नहीं है जो तुम्हें फुलेल लगाना पड़ेगा?" मानो मैंने उनकी सम्पत्ति छीन ली हो ऐसा मुँह उतर गया।

दोनों मित्रों को ऐसी ही किसी बात पर खिलखिला कर हँसते सुनकर मधुसूदन की पत्नी शशिरेखा रसोंई छोड़कर पास आकर कहती—

"क्यों इतना अधिक हँस रहे हो ? पड़ोसियों को मालूम है कि हमारे यहाँ राजा साहब पधारे हैं और आपलोग इस प्रकार ठहाका लगा रहे हैं ?"

"बापरे ! यह यथार्थ है । राजा होने का दण्ड लगा । इच्छानुसार हँसा भी नहीं जा सकता । शशिबहन अगर तुम हमारी सब बात सुनो तो तुम हँसोगी या रोओगी इसे मैं नहीं कह सकता ।"

"आप अपनी सब बात मुझसे कहाँ कहा करते हैं ?" शशिरेखा ने असन्तोष प्रगट किया ।

मधुसूदन जब इन्टरमिडीयेड में पढ़ता था तब उसका विवाह शशिरेखा के साथ हुआ था । वीरसिंह शशिरेखा को अच्छी तरह पहचानता था और इस सरल तथा संस्कारी युवती के प्रति वह बहुत ही श्रद्धा रखता था ।

"मैं तो चाहता हूँ कि हमारी बात सभी सुनें ।"

"तो फिर आप दोनों जने अन्दर के कमरे में बैठ कर बात करें । मैं भी तो सुन सकूँ ।"

"तुम यह भूल जाती हो कि वीरसिंह अब अकेला वीरसिंह नहीं है । यह तो राजा वीरसिंह हैं और थोड़े ही दिनों में महाराज वीरसिंह बन जायेंगे और तुम अपने रसोई-घर के एक कोने में बैठने को कहती हो यह क्या उचित है ?" मधुसूदन ने व्यङ्ग किया ।

परन्तु वीरसिंह इच्छा कर शशिरेखा के पास बैठते । परदा तथा घूँघट में खोई हुई अबोल रानियों की अपेक्षा पुरुषों की दृष्टि को अधिक निर्मल बनाती अनिच्छादित मुखवाली शशिरेखा सरीखी स्त्री वीरसिंह को अधिक मान योग्य जँचतीं । शशिरेखा जहाँ रसोई करती होती वहाँ से कुछ दूरी पर मधुसूदन और वीरसिंह बैठ बातें करते । शशिरेखा पूछती—

"यहाँ तो पीढ़े को हाथ से लेकर बैठते हैं । महल में तो नकीब के पुकार

बिना सामने की ओर नजर भी नहीं उठाते होंगे। फिर यहाँ क्यों मन लगता होगा ?"

"अरे आप नकीब पुकारने की बात तो जाने दीजिये। एक स्थान पर बैठा था वहाँ से उठकर दूसरे स्थान पर जाने लगा इतने में एक आदमी जोर से चीख उठा। मैंने पूछा—"यह क्या बात है? क्यों चीख उठे ?"

"नहीं सरकार! मैं तो नकीब पुकार रहा हूँ।" उसने उत्तर दिया।

"मुझे समझ में आ गया कि नकीब की पुकार बिना किसी के समझ में नहीं आता, तो अवश्य ही उसकी पुकार अथवा उसका अस्तित्व समाप्त कर देना चाहिये।"

इस प्रकार के राज्य वैभव की कित्रिमता से विभाग हेतु वीरसिंह मधुसूदन के यहाँ अक्सर चले आते थे। साथ में दो तीन सेवक होते थे। इन सेवकों को भी राजाओं के धीर गम्भीर वातावरण में उम्र व्यतीत करने के कारण इस राजा के इस प्रकार के व्यवहार में नवीनता दिखलायी दिया करती। प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने बुद्धि अनुसार अनुमान करने की स्वतन्त्रता होती है।

वीरसिंह ने राज्य में पाठशालायें स्थापित कर अनिवार्य शिक्षा का नियम लगा दिया। उच्च शिक्षा का लाभ प्रत्येक को बराबर बराबर प्राप्त होता है या नहीं यह विवाद-ग्रस्त प्रश्न है। परन्तु लिखने पढ़ने की प्राथमिक भूमिका यह सबके लिये उपयोगी है यह कहना कठिन होगा। प्रजा चीख उठी। पढ़कर बालकों को क्या नौकरी करना है? यदि शिक्षित हो गये तो फिर नौकरी के सिवा दूसरा क्या कर सकेंगे? ऐसी दलीलें उपस्थित होने लगीं।

"माँ बाप—है" इस प्रकार की शिक्षा से हल चलाना क्या आया है? 'मा चाय पी' जैसे वाक्य से प्रारम्भ होती शिक्षा समूची दुनियाँ को चाय पीने वाला बना देगी। इतना ही नहीं बल्कि कितने ही दूर दृष्टिवाले यह भी कहने लगे कि "मा चा पी" वाला वाक्य तो विज्ञापन के तौर पर उसमें रक्खे गये

हैं। इसके लिए चाय व्यापारियों ने लाखों की सम्पत्ति पुस्तक लेखकों और प्रकाशकों को दिया है।

बल्कि आगे उन्होंने हाई स्कूल खोलवाया। अंग्रेजी की फिजूल शिक्षा पर लोग चीख उठे। उन्होंने विशेष कर अपनी जाति के लोग विद्यालाभ उठायें इसके लिए बहुत प्रयत्न किया। परन्तु उच्च और राजा होने के लिये सर्जित हुई कौम इस प्रकार से जल्दी विद्या का लाभ ले ऐसा नहीं था। "हमें क्या मुनीमी करनी है ?" इन्होंने तलवारें बाँधी हैं अब क्या उन्हें पृथक कर ये कानों में कलम खोसनेवाले बनेगें ? इस प्रकार का विरोध उन लोगों ने प्रगट किया, वीरसिंह के शिक्षा प्रसार का मनोरथ जनता ने अच्छे रूपमें सफल होने नहीं दिया।

राज्य में घूस का जोर कम करने के लिए उन्होंने बहुत ही कड़ी योजना प्रसारित की थी। जो कर्मचारी सुधरे नहीं ऐसे घूसखोर कर्मचारियों को कार्य से मुक्त कर दिया गया। जनता को सहूलियत मिले इसके लिये जनता की पंचायत संस्थाओं की स्थापना की, अधिकारियों के कितने ही अधिकार इन संस्थाओं को दिया गया इससे अधिकारी वर्ग नाराज हुये। निकाले गये कर्मचारी नमकहराम बने, और ग्राम संस्थाओं के संचालक उच्च शिक्षा और संस्कार के अभाव के कारण अधिकारियों के मुकाबले में जनता को अधिक त्रास देने लगे।

पहिले जड़ शान्ति से चलते हुए राज्य में इस प्रकार की बातों के कारण घबड़ाहट शुरू हो गयी। वीरसिंह के मित्र और शुभचिन्तकों ने उन्हें सम्मति दी कि वह समय देखकर कार्य्य करें। इस प्रकार की सम्मति देना बहुत ही सरल है, किन्तु प्रत्येक प्रसङ्ग के अवसर पर उसे किस प्रकार अमल लाया जाय इस विषय में निश्चित ही मतभेद सम्मति देनेवालों में भी उपस्थित रहेगा ही। वीरसिंह ने समय देख चलना शुरू किया फिर भी उनके लिये विरोध प्रदर्शन करनेवाले कम नहीं हुये।

जिन लोगों को राज्याधिकार मिलने की आशा थी वे सब तो वीरसिंह के

शत्रु बने हुए थे। अनेक छोटी छोटी बाधायें उपस्थित कर उन्होंने विरोध की अग्नि को प्रज्वलित ही रक्खा। विरोध का निपटारा कभी सन्तोषप्रद होता ही नहीं। उसमें भी विशेष कर, जिस व्यक्ति के कारण अधिकार से वंचित हुए हों ऐसी धारणा सत्य अथवा झूठ किसी भी प्रकार खड़ी हो गयी हो तो उस व्यक्ति का निर्णय किसी को भी संतोषप्रद नहीं लगता। वे एजेन्सी में अपनी फरियाद ले जाते हैं और एजेन्सी के कार्यकर्ता तथा अधिकारी ऐसी फरियादों को सुनने के लिए तत्पर रहते ही हैं।

एजेन्सी में भी वीरसिंह के प्रति अब ऐसे अभियोगों के प्रति योजनाएँ बनायी जाने लगी। बड़े भाग्य से ही वे दोनों पक्ष का समाधान करने के लिये बीच का मार्ग लेते हैं। परन्तु उससे कोई पक्ष खुश नहीं रहता। इन कारणों से एजेन्सी में वीरसिंह निर्बल है, भोड़ा है, सरल है नाना प्रकार की विचार-धारायें बनने लगीं। कितनी ही बातों में राजा से स्पष्टीकरण मांगा जाता तथा सभ्य भाषा के गर्भ में ऐसी कठोर और अपमान भरी बातें लिखकर आतीं कि वीरसिंह भभक उठता। अंग्रेजी भाषा ही ऐसी लिखावट के लिये उत्तम वाहक है, इसलिये जिसे भाषा का ज्ञान नहीं है उसे यह मर्म-कटाक्ष और धमकी समझ में नहीं आ सकती।

सरल वीरसिंह को बहुत ही दुःख होता। उसके प्रमाणिक प्रयत्नों को लोग और उसी प्रकार एजेन्सी दूसरा रूप देती। अनेकों बार क्रोधित हो जाता। परन्तु प्रजा और सर्व-भौम सत्ता के बीच कुचला जाता राजस्व देनेवाला राजा क्रोधित होकर कुछ कर नहीं सकता, यह उसे स्पष्ट समझ में आने लगा।

६

मित्रता का उपहार

एजेंसी की ओर से वीरसिंह को एजेन्सी की इच्छानुसार दीवान नियुक्त करने की जब सूचना मिली तब उसका क्रोध असीमित हो उठा।

अपनी इच्छानुसार दीवान की नियुक्ति भी नहीं की जा सकती? मैं सुन्दरपुर का राजा हूँ अथवा अंग्रेजों का हवलदार?

ठाकुर के पद से तरक्की कर राजा की पदवी मिली थी, इसलिये कार्याधिकारी के पदवी की पदोन्नति हो दीवान कहलाने लगी थी। किन्तु ब्रिटिश सल्तनत ने तो महाराजाओं और छत्रपतियों सभी को एक मात्र "दरबार" की संज्ञा में समेट लिया था। इसलिये ऐसे छोटे राज्य के कार्याधिकारी को दीवान के रूप में स्वीकार कराने में वीरसिंह को अनेकों अड़चनें आईं।

पुराने ठाकुर साहब के समय का कार्य्याधिकारी वीरसिंह के समय में भी कार्य कर रहा था। वह ठाकुर साहब का अधिक प्रिय था और ठाकुर साहब के रुचि का ही गद्दी का उत्तराधिकारी लाने के लिये उसने कठिन परिश्रम भी किया था किन्तु वीरसिंह को किसी से द्वेष नहीं था? उसके विरुद्ध किसी अभियोग का भी कोई प्रसङ्ग उपस्थित नहीं हुआ था। इसलिये दया विचार कर उन्होंने पुराने ही अधिकारी को रहने दिया था। कार्याधिकारी शब्द के साथ विशेष प्रकार की चालाकीपूर्ण मूर्ति प्रतिबिम्बित होती है। छोटे देशी राज्य के साथ जुड़ी हुई कार्याधिकारियों की प्राचीन शृङ्खला ने जन-समाज की कल्पना के समक्ष एक पूर्ण तथा जो भूला न जा सके ऐसा चित्र खड़ा किया था। कार्याधिकारी शब्द के उच्चारण के साथ विशेष वजन तथा लम्बाई चौड़ाई वाला, विशेष पोशाक वाला, विशेष प्रकार की नीति और व्यवहार कुशल वाला, विशेष साँचे में ढला हुआ कुटिल मानव प्राणी प्रगट होता है। कार्याधिकारी विजयप्रसाद भी नमूने लायक एक अधिकारी था।

वीरसिंह ने गद्दी पर बैठने के साथ ही आज्ञा प्रसारित की कि उसके प्रधान कार्य्याधिकारी को प्रजा 'दीवान साहब' के नाम से सम्बोधित करे। यह आज्ञा अपने ही राज्य में पालन कराना सरल था, परन्तु एजेन्सी तथा दूसरे राज्य ऐसा परिवर्तन स्वीकार नहीं कर सके। वीरसिंह को इतनी छोटे किन्तु प्रतिष्ठा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विषय पर हुई उपेक्षा पर बड़ा बुरा मालूम हुआ। वह क्रोधित हो उठा तब कार्याधिकारी विजयप्रसाद ने कहा—

"सरकार! इसमें विशेषता क्या है? कार्याधिकारी कहिये अथवा दीवान? इन बातों में अपना जाता ही क्या है?"

"नहीं! मुझे कार्याधिकारी शब्द अच्छा नहीं लगता। जैसे भी ठीक समझिये इस शब्द को परिवर्तन करना ही है।"

"इस जरा सी बात के लिये दस पन्द्रह हजार रुपयों पर पानी क्यों फेरा जाय?" कार्य्याधिकारी ने उचित सलाह दिया। इस बात को वीरसिंह ने समझा नहीं। उन्होंने पूछा :—

"क्यों? इस प्रकार का नाम स्वीकार कराने में इतना अधिक खर्च क्यों लगेगा?"

"आपको अभी इस विषय में मुझे समझाना पड़ेगा। इसमें पोलिटिकल एजेन्ट को कोई विशेष आपत्ति नहीं होती। उन्हें तो सूचना भी नहीं मिलती। परन्तु कार्य्याधिकारी को दीवान लिखना हो तो पहिले कारकून को समझाना पड़ेगा। कारकून इस शब्द को बदल दे तो उस पर सिरेश्तेदार की सम्मति होनी चाहिये, नहीं तो वह काट देते हैं। उन्हें भी प्रसन्न करना पड़ता है। फिर कार्य्यालय (Office) के जो बड़े साहब हैं, सारी सत्ता उनके हाथ में है, वे चाहें तो क्षण-मात्र में कार्य्याधिकारियों को दीवान बना डालें। एक बार दीवान लिखा जाने का कायदा चालू हो गया कि फिर चला। बड़े साहब को भी कोई भ्रम न हो इसलिये उन्हें भी प्रसन्न रखना पड़ता है। क्रिसमस में (बड़े दिन में) उन्हें और उनकी मैडम को कोई न कोई निजी भेंट देना होगा।

बहुत ही महत्त्वपूर्ण और कोई गुप्त बात बतलाया हो ऐसी रीत से दबी ज़ुबान, आँखों में भी गम्भीरता का प्रदर्शन करते हुये विजयप्रसाद ने यह रहस्य प्रगट किया।

"क्या मैं भी ऐसी अनुचित प्रथा को चलाता रहूँगा ? कभी नहीं ! ऐसी रिश्वत देनेवाला मैं नहीं ! कभी नहीं !"

"सरकार ! हम तो क्या करोड़ों की सम्पदा के राजा लोगों को भी यह करना पड़ता है।"

"मैं कभी भी ऐसा करनेवाला नहीं हूँ। साफ़-साफ़ दीवान पद के लिये लिख कर बात चलाओ।"

"ऐसे नहीं बनेगा। हमारी बात चली जायेगी और एजेन्सी से एकबार अस्वीकृति हुई तो फिर सौ वर्ष तक भी होना संभव नहीं होगा।"

"कुछ नहीं ! आप लिखिये। मैं देखता हूँ कि एजेन्सी वाले किस प्रकार से अस्वीकार करते हैं।"

कार्य्याधिकारी ने राजा की आज्ञा का पालन नहीं किया। वीरसिंह प्रत्येक दिन स्मरण दिलाते, किन्तु विजयप्रसाद ने आजकल करते-करते एक महीना निकाल दिया। अन्त में वीरसिंह ने स्वयं लिखा-पढ़ी शुरू की। तब छुटकारा न पाने के कारण कार्य्याधिकारी ने भी लिखा पढ़ी शुरू की।

एजेन्सी कचहरी में जब यह पत्र पहुँचा तब कारकून, सिरिश्तेदार और क्लर्कों के बीच अनजान आदमी न समझ सकें ऐसे संकेत आँखों द्वारा होने लगे। कुछ दिनों पश्चात् वीरसिंह को उत्तर मिला।

सुन्दरपुर के राज्य से भी बड़े राज्यों में कार्य्याधिकारी के पद से कार्य सम्पन्न हो सकता है, तो फिर आपको इस शब्द के परिवर्तन कराने की क्यों आवश्यकता पड़ी, यह समझ में नहीं आता। सन्तोषप्रद कारणों को बताने के बिना इस प्रकार का परिवर्तन उपस्थित करने से निरर्थक कार्य का भार इस कार्य्यालय पर पड़ता है। उस ओर राज्य को ध्यान देना चाहिये।

पत्र पढ़ने के साथ ही वीरसिंह ने मेज पर पत्र पटक दिया। सर्वज्ञ होने का भाव प्रगट करते हुए विजयप्रसाद ने कहा—

"मैं क्या कह रहा था !"

"चाहे जैसे भी हो यह परिवर्तन होना ही चाहिये !" अनुभव की अल्पता को अपने मन से निकालते हुये क्रोध में वीरसिंह ने कहा।

"ऐसी आज्ञा है तो दूसरी बात है।" कहकर कार्य्याधिकारी ने इस प्रश्न को सुलझाने का भार अपने सिर लिया।

छः माह पश्चात् कार्य्याधिकारी के बदले दीवान शब्द का सम्बोधन होने लगा। वीरसिंह प्रफुल्लित हो कहने लगे—

"देखो, हम दृढ़ रहे तो परिवर्तन करना ही पड़ा।"

"परन्तु सरकार ! पहिले जो पन्द्रह लगता वह अब पच्चीस लग गया।"

"क्या ? आपने घूस देकर यह परिवर्तन कराया है ?" विस्मय और क्रोध से वीरसिंह ने पूछा।

"तब क्या ? आप ऐसा सोचते थे कि केवल लिखने के प्रभाव से ही यह सब चमत्कार बना है ? यह तो अच्छा कहिये कि इतने ही खर्च में हो गया !" अत्यन्त ही शान्तिपूर्वक कार्य्याधिकारी ने उत्तर दिया। वीरसिंह की व्यवहार-शून्यता पर कार्य्याधिकारी की आँखें हँस रही थीं।

"इतना खर्च आपने किसकी आज्ञा से किया ?" कुछ देर रुक कर वीरसिंह ने पूछा।

"क्यों आपकी ही तो आज्ञा थी कि चाहे जैसे भी हो यह परिवर्तन होना ही चाहिये !"

वीरसिंह को अपने शब्द स्मरण हो आये। अपने शब्दों में से इस प्रकार का अर्थ निकालने वाले कार्य्याधिकारी पर उन्हें घृणा उत्पन्न हुई।

"किन्तु इसके लिये रिश्वत देना यह मैंने कब कहा था ?"

कार्य्याधिकारी को बुरा लगा। इस प्रकार की भेंट सौगाद जैसी प्रथा को 'रिश्वत' और 'घूस' जैसी कहने वाले इस अनुभवहीन राजा का इतना भारी कार्य्य कर डाला इसका उसे खेद हुआ। उसने बहुत ही सभ्यता से किन्तु वचनों में कठोरता लाकर कहा :—

"आपकी आज्ञा थी और मैंने उसका अपनी बुद्धि अनुसार पालन किया।"

"जब हमारे यहाँ से इस प्रकार घूस और रिश्वत दी जाती है तब फिर हमारे राज्य में भी वह क्यों नहीं प्रचलित होगी?"

"इसका आप पता लगायें। किसी ने घूस लिया इसका प्रमाण पा जायँ तो फाँसी लटकवा दीजिये।"

वीरसिंह को निश्चय हो गया कि कार्य्याधिकारी विजयप्रसाद घूस लेता है। जो मनुष्य बिना संकोच के घूस दे सकता है उसे घूस लेने में भी संकोच नहीं हो सकता। कोई भी दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध बात कहने का प्रयत्न करता हो तो अवश्य ही उसके विरुद्ध भी बात करने वाले मिल जायेंगे। सत्यवादी का स्वाँग रच फिरने वाले मनुष्य के पीठ पीछे लोग क्या-क्या कहते हैं यदि इसका वह स्वयं अनुभव कर विचार करे तो उसका सत्यवादी-पन का अभिमान अवश्य मिट जाय।

पहली बात तो यह है कि एजेन्सी में घूस देने वाली रकम का आधा तो स्वयं कार्य्याधिकारी खा गया है इस बात को वीरसिंह ने सुना। कार्य्याधिकारी के विश्वास-पात्र एक कर्मचारी ने यह भेद खोला। झूठे लोगों का परिचय सभी को हो जाय ऐसे स्तुत प्रयत्न से इस प्रकार की हकीकतें यदि प्रसारित होती हैं तो वे प्रशंसा के पात्र हैं। किन्तु सच्ची बात कहने के बहाने दूसरे को नीचा दिखाने की मनुष्यों की निर्बलता कार्य्य करती जाती है, इसलिये इस दूषित वृत्ति द्वारा प्रगट किये सत्य में भारी दोष प्रवेश कर जाता है। इस कारण सत्य-घटना को स्वार्थवृत्ति से प्रगट करनेवाला मनुष्य, चुगलखोर के रूप में तिरस्कार का पात्र होता है। फौजदारी कानून चुगलखोरी को अपराध

की गणना करने में अशक्त रहा। तथापि संसार का नैतिक व्यवहार उसे लूट और चोरी करने के मुकाबले अधिक निम्न श्रेणी में पहुँचा देता है।

परन्तु केवल पापों की गणना कर लेने से पाप रुकता नहीं। मनुष्य के दोषों का वर्गी-करण और व्याख्या करने से भी दोष कम नहीं होते। वीरसिंह ने कभी धारणा भी नहीं की होगी जितने चुगलखोर राज्य में उन्हें मिले। कार्य्याधिकारी विजयप्रसाद का छोटा-मोटा दोष दिखलाने वाले अनेक मनुष्य मिलने आये। किसी का भी इतना साहस नहीं हुआ कि प्रगट रूप से उसके ऊपर दोषारोपण करे। पर बात ही बात में युक्ति-पूर्वक विजयप्रसाद के गबन की बातें लोग कहते थे।

वीरसिंह ने कार्य्याधिकारी को पद से पृथक कर दिया। कार्य्याधिकारी भी इसकी आशा पहले से ही किये बैठा था। उसके विरुद्ध जाँच चल रही है यह बात भी वीरसिंह को भ्रम में डालने वाले व्यक्ति ही आ-आ कर उससे कहते। विजयप्रसाद को अब नौकरी करने की आवश्यकता न थी। इसलिये जाते-जाते उसने खुले हाथों बड़ी-बड़ी रकमें लोगों से लीं। सुन्दरपुर छोड़ने वाले दिन उसने वीरसिंह को सलाह दी—

"सरकार, मैं तैर कर पार उतर गया। मुझे नौकरी से हटने का दुःख नहीं है! मगर आप एजेन्सी से सम्हले रहियेगा, जिसे चाहे दीवान बनाकर निभाया नहीं जा सकता।"

अपने मित्र मधुसूदन को दीवान पद पर निर्वाचित करने की वीरसिंह की इच्छा उसके ध्यान के बाहर न थी। इस प्रकार की अंग्रेजी शिक्षा के शिक्षित युवकों से राज्य व्यवस्था नहीं चल सकती ऐसी विजयप्रसाद की मान्यता थी। वीरसिंह के मन में अपने मित्र द्वारा किये गये उपकारों के प्रतिकार में कुछ न कुछ करने की, तीव्र इच्छावास कर रही थी। मधुसूदन वकालत कर रहे थे। इस समय उनकी आय बहुत अधिक तो न होती थी, परन्तु इतनी कम भी न थी कि खास तौर पर वीरसिंह का विशेष कृपाकांक्षी होना पड़े। भेंट, बख्शीश बारम्बार नहीं दी जाती, एक गृहस्थ के रीत अनुसार यदि दिया भी जाय

तो उसे स्वाभिमान रक्षण हेतु प्रत्येक बार स्वीकार भी नहीं किया जा सकता। और इस प्रकार के उपहारों से मित्र ऋण में कमी भी न होगी। वीरसिंह ने एक बार मधुसूदन को अपने यहाँ मेंहमान रूप में निमन्त्रित किया और उसने गम्भीरता पूर्वक बातें कीं।

"मधु! आजकल वकालत कैसी चलती है?"

'ठीक ही चलती है। वकीलों का जब पाँच वर्ष बीत जाता है तब वकालत प्रारम्भ कही जाती है।"

"फिर भी महीने में कितना कमा लेते हो। मुझे पूछना न चाहिये परन्तु ...."

"तुम्हें बतलाने में मुझे संकोच क्या है? डेढ़ दो सौ का हिसाब पड़ जाता है। शुरू में यह कुछ कम नहीं है।"

"तुम तो बहुत खर्चालू हो। इतने में पूरा पड़ जाता है।"

"इससे क्या चलने का है? पूरा नहीं होता तो पूरा करना पड़ता है।"

"यदि तुम्हें किसी देशी रियासत में अच्छा वेतन मिले तो नौकरी करोगे?"

"क्यों नहीं? परन्तु मेरा कहीं परिचय नहीं है। मैं तो केवल एक तुम्हें जानता हूँ!"

"इस पहचान का कुछ उपयोग तो करो।"

"यह मैं तुम्हें कह रहा हूँ। पाँच सौ महीना तनखाह मिले तो मैं वकालत छोड़ रियासत में नौकरी कर लूँगा। परन्तु राज्य सरल और अच्छा होना चाहिए। षड़यन्त्र अथवा छल कपट अपने को नहीं आती। ऐसी कोई जगह हो और तुम्हें ठीक लगे तो ठीक करना। परन्तु वह भी एकाध साल के भीतर, नहीं तो फिर वकालत मुझसे छोड़ी नहीं जायेगी।"

'तुम जितना चाहते हो उससे सौ रुपया अधिक ही मिलेगा और राजा तुम्हारे कहने के अनुसार ही करे यदि ऐसा हो तो फिर कोई बाधा नहीं है न?"

"नहीं ! परन्तु ऐसी जगह है कहाँ !"

"हमारे राज्य में। मैं तुम्हें इस राज्य का दीवान बनाना चाहता हूँ।" वीरसिंह ने थोड़ा शर्माते हुये कहा।

मधुसूदन चौंका। उसका बाल-सखा मित्र वीरसिंह राजा बनने पर पिछले किये उपकारों का बदला चुकाना चाहता है ऐसा उसे लगा। उसने थोड़ा विचार किया और फिर कहा—

"तुम्हारे राज्य में दीवान तो है।"

"उसे हटाना है।"

"मेरे लिये ?"

"नहीं, वह बुड्ढा है और बहुत बड़ा घूस खोर है।"

"वीरसिंह मुझे आवश्यकता होगी तो सहायता माँग लूँगा किन्तु बीती बातों को यादकर उसका बदला चुकाने का प्रयत्न मत करो। मुझसे तुम्हारी दीवानगिरी होगी ही नहीं। मैं तुम्हारा मित्र ही रहना चाहता हूँ नौकर बनना नहीं चाहता।"

यह उत्तर सुन कर राजा वीरसिंह का मुख उतर गया। उससे कोई कठोर शब्द कहा गया ऐसा मधुसूदन को भी लगा। उसने पुनः कहा—

"राजा साहब, बुरा मत मानियेगा। क्या आप को भी ऐसा नहीं लगता कि मैं यहाँ दीवान के रूप मे रहूँ तो हमारी मित्रता में उतनी ही कमी होगी ? वीरसिंह के दीवान से क्या वीरसिंह के मित्र रूप में कम मर्य्यादा है ?"

'तुम यह सब बहानेवाली बातें जाने दो। तुम्हारे दीवान हो जाने से हमारी और तुम्हारी मित्रता में किस प्रकार से कमी आयेगी ?"

"मुझे तुम्हारी आज्ञानुसार कार्य करना पड़ेगा। उसमें मतभेद पड़ने पर तुरन्त मन में एक दूसरे के प्रति उच्चाट होगी। ऐसा होने के लिए मैं जरा भी तैयार नहीं हूँ।"

"ऐसा मतभेद हो जाय तो तुम मेरी दीवानगिरी छोड़ देना।"

"और मैं अपने घर बैठूँगा, क्यों ? इससे तो यही उचित है कि बीच अधूरे में वकालत ही न छोड़ूँ, वह बुरा क्या है ?" हँसते हुए मधुसूदन ने कहा।

"ऐसे प्रसङ्गों के लिये मैंने विचार नहीं कर रक्खा है। यदि दीवानगिरी छोड़ने का प्रसङ्ग तुम्हें उपस्थित हो जाय तो भी तुम्हें तुम्हारा वह पुरस्कार मिलता जायेगा, फिर तुम्हें क्या कहना है ?"

"ऐसा !"

"तुम मेरी दीवानगिरी एक बार स्वीकार कर लो तो मैं सम्पूर्ण जीवन तुम्हें छ सौ रुपया मासिक पुरस्कार बाँध दूंगा। बाद में दो वर्ष तक कार्य सम्हाल कर यदि कार्य्य से अवकाश भी ले लोगे तो भी।" वीरसिंह ने कहा।

"मैं मुफ्त में तुम्हारा वेतन लूँ ? रहने दो ! रहने दो ! इन सब मन की उमङ्गों को। किसी अनुभवी मनुष्य को तुम दीवान बनाओ जिससे तुम्हारे राज्य का कल्याण हो। मुझे राज्य संचालन करना नहीं आता, और बिना कार्य किये तुम्हारा वेतन ले तुम्हारा आश्रित क्यों बनूँ ?"

"मैं तुम्हारी सहायता लेता था उस समस तुम मुझे आश्रित समझते थे, क्यों ?"

"उन दिनों को याद मत करो।"

"इसके सिवा क्या दूसरा कुछ मेरे पास दिन भर याद करने को है ? देखो मधुसूदन, यदि तुम मेरा मन नहीं रक्खोगे तो मुझे असन्तोष रहेगा।"

कितने ही दिन ऐसी दलीलों में बीत गये। मधुसूदन को अपना कहना यथार्थ मालूम होता था, किन्तु वीरसिंह अपने अभिन्न मित्र के लिये अपने शक्ति अनुकूल पर्याप्त सहायता न पहुँचा पा सकने के कारण तड़प रहे थे, इस कारण उन्हें अपने ही दलीलों में वास्तविकता दीखती थी। मधुसूदन के इन्कार का वीरसिंह को बहुत बुरा लगा और किसी दूसरे प्रकार से वह स्वयं मित्र का उपयोगी न हो सकने कारण उसे अपना मन बहुत छोटा लगा।

अतः वीरसिंह ने शशिरेखा की मदद ली। शशिरेखा सुन्दरपुर आती तब वह वहाँ वीरसिंह तथा उनके दीवान का वैभव देखती। इस वैभव से ऊबने पर वीरसिंह मधुसूदन के पास भाग जाता था, तब उसे वीरसिंह में उसकी सरलता तथा मित्र-स्नेह का दर्शन होता। मध्यम वर्ग की इस नारी ने इतने अधिक वैभव को नहीं भोगा था कि उसे वैभव के प्रति तिरस्कार हो आये। वह साधारण स्थिति वाले माता-पिता की कन्या थी। इसका ससुराल पितृगृह से कुछ अच्छी स्थिति वाला था। फिर भी वह धनवान कुटुम्ब की कक्षा में नहीं गिना जा सकता था। रसोइयाँ, सवारी इत्यादि धनवानों के आवश्यक चिन्ह उसने नैहर अथवा ससुराल में नहीं देखा था। डेढ़ सौ दो सौ मासिक आय की वकालत में उसकी जवानी की, हविस भरी कल्पनाओं ने घोड़ा गाड़ी और बहुमूल्य वस्त्र तथा अलङ्कारों का धूंधला-धूंधला स्वप्न देखना शुरू किया था। रसोइयाँ, सवारी, अलङ्कार या बहुमूल्य वस्त्र संसार में यथार्थ सुख कितना अधिक वृद्धि करते हैं इसकी तात्विक समालोचना हजारों में एक भी मनुष्य करता है कि नहीं इसमें शंका है। आर्थिक उन्नति प्रत्येक युवक और युवती चाहते हैं। और उसका वाह्य-स्वरूप उनकी कल्पनाओं को आकर्षित करते हैं। इसलिये शशिरेखा की कल्पनायें वैभव की स्वीकृति साधनों की कल्पना कर रक्खी हों तो उसमें कुछ भी नवीनता नहीं है।

महत्व की बात इतनी ही थी कि गाड़ी घोड़ा की इच्छा होते हुये उसे प्राप्त न कर सकने से शशिरेखा को कभी दुःख न हुआ। इच्छानुसार वस्त्रों तथा अलङ्कारों के प्राप्त न होने पर भी उसके मन को कभी क्लेश नहीं हुआ। वह सर्वदा संतोषी और पति की ओर से जो कुछ भी मिलता उसमें आनन्द मानती। मधुसूदन भी ऐसी पत्नी के प्राप्ति पर अपने को भाग्यशाली मानता था। यदि वह पाँच रुपये की साड़ी भी लाकर देता तो उस साड़ी को भी शशिरेखा बड़ी प्रसन्नता से पहनती और यदि पचास की लाकर देता तो उसके लिये भी वह उतना ही उत्साह प्रदर्शित करती।

मधुसूदन के मित्रों में एक राजा था और यह राजा अपनी महत्ता को छोड़

उस दृष्टि से वीरसिंह का दोनों विवाह निरर्थक था। एक के मुकाबले अधिक पत्नी होने से कुलीनपना और कौटुम्बिक सिद्ध होता है ऐसी मान्यता के आधार पर वीरसिंह के पिता ने वीरसिंह के बाल्यावस्था में दो पत्नियों से उन्हें विवाहित करा दिया। जिस उम्र में उनका विवाह हुआ था उस उम्र में यदि दो के बदले बारह कन्याओं का विवाह वीरसिंह से कर दिया जाता तो भी वह कभी इन्कार न करते। परन्तु उनका यह विचार कभी कायम न रहता। बाल्यकाल में विवाह यह तात्कालिक परेशान करनेवाला एक खेल सरीखा है उसका यह विवाह युवावस्था में अति गम्भीर परन्तु इच्छा करने योग्य महत्व के बनाव के रूप में दिखलाई देता है जब वृद्धावस्था में वह हास्य अथवा दया का विषय बना रहता है। इस कारण वीरसिंह की उम्र ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी त्यों-त्यों विवाह सम्बन्धी उनके विचार बदलते चले। किन्तु नरसिंह मेहता के कथन प्रमाण, घट के साथ गढ़ा हुआ दुःख सुख के समान विवाह भी हिन्दू समाज का टाला टलता नहीं है।

इसलिये वीरसिंह को दो पत्नियाँ थीं ऐसा कहने से उनका दोष निकालना अथवा हँसी उड़ाने का कारण नहीं है। विवाह जैसे प्रसङ्ग ये भी अकस्मात स्वरूप है। अकस्मात से किसी को लाभ भी होता है और किसी को हानि भी। वीरसिंह अपनी परिस्थिति को अच्छी तौर से समझते और यदि शशिरेखा सरीखी स्त्री को निहारते हुये वे कदाचित असन्तोष का अनुभव करते, फिर भी एक परिधि की रीति से दो पत्नियों के निबाह वाली आदत का वे योग्यता से निवाह करते जाते थे।

एक दिन शशिरेखा ने मधुसूदन से वीरसिंह की बात चलाई और वीरसिंह द्वारा की गई माँग को स्वीकृत करने का आग्रह किया।

"क्या तुम्हें भी दीवानगिरी ने ललचाया? वीरसिंह मेरा सच्चा मित्र है। यदि मित्रता निभाना हो तो मित्र की नौकरी कभी नहीं की जा सकती।"

"आप बड़े हठी हैं। वे आपको क्या नौकर के समान रख रहे हैं? दीवान तथा अन्य दूसरे नौकर क्या एक ही श्रेणी में गिने जा सकते हैं?"

"जब तनखाह लिया गया तब नौकरी हो गयी। दूसरा क्या ?"

"किन्तु राजा साहेब ऐसा कह रहे थे कि वेतन न लीजिये पर किसी न किसी प्रकार उनका काम कीजिये। मित्रता के नाते तो ऐसा हो सकता है कि नहीं ?"

"तुम्हें घोड़ा गाड़ी का शौक हुआ है, ऐसा मालूम होता है।"

"यह सच है। परन्तु मान लीजिये कि राजा साहब कठिनाई में हों और आपको वर्ष भर के लिये अपना कोई कार्य्य सौंप दें तो उसे करियेगा कि नहीं ?

"मेरे बदले तू वकील हुई होती तो इस राजा की खिलौने जैसी दीवान-गिरी में चित्त न लगा सकतीं।"

ऐसा कहने पर शशिरेखा की सुन्दर दलीलें, वीरसिंह के अतिशय आग्रह और कितने ही बुद्धिमान गिने जाने वाले व्यक्तियों की शिक्षा मानकर वकालत छोड़ वीरसिंह की दीवानगिरी करने का मधुसूदन ने वचन दे दिया।

वीरसिंह के आनन्द का वारावार न रहा। अपनी कल्पना में प्रस्तुत की हुई प्रजा-सेवा की योजनाओं को अब कार्य्य रूप में परिणत किया जा सकेगा, उसी प्रकार जिसने अपनी विपत्ति के समय में सहायता दी है, उसका भी किसी प्रकार सन्मान किया जा सकेगा, ऐसा उनके मनमें आया।

१०

परतन्त्र-राजा

राजा बनने से बढ़कर परतन्त्रता क्या है इसका पूरा-पूरा अनुभव करना हो तो भारत के किसी भी राज्य के राजा की स्थिति में हो जाना चाहिये। वीरसिंह ने पुराने दीवान को पृथक कर देने की बात कही। विजयप्रसाद ने वीरसिंह का विशेष उपकार माना। अधिक समय से राज्य का राज्याधिकारी होने के नाते राज्य भार वहन करने वाले एक सेवक को वृद्धावस्था में उसे विश्राम देने की वीरसिंह ने इच्छा प्रगट की जिससे विजयप्रसाद की आँखों में हर्ष और उद्गार के आँसू आ गये। कार्य्याधिकारी लोग हँसने और रोने की कला में निपुण होते हैं। धारण करने के साथ आँसू निकाल देते हैं। यदि ऐसा न कर सकें तो ऐसे कार्य्याधिकारी की कार्य-कुशलता निष्फल हुई देखने में आयेगी।

विजयप्रसाद ने कितनी ही शिक्षायें दीं। एजेन्सी के साथ अच्छा व्यवहार बनाये रखने और उसी प्रकार सचेत रहने की सम्मति भी दी। दीवान पद के लिये किसे नहीं चुनना इसकी भी विवेचना उसने की। जिस दिन उसे अपने पद से पृथक होना था उस दिन एजेन्सी से वीरसिंह के पास एक पत्र आया। दीवान के बदलने जैसी महत्त्वपूर्ण बात में राजा वीरसिंह एजेन्सी से कुछ भी सम्मति नहीं ले रहे हैं यह तरीका नापसन्द करने लायक जैसा है, इस पत्र में ऐसा उलहना लिखा हुआ था।

वीरसिंह ने ओंठ काटे और दाँत पीसा। परन्तु यह क्रिया अधिक मनुष्य किया करते हैं। किसी सामान्य मनुष्य के दाँत पीसने और भारत के किसी राजा के दाँत पीसने में कुछ अन्तर नहीं है। दाँतों को कसरत होने के सिवाय

उससे कोई फल प्राप्त होता नहीं है। वीरसिंह ने तत्काल उत्तर दिया कि अपना दीवान नियुक्त करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है. इस कारण वे विजयप्रसाद को पद से पृथक कर किसी दूसरे की नियुक्ति कर रहे हैं।

एजेन्सी से विवेकपूर्ण उत्तर आया कि निश्चय ही राजा वीरसिंह को अपना दीवान नियुक्त करने और उसी प्रकार पृथक करने का पूर्ण अधिकार है तथापि उन्हें परम्परानुसार एजेन्सी के अनुभवी अमलदारों की सम्मति लेना चाहिये था। नया दीवान किसको नियुक्त करना है उसका विवरण राजा साहब कृपा कर भेज दें।

राजा साहब ने समझा अपनी विजय हुई। केवल मात्र अपनी प्रभुता बनाये रखने के लिये यह एजेन्सी के कार्यकर्ता नये दीवान का नाम जानने के लिये ही माँग रहे हैं। उनके सत्कार के ख्याल से मधुसूदन का नाम लिख कर भेज दिया।

पत्र का प्रति उत्तर पाने पर वीरसिंह को ज्ञान हुआ कि वह स्वयं राजा नहीं बल्कि अंग्रेज सत्ताधिकारियों के हाथ का खिलौना मात्र है। पत्र में एजेन्सी की ओर से आश्चर्य प्रगट किया गया था कि अनुभवी व्यक्ति के मिलने की सुविधा होने पर भी एक सामान्य वकील को राजा साहब किस कारण से नियुक्त कर रहे हैं? उपरान्त मधुसूदन का नाम कांग्रेस जैसी आन्दोलन चलाने वाली संस्था में सहयोग देने के कारण सरकारी दफ्तर में नोट है। राज्य के लिये और स्वयं राजा साहब के लिये दीवान जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर मधुसूदन को निर्वाचित न करने के लिये एजेन्सी ने मित्र रूप में आग्रह किया था।

मधुसूदन असहयोग आन्दोलन में भाग लेता है यह प्रगट बात थी। कालेज से ही उसे यह शौक लग गया था। सामाजिक जीवन में भाग लेने की यदि वकीलों को स्वतन्त्रता न मिलती होती तो आज कितने ही अधिक देश-नेता अपरिचित ही रह जाते। मधुसूदन को राजनीतिक विषयों की चर्चा करने का शौक हो गया था, इतना ही नहीं, बल्कि वकालत प्रारम्भ होने के कारण

अपने शौक का पूरा करने का उसे यथेष्ट समय भी था। वह प्रत्येक कांग्रेस में प्रतिनिधि रूप में भाग लेता। किसी प्रस्ताव में वह भाग लेने से नहीं चुकता था। समयानुकूल कटुभाषण कर वह वाहवाही प्राप्त करता। वर्तमान समाचार पत्र भी क्रम-क्रम उसे महत्त्व देने लगे थे। एक दा बार तो उसके भाषण में उग्रता की अधिक वृद्धि हो जाने के कारण कांग्रेस प्रमुख ने उसे रोका भी। सरकारी खुफिया विभाग ने इन सभी विवरणों को लिख रक्खा था और निगरानी रखने योग्य इस युवा को विद्रोहियों की सूची में स्थान देकर पुलिस को सूचित भी कर दिया था। वर्तमान की और पन्द्रह बीस वर्ष पूर्व की राजकीय भाषा की यदि समीक्षा की जाय तो मधुसूदन का भाषण उस समय नम्र मालूम होगा, परन्तु समय के वातावरण में उसकी भाषा तीक्ष्ण लग रही थी।

मधुसूदन सम्बन्धित सम्पूर्ण बातें ठीक समय पर एजेन्सी को किस प्रकार ज्ञात हुई यह भाग्य से ही कोई जान सकता है। सीधे-सादे मार्ग से मधुसूदन के प्रति पक्षपात प्रगट था और वह उसे दीवान नियुक्त करेगा ऐसा अनुमान लगाने का पूर्ण साधन उससे वार्ता करनेवालों को मिल चुका था। अन्तिम समय में तो उन्होंने खुल्लम-खुल्ला प्रगट कर दिया था कि मधुसूदन को दीवान नियुक्त करने की इच्छा है। सुन्दरपुर की दीवानगिरी की चाह रखनेवालों को मधुसूदन का इतिहास खोजने की आवश्यकता पड़े यह स्वाभाविक था, परन्तु जिसको उसकी वांछा नहीं उसे वह मिले ऐसा स्वप्न में भी सम्भव नहीं होता— ऐसे सारे शहर की फिकिर रखनेवाले काजी भी उसके विषय में बातें निकालने लगे। संसार में किसी की भी जिज्ञासा तृप्त हुये बिना नहीं रहती। जिज्ञासा से ईश्वर भी अनजाना नहीं रहता तो फिर मनुष्य का रहस्य और भेद जानकारी के बाहर रह जाय यह नहीं हो सकता! मधुसूदन के विषय में भी कुछ न कुछ बातें अन्वेषकों को मिल ही जाती थी। मनुष्य एक बात जानकर बैठा नहीं रहता, जानी हुई बातों को दूसरों को जनाने की उसकी इतनी तीव्र इच्छा होती है कि प्रगट करने के सिवाय वह सुख से सो भी नहीं सकता। इस प्रशंसापात्र वृत्ति में ही पैगम्बरों और प्रचारकों की विजय-कुंजी समाई हुई है। मधुसूदन

के बारे में ज्ञानप्रचार का कार्य्य जानकारी रखनेवाले व्यक्तियों ने प्रारम्भ कर दिया और स्वयं सत्य घटना बतलाने का मान प्राप्त करने के इच्छित धनी और विजयी लोग बाँएँ हाथ से लिखकर अथवा लिखवाकर भी एजेन्सी अधिकारियों को मधुसूदन के बारे में पूरी जानकारी करा दी।

घबड़ाये हुये वीरसिंह पोलिटिकल एजेन्ट के पास दौड़े। विल्सन नामक एक कार्य्याध्यक्ष एजेन्ट की गद्दी सुशोभित कर रहा था। राजा वीरसिंह के आने की सूचना मिलते ही उसने सत्कारपूर्वक उन्हें अपने पास बुलाया। कुर्सी से खड़े हो उसने हाथ भी मिलाया। वीरसिंह से समाचार पूछा, राज्य के विषय की नई पुरानी बातें पूछीं, किसानों की परिस्थति के बारे में विचार विनिमय हुआ और सामान्य जल-वायु और शिकार के योग्य जानने के विषय की जानकारी जितनी वीरसिंह से मिल सकी जान लिया।

बड़े आदमियों के साथ कितनी देर तक बातचीत करना चाहिये इसकी सीमा प्रत्येक मनुष्य को जानना चाहिये। बड़े आदमी नमस्कार आदि के पश्चात् छोटे मनुष्य से स्वास्थ्य आदि के विषय में पूछ लें यही उनका बड़ा एहसान है और फिर दूसरा जानने योग्य है ही क्या? इसके भावार्थ में मोटी से मोटी पुस्तक भरी जा सकें इतना उत्तर हो सकता है वहाँ क्रमानुसार वार्तालाप का क्रम जारी रहता है। यदि बैठने का स्थान मिल गया हो तो भी लौटने की तैयारी करना चाहिये। अच्छी रीति नीति का यही नियम है।

वीरसिंह एक राजा थे। उनकी सामान्य व्यक्ति में गणना हो ऐसा नहीं हो सकता था। इसलिये विल्सन साहब ने आबो-हवा की वार्ता से आगे बढ़कर शिकार सम्बन्धी बातें की। दूसरा प्रसङ्ग होता तो मुलाकात का अन्त आ चला है यह वीरसिंह की समझ में आ गया होता। किन्तु जो महत्त्व की बात करनी थी वह साहब से अभी तक न हो सकी थी, इसलिये उन्होंने वहाँ से बिदा लेने के थोड़े से भी भाव प्रदर्शित नहीं किये। विल्सन साहब ने घंटी बजा चपरासी को बुलाया और हस्ताक्षर करने के कागज मंगाये। वीरसिंह को भी सूचित करने के उद्देश्य से उन्होंने प्रश्न किया।

"क्यों राजा साहब ! रहेंगे या जायेंगे ?"

"मैं तो आपसे कई निजी बातें करने आया हूँ !" वीरसिंह ने उत्तर में अपना अभिप्राय प्रगट किया।

"निजी बातचीत ?" साहब जैसे कुछ समझते ही न हों, ऐसा आँखों से आश्चर्य्य प्रदर्शित करते हुए बोले।

"तो सायंकाल चाय पीने आप मेरे यहाँ पधारें। मैं बड़ी खुशी से आपकी सब बातें सुनूँगा।"

वीरसिंह को वहाँ से उठने के सिवा दूसरा चारा न था। साहब के घर का अभी चक्कर काटना पड़ेगा, उन्होंने नाखुशी मुँह पर प्रगट किये बिना सायंकाल का साहब के घर का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

निश्चित हुये समय पर वीरसिंह साहब के बँगले पर गये। साहब, उनकी मेम साहब और तीसरे एक चंचल व्यक्ति वहाँ बैठे थे। साहब ने मेम साहब से वीरसिंह का परिचय कराया। मेम साहब ने वीरसिंह के साथ खूब बातें की। अंग्रेजी बोल सकनेवाले अनेक ठाकुरों की उन्होंने अनेकों त्रुटियाँ देखी थीं। इस कारण वीरसिंह के साथ बात करने में उन्हें अधिक आनन्द आ रहा था। अंग्रेजी औरतों की बातों के चंगुल में फँसा व्यक्ति उससे जल्दी मुक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक विषय पर बातें करने का कर्तव्य उसे निभाना होता है। वीर-सिंह का नाम उसने पुनः पूछा, नाम का अर्थ पूछा, वीर के माने क्या और सिंह माने क्या, इस प्रकार पृथक अर्थ समझने का उन्होंने प्रयत्न किया। ऐसे नामों के निर्माण-काल का समय उसने पूछा। उस समय वीरसिंह के पूर्वज सद्‌भाग्य से जङ्गल में बसते रहे होंगे ऐसा अनुमान भी उन्होंने किया। सिंह के अलावा और दूसरे किन-किन जानवरों का नाम उनकी जाति ने ग्रहण किया इसका ब्योरा भी उन्होंने पूछा। पर्वत का अथवा अफ्रिका का कौन सा सिंह ? यदि अफ्रिका का रहा हो तो वीरसिंह के पूर्वजों के इतिहास में कुछ उल्लेख है कि नहीं, उल्लेख न हो तो भी प्राचीन गुजरातियों और अफ्रिका-वासियों के बीच जहाज द्वारा आदान-प्रदान था क्या ? ऐसे-ऐसे बेतुके प्रश्नों

से वे बड़ी कठिनाई से छूटे, चाय पीते हुए विल्सन साहब उनसे निजी बातें करने लगे।

"सर ! आपके कार्य्यालय ने मेरे यहाँ दीवान के नियुक्ति के प्रश्न को अनावश्यक ही उलझा दिया है।"

"हाँ। इस सम्बन्ध में कुछ प्रकरण अवश्य चल रहा है राजा साहब ! आप किस कारणवश उस व्यक्तिके लिये आग्रह कर रहे हैं ?"

"मैंने उन्हें वचन दे दिया है।"

"ठीक ! किन्तु आपको वचन क्यों देना पड़ा ?"

"इसमें कारण है।"

'निश्चय ही, उसके बिना तो आपने वचन दिया ही नहीं। परन्तु ऐसा कौन सा कारण विशेष आ पड़ा ?"

"वह कारण इतना निजी है कि मैं उसे किसी पर प्रगट करना नहीं चाहता।" थोड़ा उत्तेजित होते हुये वीरसिंह ने कहा।

वीरसिंह की उत्तेजना से साहब जरा भी उत्तेजित नहीं हुये। स्थिरता-पूर्वक उन्होंने कहा—

"आपने यह बतलाया कि उनकी नियुक्ति में आपको किसी कारणवश अपने किसी कर्तव्य का पालन करना पड़ा है। राजा साहब ! जिस व्यक्ति को नियुक्त करने की आप धारणा कर रहे हैं, उसके विरुद्ध बहुत अधिक प्रमाण मेरे पास एकत्रित हो गये हैं।"

"विरुद्ध प्रमाण ? उन्होंने क्या अपराध किया है ?" वीरसिंह ने आश्चर्य-चकित हो पूछा।

मधुसूदन का विरोध कोई क्यों करता है यह वीरसिंह नहीं समझ सके।

"पहली बात वह एक कांग्रेसी नेता है। राजकीय विषय में बिना समझे माथा मारने वाले व्यक्ति को आप दीवान बनायें तो वह अवश्य ही आपको झंझट में डाल देगा।" साहब ने कहा।

"उसका राजकीय विचार विनीत पक्ष का है उद्दाम पक्ष का नहीं।"

"जैसा चाहे वैसा हो। परन्तु मेरी तो आपको मित्र रूप में सम्मति है कि राजनीति से अलिप्त रहने वाले किसी व्यक्ति को दीवानपद के लिये चुनना चाहिये। मैं आपको वैसे एक व्यक्ति का परिचय कराता हूँ। मिस्टर महेशचन्द्र जी बहुत ही काबिल और राजकीय विषय के विशेष अनुभवी व्यक्ति हैं। मैं इनके लिये आपसे सिफारिश करता हूँ।" विल्सन साहब ने समीप बैठे हुये उस चपल व्यक्ति से परिचय कराया। उसे कबसे अनबोला बैठा देख, आँखों को खोलने और मीचने की उसकी पद्धति से वीरसिंह को बिल्ली की आँखें कब से याद आ रही थीं।

वीरसिंह ने उत्तर दिया—"मैं आपके सम्मानित सम्मति के लिये आभारी हूँ। परन्तु मैं तो मधुसूदन को दीवान बनाने का वचन दे चुका हूँ।"

"राजासाहब की इच्छानुसार होने देने की साहब बहादुर से हमारी बिनती है। दीवानगीरी करने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ।" महेशचन्द्र ने उत्तर दिया।

महेशचन्द्र के प्रति वीरसिंह के मन में उत्पन्न होते हुये अनादर के भाव जरा अटके। महेशचन्द्र के त्रिपुन्ड की ओर उनका ध्यान गया और यह मनुष्य दिखने जैसा ही धार्मिक प्रवृत्ति का होगा ऐसी उन्हें आशा हुई।

"राजा साहब अभी युवक हैं। मुझे इनके लिये इतना अधिक ध्यान है कि मैं इन्हें छोटी सी भी भूल नहीं करने दे सकता।" साहब ने कहा।

वीरसिंह की आँखे लाल हो उठीं। उनके हृदय में क्रोध प्रज्ज्वलित हो उठा। परन्तु साहब द्वारा मित्रता का दावा करने के कारण क्रोध प्रगट किया जा सके ऐसा न था। अन्ततः मुख से कड़ी बात निकल ही पड़ी—

"तो क्या मुझे अपना दीवान नियुक्त करने का अधिकार नहीं?"

साहब कृपा की वर्षा करते हुये हँस कर बोले—"आपको अपना दीवान चुनने का सम्पूर्ण अधिकार है।"

"मुझे तो नहीं ज्ञात होता कि अधिकार है।"

"यदि आपको अधिकार न होता तो हम उसे यहीं से नियुक्त करके न भेज देते ? यह तो केवल आपको सम्मति मात्र दी जाती है। इस सम्मति के अनुसार न चलने के परिणाम स्वरूप आनेवाली विपत्ति के प्रस्तुत होने देने के लिये मैं बिल्कुल तैयार नहीं हूँ !"

एजेन्सी के मुख्य अधिकारी के इस कथन के पश्चात् क्या उत्तर देना चाहिये यह वीरसिंह के समझ में न आया। चाहे जितनी जोखिम हो उसे उठा कर भी वह अपने चुने व्यक्ति को ही दीवान नियुक्त करेगा ऐसा कहे अथवा इच्छानुसार दीवान की नियुक्ति न कर सकेगा तो वह राज्य पद त्याग देगा ऐसा उत्तर दे ? इन शब्द रचनाओं की उलझन में वह पड़ा। उसने मनमें निश्चय किया कि यदि मधुसूदन की नियुक्ति न होगी तो वह राज-गद्दी छोड़ देगा। स्वमान और गौरव के रक्षार्थ राज से निवृत हो जाना ही उन्हें एक मार्ग दृष्टिगोचर हुआ।

साहब उसकी उलझन समझ गये और मन में आनन्दित हुये। शासकों को उलझन में डालने का अभ्यास इन सचेत अधिकारियों को बहुत अच्छी तरह हो गया था।

परन्तु सुन्दरपुर की दीवानगीरी पर आँख लगाये बैठा हुआ महेशचन्द्र अपने भविष्य के राजा को एक रास्ता सुझाया—

"एजेन्सी भी किस कारण से इतना हठ पकड़े है ? राजा साहब ने वचन दिया है, उसमें भी चाहे जो कारण हो, परन्तु उन्हें वचन भङ्ग के लिये कहना यह उचित नहीं होगा। किन्तु उसी प्रकार साहब बहादुर की भी जो सद्इच्छा है उसे किस प्रकार निभाया जाय यह बात भी राजा साहब के सोचने की है। साहब बहादुर सुन्दरपुर राज्य के शत्रु तो हैं नहीं ?"

"परन्तु यह हो किस प्रकार ?" कुछ ऊबते हुये वीरसिंह ने पूछा !

"राजा साहब, इसमें कुछ बड़ी मुश्किल नहीं है। आप जिस व्यक्ति को नियुक्त करना चाहते हैं वे क्या काम करते हैं ?"

"वे वकील हैं ?"

"तो उन्हें राज्य में न्याय-मन्त्री नियुक्त कर दीजिये और एजेन्सी की ओर से जिसके लिये परामर्श हो उसे दीवान अथवा कार्याधिकारी प्रधान का नाम दे दें। अभी तुरन्त एक व्यक्ति का खर्च तो बढ़ जायेगा, परन्तु यदि आपका नियुक्त व्यक्ति यथेष्ट उचित हुआ तो खर्च राज्य पर भार न होगा। साल दो साल में आपको और एजेन्सी को जब विश्वास हो जाय कि न्याय मन्त्री से राज्य-कार्य्य पूरा सम्हल जायेगा तब आप दीवान को पृथक कर दीजिएगा।"

वीरसिंह ने सोचा कि बहुत तनने की अपेक्षा इस बतलाये हुए रास्ते को अपनाना ही उचित है। राज्य खोकर भी मित्र को दिया हुआ वचन पाला जा सके ऐसा नहीं हो सकता था। बल्कि अपने ही कारण वीरसिंह को राज्य से पृथक होने का प्रसङ्ग उपस्थित होगा इसे जानते ही मधुसूदन स्वयं ही दीवान पद अस्वीकार कर देगा ऐसा उसे निश्चय हुआ। यदि राज्य कार्य्य में एक एजेन्सी का अनुभवी व्यक्ति आये तो इस प्रकार के सभी झगड़ों में अत्यधिक उपयोगी हो सकेगा यह भी निश्चित है। मधुसूदन की उदार भावना और एजेन्सी के पसन्द व्यक्ति का अनुभव दोनों यदि साथ २ कार्य्य करें तो उसे स्वयं और राज्य को भी अवश्य लाभ होगा ऐसा उसे प्रतीत हुआ। महेशचन्द्र के प्रति उसको सदइच्छा उत्पन्न हुई। बिल्ली सरीखी आँखों में चालाकी का निवास है ऐसा उन्हें निश्चय हुआ।

विल्सन को भी यह मार्ग उचित जान पड़ा। कदाचित् ममता से परिपूर्ण राजा वीरसिंह सीधे राज-सरकार तक बातें ले जाँय तो बिना कारण ही राज्य-कार्य्य में छेड़छाड़ करने का अपराध उसके माथे आयेगा। मधुसूदन के विरुद्ध आई सभी बातें प्रमाण स्वरूप पूर्ण भी उतर न सकेंगी। आक्षेप भाग्य से ही सत्य उतरता है और उसमें ये बिना नामवाले अभियोग पत्रों में लिखे अभियोगों को सत्य प्रमाणित कर देने का प्रसङ्ग दुर्लभ ही होता है। ऐसे हुए आक्षेपों के कितने ही अभियोगी एजेन्सी नौकरी में बिना किसी अटक के मौज से नौकरी कर रहे हैं। तो फिर मधुसूदन के लिए वह स्वयं किस कारण बाधा उपस्थित करता रहे? उसके राजनीतिक व्यवहार की पुलिस

को लगी डर सरकार के यहाँ मान्य नहीं भी हो सकती, और यदि भविष्य में कोई ऐसा प्रमाण प्रस्तुत हुआ तो वे राज्य पर दबाव डाल उसे पृथक करा देंगे।

कुछ ही क्षणों में दोनों ने विचार किया और महेशचन्द्र के बतलाये हुये मार्ग के ग्रहण का निश्चय कर लिया। परन्तु अपना-अपना मत पहिले से प्रगट कर चुकने के कारण इस नये निर्णय को स्वीकार प्रथम कौन करे? और पहिले अपना मन्तव्य प्रगट करने पर यदि समक्षवाला निर्णय स्वीकार न करे तो उसका अपमान कौन सहन करेगा?

महेशचन्द्र ने दोनों को बचाया—उसने वीरसिंह से पूछा :—

'क्यों राजा साहब, आपने कुछ कहा नहीं? मेरा कहना अनुकूल न लगा हो तो दूसरी बात है, नहीं तो जो मैं कह रहा हूँ यदि वैसा हो तो क्या कठिनाई है?"

"कठिनाई के लिए साहब बहादुर से पूछिये!" वीरसिंह ने थोड़ा कटाक्ष-युक्त उत्तर दिया।

"नहीं नहीं। मुझे कोई कठिनाई नहीं है। राजासाहब को यदि यह उपाय अनुकूल पड़ता हो तो मैं बीच में आना नहीं चाहता।" साहब ने अपना मत प्रगट किया।

अन्ततः वीरसिंह और एजेन्ट साहब दोनों का ही मान सुरक्षित रहे ऐसा निर्णय स्वीकृत हुआ और सुन्दरपुर को सद्भाग्य से एक के बदले दो दीवान मिले। वीरसिंह की ओर से मधुसूदन तो निश्चित हो ही चुका था। अब एजेन्ट साहब की ओर से कौन लिया जाय यही निश्चय करना था, साहब बहादुर तो महेशचन्द्र की सिफारिश कर ही चुके थे। इस कारण वही सिफारिश निश्चित भी रही। वीरसिंह को भी महेशचन्द्र के प्रति प्रारम्भ में जो कुभाव था वह मिट चुका था। इतना ही नहीं, उन्हें जो विराग हो गया था, उनके बुद्धि बल पर उन पर मान भी उत्पन्न हुआ। त्रिपुण्डधारी होने पर भी

विल्सन साहब के घर की चाय पीनेवाला व्यक्ति केवल धर्मान्ध और पुराने विचारोंवाला नहीं हो सकता ऐसा उन्हें लगा। इसलिए साहब की सिफारिश को वीरसिंह ने स्वीकार कर लिया।

केवल महेशचन्द्र ने बारम्बार अपनी असहमति प्रदर्शित की। अनेकों प्रकार की कठिनाइयाँ उन्होंने उपस्थित की। परन्तु वीरसिंह और साहब के आग्रह समक्ष उनका कोई वश नहीं चला। उन्होंने सुन्दरपुर के दीवान पद को अन्ततः स्वीकार कर लिया और साथ ही साहब और उनकी मेमसाहब को सुन्दरपुर आने का निमन्त्रण भी दिया। एक के बदले दो दीवान तथा साहब बहादुर की सुन्दरपुर पधराई की सम्मति प्राप्त कर सुन्दरपुर के राजा वीरसिंह राजधानी वापस लौटे।

—::०::—

११

स्वभाव-परिवर्तन

मधुसूदन को दीवान के नियुक्ति की सूचना मिली तो उसे एक प्रकार की नवीनता लगी।

"आप इतना अधिक मुझसे क्यों आग्रह कर रहे हैं? दो दीवान की आवश्यकता क्या है?"

"मुझे राज्य में कौंसिल स्थापित करने की इच्छा है। हम लोगों के इतिहास अध्ययन के समय तुम कहते थे न कि एक प्रधान के बदले प्रधानों का मंत्रि-मण्डल हो तो अधिक उत्तम हो?" वीरसिंह ने उत्तर दिया।

वीरसिंह की इच्छानुसार मधुसूदनके वकालत छोड़कर सुन्दरपुर आने से प्रथम ही महेशचन्द्र ने आकर अपना उत्तरदायित्व सम्भाल कर कार्य्य आरम्भ कर दिया था। उसकी वाणी में अनुपम माधुर्य्य था। बातों की मिठास का यदि किसी को अनुभव करना हो तो उसे महेशचन्द्र की वार्ता अवश्य सुनना चाहिये। सुन्दरपुर के राजा को तो उसने प्रथम साक्षात में ही प्रसन्न कर लिया था। सुन्दरपुर आने के पश्चात् राज्य के अधिकारियों तथा निम्न श्रेणी के नौकरों तक को भी उसने अपने वाक्यचातुरी से वश में कर लिया था। राज्य-व्यवस्था और पोलिटिकल राजकीय प्रकरण जो चल रहे थे उसकी उचित व्यवस्था की। दूसरे राज्य से लगी हुई सरहद विषयक विवाद एक कर्मचारी समझाने आया।

"आओ भाई, आओ! क्या लाए? हाँ, उलझन भरा विवाद है?.... परवाह नहीं। बैठो। वहाँ ही बैठ जाओ। थोड़ा भी न घबड़ाओ.............. कितने वर्षों से काम करते हो? दस वर्ष हुआ!.............ठीक, तनख्वाह क्या

है ?.. ....पच्चीस रुपया ही ?........बहुत कम है। तुम्हारी तनख्वाह मैं बढ़वाऊँगा ?.......भूतपूर्व आफिसर ने क्या लिखा था ? पढ़ो ... सुनूं ?—ठीक। इस काम में कुछ खर्च पड़ा क्या ? ....कायदे का खर्च नहीं तो किस प्रकार का हुआ ?....... ऐसा काम किस प्रकार होता है उसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ। तुम घबड़ाओ नहीं।............ ठीक। तुमको इस काम में क्या मिला ? .... कुछ नहीं ? ....सच कहते हो ? ....मैं तुम्हें बन्दी बनाना नहीं चाहता। पच्चीस रुपये तनख्वाह में मनुष्य खर्च नहीं चला सकता यह क्या मैं समझता नहीं ? तुम्हारे जैसी तनखाहवाले कर्मचारी को यदि दूसरी आमदनी न हो तो इसके माने कि वह नौकरी करवाने के योग्य नहीं............ उसे मैं जानता हूँ। तुम क्या करो ? पच्चीस रुपये में पाँच सात व्यक्तियों का खर्च पूरा करना कहनेवाला निश्चय ही दोषी है .... अच्छा आगे पढ़ो, एजेन्सी का क्या उत्तर है ?

क्रम-क्रम कर्मचारी वर्ग की उस पर श्रद्धा हो गई। चालाक मनुष्यों को उसने पहचान लिया और उन्हें अपना बना लिया। महेशचन्द्र स्वयं होशियार था इसलिये वह अपने द्वारा प्रभावित हुए कर्मचारियों द्वारा आवश्यक वस्तुओं के भाव आदि भी मंगवा उसका ज्ञान भी रखता। इन कर्मचारियों के कार्य भी शीघ्रतापूर्वक होते इसलिए उनके द्वारा कहे गये कार्य्य तुरन्त करने में वे ढिलाई नहीं करते थे।

राज्यव्यवस्था के लिए उसे स्वयं भी गाँवों में अधिक जाना पड़ता। इन परिश्रम में उसे थोड़ा भी आलस्य नहीं होता था। उसकी पूजा अर्चना भी काफी होती थी। कम से कम दो तीन घंटे तो ईश्वराधना में लगता ही था। प्रभात में उठकर वह नर्वदाष्टक तथा गंगा लहरी के पाठ के साथ स्नान करता। पश्चात् स्वच्छ पीताम्बर पहन बहुमूल्य शाल ओढ़कर खड़ाऊँ पहन वह देव पूजा में प्रवृत्त होता। यथा सम्भव किसी भी देवता को बुरा न लगे ऐसे प्रकार के देवताओं को उन्होंने चुना था। धूप से समूचा मकान सुगन्धित बना देता। पुष्प ढेर की ढेर चढ़ाता और घंटानाद तथा आरती की वह ऐसी

धूम मचाता कि उसके आस्तिक और भावुक हृदय के प्रति सभी किसी को मान उत्पन्न हो जाता। क्रम-क्रम क्षीण होती हुई देव-पूजा के शिष्ट स्वरूप को आग्रह पूर्वक निभानेवाले पुरुष को मान का पात्र गिना जाना चाहिए।

इस तीन घंटे में वे धर्मध्यान के सिवा और कोई दूसरा कार्य्य न करते थे। इससे उनकी छाप अधिक अच्छी पड़ी। "आजकल धर्म्म घटता जा रहा है" ऐसा कह निःश्वास छोड़नेवालों के साथ, धर्म घटाने में सहायक भूत होते हुए सभी कोई सम्मत हो सकते हैं इतना ही नहीं, बल्कि इस प्रकार छोड़नेवालों की कदर भी करते हैं। महेशचन्द्र लोगों का काम करते, उसके साथ ही उन्हें धार्मिक कार्य्यों में धन खर्च करने का उपदेश भी करते। क्रम-क्रम उपदेश के साथ ही साथ उचित धर्म कार्यों को भी बतलाने लगे। अमुक शिवालय मरम्मत कराना है उस स्थान पर धर्मशाला बनवाना है। गर्मी में पौसरा बैठाना है सन्यासियों को भोजन देना है। ऐसे अनेक धार्मिक कार्य्य न्यायपूर्वक वे बतलाते जिनका कार्य होता वह उसे पूरा होने की लालच में और जिन्हें अभी तुरन्त कोई कार्य न होता जो भविष्य में काम पड़ेगा वह हो जा सकेगा इस प्रलोभन से धर्म्म कार्य्य में धन दान देकर दीवान साहब को और उसी प्रकार परमेश्वर को साथ ही साथ प्रसन्न करने का कठिन काम कर सकते थे। धर्म्म कार्य्य में धन खर्च करने का वचन देने से दीवान साहब स्वयं सदा अलिप्त रहते थे।

मधुसूदन महेशचन्द्र से उम्र में छोटे थे। दीवान की गद्दी सुशोभित करने के लिये भव्य शरीर और जवानी की बीती वय चाहिये ऐसी लोगों की मान्यता हो गई है ऐसा जान पड़ता है। मधुसूदन में इन दोनों बातों की कमी न थी। राजा चाहे पाँच वर्ष का हो, चाहे पन्द्रह वर्ष का वह अपने गद्दी पर बैठेगा। दीवान पच्चीस, पैंतीस अथवा पैंतालिस वर्ष का हो तो यह जनता की दृष्टि में छोटा दीखता है। मधुसूदन की उम्र इस समय पच्चीस छब्बीस वर्ष की दिखलाई पड़ती थी। यह उसकी बड़ी से बड़ी कमी थी। यह छोकड़ा दीवानगीरी

क्या करेगा ? ऐसा सभी प्रजा-जन विचार करने लगे।

लेकिन पोशाक वह अंग्रेजी ढङ्ग की पहनते थे। उस समय की कांग्रेस भी यूरोपीय पोशाक पहनने वालों से परिपूरित रहती थी। स्वदेशी माल को व्यवहार में लाने का अत्यधिक आग्रह था, परन्तु गान्धी युग में स्वदेशी की जो सचेतता पूर्ण चेतना उत्पन्न हुई वह उस समय में प्रगट न हुई थी, केवल उसका आच्छादित परिचय ऐसा प्राथमिक चिन्ह ही उस समय मालूम होने लगा था। गाँव और देशी राज्य तो आज के अनुसार ही उस समय भी स्वदेशी दिखावट और माल को ही महत्व देते थे। इससे मधुसूदन एक सुघरा और छबीला छोकड़ा है ऐसा उसे देखते ही जनता को लगता।

लेकिन वह नियमित कार्य करने का आदी था। निश्चित समय पर कचहरी आता। वेतन और पद जिस प्रमाण में उच्चकोटि का हो उसी प्रमाण में निश्चित समय से विलम्ब में आने का जिसे तिसे अधिकार है ऐसी कर्मचारी वर्ग की मान्यता थी। ऐसा छोटा से छोटा एक भी कर्मचारी न था जो निश्चित समय पर कार्य्यालय में पैर रखने का तुच्छ कार्य्य कर सके। मधुसूदन पहले दिन आया तब कार्यालय बन्द था। दो चपरासी चौतरे पर ऊँघ रहे थे। खड़खड़ाहट होने पर भी उनकी निद्रा नहीं टूटी और जब मधुसूदन के साथ आया हुआ चपरासी उन्हें झकझोर कर उठाने लगा तब एक दो शब्द जो समझ में आये या न आये ऐसे स्वस्ति वचन सुना करवट बदल फिर सो गये। पीछे से सफाई करने वाला दौड़ा दौड़ा आया, उसने किवाड़ खोले। फर्राश ज्यों ज्यों कार्यालय के कमरों को खोलता गया त्यों त्यों मधुसूदन ने प्रत्येक कमरों में अन्दर घुस कर निरीक्षण किया। निश्चित समय के बाद आधा घण्टा बीता, एक घंटा बीता, तब तक कार्य्यालय सूनसान था, मधुसूदन को शंका हुई आज छुट्टी का दिन तो नहीं है ? इतने में दूरी पर से धीमे धीमे किसी आने वाले के निकट आने की आहट मिली। दरवाजे के जगे हुये सिपाही ने दौड़ते हुए जाकर उससे कुछ कहा। उसके पैर में अनुमान से कहीं अधिक गति उत्पन्न हो गयी, बात की बात में उसने दफ्तर में प्रवेश

किया और जरा भी पैरों की आवाज किये बिना वह अपने कार्य्यालय में प्रवेश कर गया।

मधुसूदन कुछ कार्य्य न होने के कारण टहल रहा था। उसने उस कर्मचारी को अपने निकट बुलवा लिया। मन में कुछ भी भय न हो परन्तु मुख ऊपर उसका प्रदर्शन करने की कला में बहुत से लोग अत्यन्त प्रवीण होते हैं, कर्मचारी के मन में कुछ भी भय नहीं था, फिर भी जैसे वह स्वयं घबड़ा उठा है ऐसा प्रदर्शन उसने किया। मधुसूदन ने उसे थोड़ा स्वस्थ होने देने के पश्चात् पूछा:—

"तुम कौन हो?"

"हजूर मैं तो......क्लर्क हूँ।"

"तुम्हारे कार्य्यालय के खुलने का समय क्या है?"

"साढ़े ग्यारह बजे खुल जाना चाहिये।"

"कचहरी खुलने का समय और तुम्हारे आने का समय क्या भिन्न भिन्न है।"

"नहीं हुजूर!"

'आज तुम कितने बजे आये हो?"

"जी......रोज तो.......आज जरा कुछ देर हो गयी।"

"दफ्तर के दूसरे लोग अभी तक क्यों नहीं आये?"

"आते ही होंगे।"

इतने में और तीन चार कर्मचारी आकर अपने अपने स्थान पर बैठ गये। मधुसूदन ने उन्हें बुलाया।

"तुम सभी आज देर से क्यों आये?"

"हजूर अब जल्दी आया करूँगा।"

"परन्तु आज देर से क्यों आये?

"यह तो साहब.........।"

"अटको नहीं। बोलो क्या कहना चाहते हो?"

"यहाँ की साहब पद्धति ही ऐसी है। सच तो यह है कि दो बजे ही कार्य शुरू होता है।"

"दफ्तर का काम पूरा कैसे करते हो?"

"वह तो जैसा काम। शाम तक हो जाता है।"

"अढाई घंटा देर से आने और अढ़ाई घंटा देर से जाने में तुम लोगों का लाभ क्या है? साढ़े ग्यारह बजे समय से आकर और साढ़े पाँच बजे लौट जाओ इसमें हानि ही क्या है?"

"हानि तो कुछ नहीं, परन्तु अभ्यास ......।"

"अभ्यास है तो उसको बदल डालो। कल से जो ग्यारह बजे नहीं आयेगा वह गैरहाजिर गिना जायेगा।" मधुसूदन ने आज्ञा दी। कर्मचारी लौट गये। अपने अपने स्थान पर बैठ कर काम करते हुए वे थोड़ा-थोड़ा मुस्कराने लगे। धीरे धीरे बात-चीत भी शुरू हो गयी—

"अरे मोहन, कल से तड़के उठना होगा।"

"उठ चुके तड़के। ऐसे कितने आये और कितने जायेंगे।"

"अब तो दीवान लोगों को यही देखना रह गया है। कौन जल्दी आया, कौन देर से आया।"

"दूसरा कुछ आता हो तब न?"

"अब छोकरों से पाला पड़ा है। दौलत राम अब पुराना जमाना गया।"

"कहीं जमाना गया नहीं है। चार दिन शोर मचा कर यह भी चुप बैठ जायेगा।"

"दो चार मिनट देर हो जाय, तो इसमें इतनी बड़ी उपद्रव क्यों?"

अढ़ाई घंटा देर से आनेवाले कर्मचारियों को अपना अपराध दो चार मिनट देर से आने जितना ही क्षमा योग्य मालूम हुआ।

"यहाँ तो जो होता आया है वही होगा......। काम के साथ काम है कि वखत के साथ ?" अपने को अत्यधिक कार्य दक्ष मानने वाले एक कर्मचारी ने कहा।

दूसरे दिन मधुसूदन आये तब केवल दफ्तर खुला हुआ था। कर्मचारी लोग अभी तक नहीं आये थे। वह थोड़ा बड़बड़ाया—

"यह कैसी लापरवाही ? लोगों को समय पर आने में क्या होता है ?"

क्रम क्रम कर्मचारी गण आने लगे। समय पर तो कोई भी नहीं आया, लेकिन पहिले दिन के मुकाबले सभी जल्दी आये थे। मधुसूदन ने फिर सबको बुला कर धमकाया।

कर्मचारियों को लगा कि उनका एक लम्बे अर्से का हक व भोग नष्ट होता जा रहा है। घंटे आध घण्टे छोटे कर्मचारी देर कर आवें तो उसमें दीवान जैसे उच्च पदाधिकारी किसलिए इतनी टिप्पणी करना चाहते हैं। यह किसी के समझ में नहीं आ सका। कर्मचारी वर्ग में वह अप्रिय हो गया। कार्य को जल्दी से समाप्त कर देने वाला उसका अभ्यास कर्मचारी की दृष्टि में कार्य-दक्षता का अभाव था।

"काम तो ठीक से समझ लेता है ?" कोई साधारणतया कहता।

"अरे इतना भी न समझे तो फिर कुर्सी से उठाकर उसके हाथ में पटिया और खड़िया का टुकड़ा थमा दो।" दूसरे ने कहा।

"परन्तु काम को तो तुरन्त सुलझा लेता है।"

"अरे इसमें क्या ? हाँ कहना या ना, इसमें देर ही क्या लगती है ?" परन्तु असली खूबी तो तब है कि वह हाँ कर रहा है कि ना इसकी समझ किसी को न पड़े। फिर काम को जिस रास्ते से करना हो करे। होशियार अधिकारी तो वह तब ही है। समझा मेहरबान ?"

मेहरबान लोग समझ गये और कर्मचारी संघ ने सर्व सम्मति से निश्चय कर लिया कि मधुसूदन कुशल अधिकारी नहीं है। कार्य्य को अधिक समय बढ़ाये रखने की आदत पर ही कार्य दक्षता का आधार रहा है। पाँच वर्ष में कार्य्य समाप्त करने की तुलना में दस वर्ष तक लम्बा बढ़ा कर चलाने वाला अत्यधिक कुशल अधिकारी है। और जीवन भर उस प्रश्न का निराकरण न आने देने वाला उससे भी अधिक बुद्धिमान है, ऐसा कर्मचारी संघ की मान्यता थी।

जनता में भी वह लोकप्रिय नहीं हुआ। सरकार का दरबार करने की जिन्हें अधिक आवश्यकता पड़ती है, उनका कुछ न कुछ स्वार्थ होना ही चाहिये। कुछ नहीं तो अन्त में अधिकारी वर्ग से परिचय का महत्व प्राप्त करने की उनकी प्रवृत्ति तो होती ही है, ऐसी मधुसूदन की मान्यता थी। अपने को प्रतिनिधि स्वरूप मानने तथा माने जाने वाले एक दो व्यक्ति प्रारम्भ में ही उससे मिलने आये। उसने पूछा—

"कैसे ? कहाँ से आये हैं ?"

"यहीं से आ रहा हूँ साहब। आपको सलाम करने के लिए आया हूँ"।

"दूसरा और कुछ काम है ?"

"हमारे पास तो साहब काम-काज कुछ भी नहीं है। हम काम लेकर आये ऐसे नहीं है।"

"फिर बिना काम के आने का कष्ट क्यों किया ? यह तो हमारा और आपका दोनों का समय निरर्थक गया। मुझे कार्य्य होगा तो मैं आपको बुला लूँगा और आपको काम हो तो आप बिना किसी शंका के आवें। परन्तु बेकार किसी से मिलना मुझे पसन्द नहीं है।"

व्यर्थ में ही सब से मुलाकात का अपना अधिकार समझनेवाले लोगों को यह रूखा व्यवहार पसन्द नहीं आया।

कितने व्यक्ति नये दीवान साहब से बिना परिचय के भी दूसरों का उपकार करनेवाली परोपकारी वृत्ति धारण करनेवाले मालूम पड़े।

"क्यों भाई ! क्या काम है ?" उनसे मधुसूदन पूछते।

साहब ! काम होगा तो मैं दौड़कर आऊँगा। परन्तु मुझे कुछ वैसा काम नहीं है। मैं तो इतनी प्रार्थना करने आया हूँ कि आपको कुछ भी काम हो तो इस सेवक को आज्ञा दें।"

"अवश्य करूँगा।"

"आप जरा भी संकोच मत कीजियेगा। जिस किसी वस्तु आदि की आवश्यकता हो उसे चपरासी आकर कह जाय बस मैं भेज दूँगा। इसलिये ....।"

"आप किस चीज का व्यापार करते हैं ?"

"व्यापार वगैरह किसी चीज का नहीं है।"

"तो फिर आप कोई चीज वस्तु किस प्रकार भेज सकेंगे ?"

"हम गृहस्थ हैं न साहब ! सभी चीजें हम रखते हैं। आपको जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ेगी उसे तुरन्त भेज दूंगा। सभी दीवान साहबों से अपना घर सा ही व्यवहार था।"

"हूँ ! अब समझा। मेरी आवश्यकताओं की सभी वस्तुएँ मेरे पास हैं। न होने पर मैं बाजार से मंगवा सकता हूँ बाजार में न मिलने पर उसके अभाव में भी काम चला सकता हूँ। इसलिये आप पधारे मैं आपको तकलीफ देने लायक नहीं हूँ।"

कोई आगे बढ़ा हुआ नेता—घर का ही व्यक्ति बन—जाकर अपना अधिकार जताता हुआ कहता—

"हजूर, आज तो मेरे यहाँ पधारना पड़ेगा !"

"कारण ?"

"कारण कुछ नहीं। बस मेरी इच्छा है।"

'परन्तु मैं आपके यहाँ आऊँगा इससे आपको क्या खुशी होगी ?" मधुसूदन प्रश्न करता।

"जी हाँ। ऐसा भाग्य कहाँ जो आपका कदम पड़े ?" उत्तर मिलता।

अधिकारी वर्ग का मुबारक कदम किसी गृहस्थ के घर में पड़ जाय तो उसे किस कारण वश प्रसन्नता होनी चाहिये इसे अधिकारी अथवा गृहस्थ में कोई भी नहीं समझ सके हैं। फिर भी अधिकारी पधारते हैं और उनके पधारने से पधरानेवाले के हर्ष का पार नहीं रहता ऐसा वे कहते हैं। संसार की कितनी अगम्य योजनाओं में से एक यह भी है।

"परन्तु मुझे आपके यहाँ आकर क्या करना होगा ?"

"बस। कुछ भी नहीं। पीढ़े पर बैठ जाइयेगा और एक दो कौर जूठन डाल दीजियेगा इतना ही............।"

"आपको ब्राह्मण भोजन करना है कि भिक्षुकों को खिलाना है ?"

"नहीं नहीं ! ऐसा कुछ भी नहीं है। यह तो केवल आपके लिए ही खास आयोजन है।"

"किस कारण ? मुझे भोजन कराने से लाभ क्या ? न धर्म्म कार्य्य होगा न पुण्य कार्य्य होगा ? मुझे भोजन कराने के बदले किसी दो चार दिन के उपवासे को भोजन कराइये जिससे वह आपको आशीर्वाद दे।"

ऐसे विचित्र दीवान को अग्रगणी लोगों ने भी ना पसन्द किया। उसके प्रति इधर-उधर बातें होने लगी।

"देखा न ! है कुछ मनुष्यता ?"

"ठीक है। घूस न ले। परन्तु परस्परता का विवेक भी न समझे ?"

"अरे, इसे तो सत्यवादी हरिश्चन्द्र होना है !"

"वह भले बने। परन्तु ऐसा अभिमान किस काम का।"

इस प्रकार उसकी टीका होने लगी। निश्चय ही अधिक अनुभवी व्यक्ति

इस प्रकार अग्रगणियों को अप्रसन्न नहीं करते। स्वयं ईमानदार रहकर भी विवेक निभाना असम्भव तो है नहीं। तथापि यह युवा जन समाज की जन्म-घन्टी से अपरिचित और अधिकार में ही पहिचानी जाती मनुष्य की खामीयों से अज्ञात मधुसूदन अधिकार की उष्णता द्वारा पोषित होती निर्बलताओं पर दृष्टि करता तब वह उन निर्बलताओं को एक बार के झटके में दो टूककर उसे निर्मूल बना देने की आशा करता।

जनसाधारण में प्रिय होने का स्वभाव वह ग्रहण नहीं कर सका इसलिए उसके त्रुटियों के अन्वेषण की ओर सभी का ध्यान लग गया। छिन्द्रान्वेषण यह मनुष्य जाति का प्रिय व्यवसाय है। अपने सिवाय दूसरे की त्रुटियाँ बहुत जल्दी ही निकाल ली जाती हैं। बल्कि जीवित मनुष्यों की चर्चा सम्पन्न का कार्य जन समाज इस दक्षतापूर्वक करता है कि उसके समक्ष समूचे उपन्यास का सम्पादन फीका पड़ जाता है। राजा ने किसी कारणवश ऐसे दीवान की खोज की है इसकी चिन्ता बहुत से लोगों को होने लगी। वीरसिंह और मधुसूदन सहपाठी हैं यह सीधी-सादी बात जानी हुई थी, परन्तु इतने से लोगों को सन्तोष न हुआ। ऐसे तो कितने ही लोग वीरसिंह के साथ पढ़ते थे। दोनों के बीच इतनी अधिक मित्रता का कारण क्या है इसे जाने बिना भाग्यवश ही किसी को चैन पड़ सके ऐसा था। वीरसिंह को मधुसूदन और उसके पिता की ओर से जो सहायता प्राप्त होती थी इतना कारण पर्याप्त हो ही नहीं सकता था।

मधुसूदन और उसके पिता को कोई जमीन अथवा जागीर भविष्य की आय के लिए लिखवा लिया होना चाहिये। ऐसा हो तो फिर मित्रता की दिखावट इतनी अधिक नहीं टिक सकती। यहाँ तो राजा वीरसिंह मधुसूदन के घर बहुत अधिक बार जाते थे, इतना ही नहीं, बल्कि मधुसूदन जब दीवान बन राजधानी में आया तब भी राजा साहब का आना जाना उनके घर चालू ही रहा। राजा जैसा पुरुष साधारण दीवान के घर क्यों दौड़ा करता है? इसी प्रश्न के साथ ही जन समाज की शोधन प्रवृत्ति फली भूत होती है। इस प्रश्न का उत्तर भी अपने आप मिल गया। शशिरेखा! दीवान पत्नी।

यही इस दीवान पद का कारण है। यही पुरानी मित्रता का कारण है। इसके सिवा एजेन्सी में इतना अधिक झंझट कर ऐसे विचित्र दीवान को कोई क्यों नियुक्त करता ?

वायरलेस के आविष्कार पश्चात् संकल्प विनिमय में सभी की श्रद्धा हो गयी है। एक मनुष्य के मनमें संकल्प उद्भव हो तो दूसरे मनुष्य के मन में भी वही संकल्प गूँजे ऐसा माननेवाले मनोविज्ञानवादी भी अभी उत्पन्न हुये हैं। इसलिए वीरसिंह और मधुसूदन के सम्बन्ध का मुख्य कारण जिसके मस्तिष्क में स्फुरित हुआ उसने यह विचार अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क में प्रेरा होगा ही। साधारणतः चर्चा चलाये बिना भी सबको सूचना मिल जाती है। बात की बात में समूचा राज्य जान गया। शशिरेखा और वीरसिंह के सम्बन्ध विषयक कवितायें और कहानियाँ लिखी जा सकें इतना अधिक साधन लोगों को प्राप्त हो गया।

एक दिन प्रातः मधुसूदन डाक में आये पत्रों को पढ़ रहा था। साधारण रीति से पत्र पढ़-पढ़कर वह टेबुल पर एक ओर रखता गया। किन्तु एक पत्र को वह उसी प्रकार शीघ्र गति से नहीं रख सका। उसने उस पत्र को पुनः पुनः पढ़ा उसका मुख गम्भीर हो उठा। पश्चात् कुछ ठहर कर वह मुस्कराया और शशिरेखा को बुलाया। कार्य में मधुसूदन यदि अधिक समय तक संलग्न रहता तो शशिरेखा स्वयं ही आ उसके कार्य में विघ्न डाला करती। पति के साथ बात चीत किये बिना एक घड़ी भी बीत जाय यह पत्नी को रुचिकर नहीं होता था। आज पति ही स्वयं इस शीघ्रता से बुला रहे हैं इस दुर्लभ लाभ के मिलने के कारण वह सभी कार्यों को छोड़ पति के पास दौड़ी चली आई।

"ओ, हां। आज बुलाने की कैसे छुट्टी मिल गई ?"

"नित्य तुम स्वयं आकर विघ्न डालती थी तो एक दिन मैं भी क्यों न तुम्हारे काम का हर्ज कराऊँ ?" पति ने परिहास किया।

"ठीक। आज जितना आप का मन हो काम का हर्ज करायें मैं

बोलूँगी ही नहीं। 'अब तुम जाओ' जब तक ऐसा न कहियेगा तब तक मैं यहाँ कि यहाँ ही बैठी रहूँगी।"

इतना कह आराम कुर्सी की बाँहवाली लकड़ी पर मधुसूदन से अटककर शशिरेखा बैठ गई। शशिरेखा के जांघों पर, बदन पर मधुसूदन ने हाथ रक्खा और फिर थोड़ा कुछ विचार में डूब उसने शशिरेखा के समक्ष देखा। निर्दोष हिरणी समान भीनी चमकवाली आँखें और पति के सामीप्य तथा स्पर्श से सम्पूर्ण तृप्ति पाती हुई शशिरेखा का मुख वह देखता रहा। उसके हृदय में उड़ी उड़ी सी एक कोने में जो शंका उत्पन्न हो गयी थी वह इस मुख दर्शन से स्वयं ही निवारण हो गयी और खिलखिलाकर हँसते हुए उसने उस पत्र को टेबुल पर फेंक दिया।

उसने दूसरा पत्र पढ़ा, तीसरा पढ़ा और फिर शशिरेखा के मुख की ओर देखा। उसके मुख की प्रसन्नता उड़ चुकी थी और उसके स्थान पर भारी विषाद की छाया फैल गयी थी।

"ऐसा क्यों?" पति के हृदय में प्रश्न उठा। मैंने तो कुछ कहा नहीं।

स्त्री, यह भोलेपन की मूर्ति सरीखी है। परन्तु उसका भोलापन दूसरे के विचारों को स्पष्टता पूर्वक पढ़ सकता है। मनुष्य स्वभाव का अत्यधिक ज्ञाता कहलानेवाला पुरुष भी दूसरे के विचारों का ज्ञान कर लेने में इतना अधिक सफल नहीं होता। पति के आँखों में जिस प्रकार वह प्रेम की परख कर सकती है उसी प्रकार पति के मुख पर के संशय को भी समझ सकती है। जिस सरलता से पुरुष मित्रों की निर्दोष मित्रता पहिचान सकती हैं वैसी ही सरलता पूर्वक वह किसी भी विकार दृष्टि को पहिचान सकती हैं, चाहे वह दृष्टि कितने ही यत्न पूर्वक सभ्यता से सजाई गई हो।

मधुसूदन ने भले ही एक शब्द नहीं कहा, तो भी उसकी आँखों में कुछ ही क्षणों के लिये अवतरित संशय और संशय द्वारा प्रेरित दृष्टि-पात शशिरेखा के सरल हृदय से परिचित हुए बिना नहीं रह सका।

"एक दम इस प्रकार उदास क्यों हो गयीं ?" पत्र पढ़ना छोड़ मधुसूदन ने पूछा।

"कुछ नहीं। परन्तु आप हमारी ओर टकटकी लगा क्या देख रहे थे ?"

"मैं तो अनेकों बार इसी प्रकार तुम्हें देखा करता हूँ। इसलिए कि तुम इतनी अधिक रूपवती हो। मैं तो क्या, बल्कि सभी लोग तुम्हारी ओर निर्निमेष दृष्टि से ताक कर देखते हैं। पति ने कारण बतलाया और साथ ही साथ हँसी भी किया। शशिरेखा को यह कारण सन्तोषप्रद नहीं मालूम हुआ। अवश्य ही मधुसूदन ने अनेकों बार उस पर आँखें गड़ाकर देखने के पश्चात् उसे लज्जित बना दिया था। परन्तु आज की दृष्टि में वह भाव था ही नहीं।

शशिरेखा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल निःश्वास छोड़ मुँह फेर लिया।

—::०::—

१२

चुगलखोर संसार

शशिरेखा के निःश्वास से मधुसूदन का हृदय विदीर्ण हुआ। उसे लगा कि कदाचित शशिरेखा रोयेगी। पत्र उसे दिखलाया जाय अथवा नहीं इसका क्षण भर में उसने निश्चय कर डाला। किसी स्वार्थी मनुष्य के बेवकूफी पूर्ण प्रयत्न पर किस कारण ध्यान दिया जाय और ध्यान देना ही हो तो भी पत्नी को बतलाने से लाभ क्या? लाभ हो या न हो, किन्तु शशिरेखा से कोई भी बात छिपाना उचित नहीं है, ऐसा मानकर उसने वह पत्र उसके हाथों में दे दिया और उसके कमर में हाथ डाल उसके सामने हँसते हुए चेहरे से देखता हुआ बैठा रहा।

शशिरेखा ने पत्र थोड़ा ही पढ़ा था कि इतने में उसकी आँखों के उमड़े आँसू गाल पर ढलकने लगे। मधुसूदन ने शशिरेखा को कुर्सी की बाँह पर से उठाकर अपने बगल में कुर्सी पर बैठा लिया और उसके हाथ से पत्र छीन दूर फेंक दिया।

"मैं जानता ही था। इसी कारण तुम्हें पत्र दिखलाने में आना कानी करता था। परन्तु इस पत्र को पढ़ने के साथ तुम्हें किस लिए रोना पड़ा?" थोड़ा हँसकर उसका आँसू पोंछते हुये मधुसूदन बोला।

"नहीं अब यहाँ नहीं रहना है। चलो लौट चलें ....!" शशिरेखा से आगे बोला नहीं गया।

"मैं दीवानगिरी से भर पाई। लोग इस प्रकार की चर्चा करें यह सहन नहीं होगा।"

"लोगों को जो अच्छा लगे बकें अपने को क्या?"

"हंह। मुझे तो यहाँ रहना ही नहीं है!"

"परन्तु हम यदि लोगों के कहने पर डरकर इस प्रकार भाग जायेंगे तो लोगों की शंका और अधिक दृढ़ होगी और हम जहाँ भी होंगे वहाँ वीरसिंह का आना हम कैसे रोक सकेंगे।

"उनसे मना कर दीजिये। स्पष्ट कह दीजिये कि आपके यहाँ अधिक आने से लोगों को शंका होती है। आपके वह मित्र हैं तो आप उनसे मिल आया कीजियेगा।"

"किन्तु वह तो तुम्हारे भी मित्र................।"

मधुर मुस्कान के साथ बात करते हुए मधुसूदन को रोक कर शशिरेखा बोली—

"मुझे तो आप के सिवा और कोई मित्र नहीं चाहिये। दिन भर में एक घंटा भी हमारे पास बैठियेगा तो मैं सन्तुष्ट रहूँगी। मैं काम से रोकूँगी नहीं।"

"तुम्हारे में तो चौबीसों घंटा रोक रखने की शक्ति है!"

पति ने क्रम क्रम बात बदलने का प्रयत्न किया और सचमुच बात बदल भी गई। परन्तु समूचे दिन शशिरेखा खिन्न रही। उसे बार बार पत्र का विचार आने लगा। जिसका स्वप्न में भी अपने को ध्यान नहीं होता वह लोगों की कल्पना में किस तरह आ सकता है? वीरसिंह और उसके पति की मैत्री बहुत पुरानी थी। वीरसिंह को राज्य मिलने की कल्पना भी सम्भव नहीं थी तब से यह मैत्री थी। मित्र-पत्नी के नाते उसका वीरसिंह के प्रति सद्भाव था। वीरसिंह राजा हुआ इससे उसे भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। राजा बनने पर भी वे अपने पुराने मित्र को भूले नहीं वरन् राजा होने से पहले जितना सरल और सादा व्यवहार था, वैसा ही सम्बन्ध बनाये रखने का वह प्रयत्न भी करते हैं। इसमें लोग कितने ही स्थल में बहुत कुछ आशंका कर सकते हैं? किस लिए शंका की कल्पना भी करें? समृद्धि व्यक्ति से मैत्री सम्बन्ध बना रहे इसमें संसार की क्या अनुकूलतायें छिन गईं? पुरुष मित्रों को अपनी अपनी पत्नियों को परस्पर की दृष्टि से दूर रखना ही चाहिये। किसलिए ऐसा करना

चाहिए ? तो फिर पुरानी घूंघट और पर्दा की प्रथा को चिता में भस्मीभूत ही समझना चाहिए। घूंघट और पर्दा के समक्ष संसार वालों की चर्चा क्या रुक जायेगी ?

विचार करते करते वह अधिक उत्तेजित हो गयी। दूसरे स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध की कल्पना इस संसार का अति प्राचीन मानसिक व्यापार है। दूसरे के प्रति उदार अनुमान करने की संसार की अशक्ति में समूची मनुष्य जाति के संस्कार शिथिलता का अनुभव करते हैं। संसार अधूरा है, उसे अपने ही नैतिक बल में श्रद्धा नहीं है। स्खलनों का तो उसे नित्य का अनुभव है, इस लिए प्रत्येक व्यवहार के प्रति उसकी वक्र दृष्टि ही रहती है, शीतल तेज पूर्ण चन्द्रमा में भी उसे लांछन मिल जाता है। इसी प्रकार तेज के अम्बार रूप सूर्य्य में भी धब्बा है कि नहीं इसका निश्चय करने के लिए वह दुरबीन निर्मित करता है। स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में दोष देखने की अभ्यासी संसार की आँखें उनके सम्बन्ध की ओर सर्वदा सजग रहती हैं। संसार ज्यों ज्यों ऊँचे की ओर अग्रसर होता जा रहा है त्यों त्यों उसकी दोष दृष्टि क्या निर्बल हो रही है ?

आज का संसार वहमी है और सबको वहमी बनाने का प्रयत्न करता है। उसका प्रयत्न सफलीभूत होता है। शंका का लाभ भी पाना मानव भूल जाता है। परन्तु इससे संसार में कितना विष फैल जाता है यह कौन कह सकेगा ? अनेक सुखी परिवार जल कर भस्मीभूत हो जाता है इसकी संसार को क्या परवाह है ?

शशिरेखा ने संसार का क्रम सरलता से समझ लिया। उसने निश्चय किया कि वीरसिंह के साथ वह अपना थोड़ा सा भी सम्बन्ध नहीं रक्खेगी और सुन्दरपुर से चले जाना ही उचित मार्ग है।

मधुसूदन पहले तो हँसा। अर्थहीन बकवास सामान। उसने कागजों को निकाला और ध्यान में न देने लायक तिरस्कार पूर्ण बात के रूप उसे भूल कर आफिस चला गया और अपने कार्य्य में लगा। जिस बात को भूलना

चाहो वह बात स्मरण शक्ति के किसी विचित्र नियम वश हो बारम्बार आँखों के सामने आया करती है। कचहरी के कागजों को पढ़ते वक्त वह पत्र स्मरण हो आया। कितनी विषभरी लिखावट थी? शशिरेखा जैसी पत्नी और वीरसिंह सरीखे मित्र के सम्बन्ध में आक्षेप लगा, इस पत्र के लिखने वाले ने कैसा विचित्र वातावरण उपस्थित कर दिया है? उसके स्थान पर कोई दूसरा वहमी पुरुष होता तो उसके जीवन में कितनी कटुता उत्पन्न होती? ऐसे विचार में निमग्न हो जाने पर पुनः सावधान हो अपने को इन विचारों से बचाता, पत्र का अपने ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ा ऐसा मानने की तत्परता में भी उस पत्र का प्रभाव उस पर दीखता था। थोड़ा क्रोधित हो वह कचहरी के अन्य कार्यों की ओर ध्यान देता। एक दो बे नाम के प्रार्थना-पत्र उसे पढ़ने में आये। राज्य के एक कर्मचारी के विरुद्ध यथा शक्य आरोप था। यदि ये सभी आरोप सत्य हों तो वह मनुष्य राज्य में रखने लायक नहीं है, इतना ही नहीं, वह संसार में भी रहने देने लायक नहीं है, ऐसा मानना पड़ेगा। साक्षी में प्रतिष्ठित जनों के नाम भी दिये थे। इन प्रतिष्ठितों ने इस बुरे कर्मचारीका शिकायत-पत्र लिख इसे नौकरी से पृथक कराने का प्रयत्न नहीं किया, और यह बिना नाम किसी ने इस पत्र में किस कारण से प्रार्थना की? बिना नामका प्रार्थना-पत्र अथवा चिट्ठी दुष्ट व्यक्ति स्वयं लिखता है अथवा लिखवा सकता है ऐसा उसने विचार किया। कीचड़ में ढेला डालने से छींटा उड़ेगा ही ऐसी धारणा से तैयार कराया गया प्रार्थना-पत्र और यह अर्जी उसको लान्छन लगवाने के कार्य्य में कुछ अंशों में फलीभूत भी होंगे।

वह यथावत् कार्य्य नहीं कर सका। वह महेश चन्द्र के दफ्तर में जाकर बैठ गया। वह राज्य सम्बन्धी बातें करने के लिये महेशचन्द्र के पास जाने में अपनी हीनता नहीं समझता था। वीरसिंह ने दोनों दीवान को कार्य्य-भार सौंपा था। दोनों का वेतन भी समान ही था और अपने अपने विभाग का अधिकार बराबर का ही था इन अधिकारों के ऊपर के कार्यों को राजा वीरसिंह दोनों दीवान की सम्मति से स्वयं करते थे। महेशचन्द्र की उम्र अधिक होने से मधुसूदन उनका सम्मान करते थे। महेशचन्द्रकी सर्वव्यापी मिठास,

व्यवहार कुशलता मधुसूदन के साथ व्यवहार में भी विद्यमान रहती।

मधुसूदन के आने की सूचना मिलते ही महेशचन्द्र खड़ा हो गया और आइये, आइये दीवान साहब ! कह कर उसने उनसे हाथ मिला खूब जोरों से हिलाया। देशी व्यक्तियों के हाथ मिलाने में विशेषतः अन्य देशों की रीत के दिखाव में देशी भावनाओं का अधिक प्रदर्शन नहीं हो सकता। जिस प्रमाण में भाव दर्शाना होता है उसी प्रमाण में हाथों को दबाकर हिलाने की आपस में छूट होती है।

"कहिये साहब कैसे कृपा की ?" महेशचन्द्र ने पूछा।

"कुछ नहीं। यों ही चला आया। आज कोई काम है नहीं।"

"देखिये अधिक परिश्रम आप करिये नहीं। मैंने सुना है कि विभाग को सुधारने के लिए रात दिन आप एक किये रहते हैं। थोड़ा बहुत विश्राम भी लेना चाहिए।"

"देशी रियासतों के कार्य्यों में सुधार हो सकेगा ऐसा तो मुझे अनुभव नहीं होता !"

"आपकी बात बहुत अंशों में सत्य है। परन्तु आप जानते हैं न कि-कर्मण्ये वाधिकारस्ते।" गीता का उदाहरण देते हुए महेशचन्द्र बोले।

"मैं यह नौकरी अधिक दिनों तक कर सकूँगा ऐसा मुझे नहीं लग रहा है।"

"ऐसा किसलिए ? राजा साहब ने आपको यहाँ लाने में कितना अधिक परिश्रम किया है, वह तो मैं आपको बतला ही चुका हूँ ?"

"वह अभी भूले हुए हैं। उन्हें मुझे लाने का आग्रह नहीं करना चाहता था, और मुझे भी यहाँ आना नहीं चाहता था।"

"परन्तु आपका ऐसा विचार होने का कारण क्या है ? मेरी ओर से या मेरे विभाग की ओर से आपके कार्य में अड़चन पड़ी हो तो आप मुझसे निःसंकोच होकर कहें। मैं तत्काल अनुकूल कर दूँगा।"

"नहीं, नहीं। आपकी तरफ से तो मुझे कोई भी अड़चन नहीं आती। परन्तु देखिए न मेरी और राजा साहब की मित्रता लोगों की आँखों में गड़ती है। जैसी चाहे वैसी बातें लोग करने को तैयार रहते हैं। मैं किसलिए इसे सहन करूँ?"

महेश चन्द्र की शान्त स्थिर आँखें थोड़ी चंचल हो उठीं। उन्होंने पहले तो कुछ उत्तर नहीं दिया। पश्चात् टेबुल के दराज से एक कागज निकाल कर मधुसूदन के हाथ में देते हुए कहा—

"यह पढ़िये। एजेन्सी में कोई शिकायत कर रहा है ऐसा मालूम होता है।"

मधुसूदन ने उस कागज को पढ़ा। वीरसिंह और मधुसूदन के मित्रता सम्बन्ध के बीच पवित्र शशिरेखा का नाम ला किसी योगी को भी क्रोध उत्पन्न हो जाय ऐसी घृणात्मक बातें उसमें लिखी थीं। इतना ही नहीं बल्कि एजेन्सी की ओर से यह पत्र पढ़ने और वास्तविकता की जानकारी प्राप्त करने के लिए वीरसिंह के दीवान महेशचन्द्र के पास भेजा गया था।

"राजा साहब को यह पत्र दिखलाया था?" मधुसूदन ने पत्र पढ़ कर पूछा।

"अवश्य, पोलिटिकल औफिस का कागज पढ़ाये बिना कार्य्य चल ही नहीं सकता!"

"फिर पत्र पढ़ कर राजा साहब ने क्या कहा?"

"वे क्या कहते? पढ़ कर उन्होंने जमीन पर पटक दिया, और ऊपर से एक लात मारी।"

"इस सम्बन्ध में हम राजा साहब से मिलें?"

"किस लिये? इसमें महत्व क्या है? यह तो यहाँ का आम रिवाज है। आज आपको ऐसा कहा। कल मेरे लिए कहेंगे कि यह घूस लेता है। इस विषय में तो अधिक विचार करना ही नहीं है।"

"नहीं। मैं तो इस सम्बन्ध में राजा साहब से मिलकर बात करना चाहता हूं। एजेन्सी को ऐसा पत्र किस कारण भेजना पड़ा?"

'आप की इच्छा हो तो मैं भी साथ चलूँ? परन्तु एक बात आपको बतलाऊँ। रियासत में नौकरी करनी हो तो टीका टिप्पणी से नहीं डरना चाहिए।"

"डरने का सवाल नहीं है। मुझे नौकरी की गरज हो तो सब कुछ टीका आदि सहन करूँ। परन्तु इस प्रकार से तो मैं सहन करने को तैयार नहीं हूँ।"

महेशचन्द्र हँसा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। कोई भी स्थिति उसकी प्रसन्नता में न्यूनता ला दे ऐसा वह था ही नहीं। उसी प्रकार कोई भी परिस्थिति उसमें घबड़ाहट उत्पन्न करे ऐसा भी न था। मधुसूदन का हाथ भाव पूर्वक पकड़े हुए वह दफ्तर से बाहर निकला। वहाँ खड़े दो घोड़ोंवाली सुन्दर गाड़ी में दोनों बैठे और राजमहल की ओर गाड़ी हकवा दी।

मधुसूदन का मुख व्यग्र था। महेशचन्द्र के मुख पर शान्त हास्य विद्यमान था।

१३

शिकार

सन्ध्या काल होने को आया, फिर भी मधुसूदन घर नहीं आए। कभी भी वे इतने विलम्ब तक घर के बाहर नहीं रहते थे। शशिरेखा कभी भी इतना नहीं घबड़ाती थी, परन्तु आज उसे बहुत अधिक व्यग्रता हुई। चिट्ठियों में पढ़े वाक्यों की भनक उसके मन में गूंज रही थी। वह किसी का आश्रय चाह रही थी। ऐसी स्थिति में एकान्त अधिक उदास हो पड़ता है। वह मधुसूदन की कब से प्रतीक्षा कर रही थी। प्रतीक्षा का समय अधिक लम्बा बन जाता है।

इतने में दोनों पुत्रियाँ रमा और वृन्दा दौड़ी दौड़ी घर में आयीं और चिल्ला उठीं—

"माँ, राजा साहब आये हैं !"

दोनों बालिकाओं से राजा साहब अधिक खिलवाड़ करते थे। वीरसिंह को नित्य मधुसूदन के यहाँ आये बिना चैन न पड़ता था। दोनों व्यक्ति आफिस में मिलते, राजमहल में भेंट होती अन्य स्थानों में हवाखोरी के लिए जाते, फिर भी सायंकाल एक दो घंटा मधुसूदन के यहाँ बैठे बिना राजासाहब को सन्तोष न मिलता। यह नवीनता सी सबको लगती। समूचे दिन साथ रहने पर भी फिर रात्रि समय घंटों दीवान के घर राजासाहब को बिताना पड़े यह क्या बात ? किस लिए ? किसके लिए ?

पृच्छक बिना प्रश्न किये नहीं रह सकते। वे उत्तर चाहते हैं, उत्तर न मिलने पर वे उसका आविष्कार करते हैं। उसी प्रकार इस प्रश्न का उत्तर भी उन लोगों ने ढूढ़ रक्खा था। नित्य तो शशिरेखा सम्मान पूर्वक राजा-साहब की अभ्यर्थना में तत्परता बरतती। आज उसने कोई उत्साह नहीं

दर्शाया, इतना ही नहीं—बल्कि अपनी उपेक्षा प्रदर्शित की। बालिकाओं के सन्देश का उत्तर दिया:—

"आने दो। मुझे उनसे क्या काम है? बैठाओ वहीं।"

इतना कह वह अन्दर चली गयी। राजासाहब पधारे हों और उनसे वह न मिली हो ऐसा कभी नहीं हुआ था। आज ही वैसा हुआ। शशिरेखा ने विचार किया—

मैं नित्य राजासाहब के समक्ष ही मिलती रही हूँ। इसी कारण लोग शंकित हैं। मुझे किस लिए ऐसा करना चाहिए? लोगों का अपराध भी क्या है? दूसरा कोई हो तो उसके प्रति मैं क्या धारणा बनाऊँगी?

इतने में राजा वीरसिंह और मधुसूदन बातें करते हुये घर के अन्दर आये। मधुसूदन साथ हैं यह सूचना शशिरेखा को न थी। यदि यह बात उसे मालूम होती तो कदाचित वह वीरसिंह से इस प्रकार अपना वर्ताव न करती। किन्तु एक बार इस प्रकार हो जाने के पश्चात् फिर मधुसूदन से मिलने के लिये बाहर आने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। मधुसूदन स्वयं उससे मिलने अन्दर आयेगा, ऐसी आशा कर वह अन्दर बैठी रही। कुछ ही समय बाद कमरे के बाहर पैरों की ध्वनि सुनाई दी और साथ ही वीरसिंह का स्वर सुनाई दिया:—

"क्यों, शशि बहन! अन्दर आ सकता हूँ क्या? आज किस कार्य्य में लिप्त हो?

किस प्रकार अब वह इन्कार कर सकती थी? वीरसिंह को समूचे घर में जाने का अधिकार बहुत वर्षों पूर्व से था।

"जी, आइये, मैं तो योंही बैठी हूं।"

मधुसूदन और वीरसिंह दोनों अन्दर आ कर दो कुर्सियों पर बैठ गये।

"मधुसूदन अब कल से मुझे इस घर में आने के लिए मना कर रहे हैं।" राजा वीरसिंह ने शशिरेखा के साथ बात प्रारम्भ की।

"मैंने.......लेकिन मैंने कब तुम्हें मना किया ?"

"तुम यहाँ से जाने को कह रहे हो इसका अर्थ यही है कि दूसरा ? क्यों शशि बहन बोली नहीं ?"

"मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता। परन्तु आप एक मानिन्द व्यक्ति हैं, इस कारण आपके यहाँ आने की अपेक्षा यदि यही आपके पास जाया करें तो अधिक उचित हो।" शशि रेखा ने उत्तर दिया।

"इस समय तुम सभी ने मुझे दुखी करने का निश्चय किया है, क्यों ? क्या मैं मधुसूदन का और तुम्हारा मित्र नहीं.......ऐसा ? राजा हुआ इसलिये हृदय को बेच डालूँ, यही न ? यह कम्बख्त राज्य कहाँ का मिला ?"

वीरसिंह को अत्यधिक दुःख हुआ हो ऐसा उनके शब्दों और मुँह के भाव से प्रगट हुआ।

"जो बात समाज को न रुचे वह अपने को न करना चाहिये। आप जैसे हमारे यहाँ आयें यह लोगों को नवीनता लगेगी ही ?" मधुरता से शशि रेखा ने उत्तर दिया।

"वीरसिंह राजा हुए इस कारण उनका अतीत समाप्त हो गया, क्यों ? मुझे लोगों की परवाह नहीं है, राजा की परवाह नहीं है, अपने आश्रय-दाता मित्र का घर मैं अपना मानूँ तो उसमें संसार का क्या ? मुझे जब तुम कह दोगी कि मत आओ तभी मैं नहीं आऊँगा। नहीं तो ऐसा कूड़ा में फेंकने लायक पत्रों का मुझे जरा भी डर नहीं है।"

शुद्ध हृदयवाले वीरसिंह को पत्रों से उत्पन्न स्थिति ने क्रुद्ध बना दिया था। एजेन्सीवाला पत्र एक दो दिन पहले मिल चुका था। महेशचन्द्र ने उसे राजासाहब के निजी-पत्र की गणना कर स्वयं ही जाकर उन्हें पढ़ाया। वीरसिंह के क्रोध की सीमा न रही। वह महेशचन्द्र पर चिल्ला उठे—

"किसलिए यह पत्र मेरे सामने लाये ? आपने फाड़कर फेंक क्यों नहीं दिया ?"

"राजा साहब ! यह एजेन्सी की ओर से आया है। मैं आपके समक्ष उपस्थित न करूँ ऐसा कैसे हो सकता है ? भविष्य में कुछ उत्तर देने की आवश्यकता पड़े उस समय......" थोड़ा सा भी बिना घबड़ाये हुये अनुभवी दीवान ने उत्तर दिया।

"क्या मुझे इस पत्र का उत्तर देना है ? मैं राजा हुआ, इसलिए एजेन्सी का शंकित-व्यक्ति हो गया ?"

"नहीं साहब, उन्होंने उत्तर माँगा ही नहीं है। उन्होंने तो केवल आपको सूचित करने मात्र के लिए यह पत्र भेजा है। इसका अर्थ इतना ही है कि ऐसी कुछ बातें लोगों में चला करती हैं। यदि इसमें कुछ सार हो तो आप सचेत होकर चलें। सार नहीं हो तो फिर कोई बात ही नहीं है।" बुद्धि का समुद्र आँखों से छलकाते हुए दीवान ने कहा। उसकी बुद्धि धर्म्म को भूल न जाय इसलिए उसने अपनी रुद्राक्ष की माला गले में ठीक प्रकार से कर ली।

वीरसिंह ने उस दीवान की ओर देखा। उन्हें क्या प्रतीत हुआ इसे तो उन्होंने कभी प्रगट नहीं किया, किन्तु दीवान की बोली में उन्हें कोई रहस्य प्रतीत हुआ।

"आप मधुसूदन बाबू को क्या यह पत्र पढ़ायेंगे ?" दीवान ने कुछ देर रुक कर पूछा।

"किसलिए ? उन्हें क्रोधित करने और स्वयं लज्जित होने को !"

"मैं तो यह समझता हूँ कि पत्र पढ़ाना उचित होगा। पश्चात् जैसी आपकी इच्छा।"

तुरन्त पत्र सम्बन्धी बात होशियारी पूर्वक समाप्त कर दूसरे कागजों को समझा राजा साहब से हस्ताक्षर करा कर महेशाचन्द्र चला गया। दूसरे दिन मधुसूदन स्वयं आकर अपने मिले हुए पत्र के बारे में बातें की इसलिए महेशाचन्द्र ने अपने ऊपर उत्तरदायित्व ले उस एजेन्सी वाले पत्र को उसे

दिखलाया। मधुसूदन अब वीरसिंह से ये सभी बातें कर इस बदनामी वाले प्रश्न का निराकरण करने के लिए व्याकुल हो रहा था।

किन्तु वीरसिंह के पास जाकर उसने जब इस पत्र सम्बन्धी बातें शुरू की तो वीरसिंह पुनः चिढ़ उठा।

"मुझे तुम्हारी बातें सुनना ही नहीं है। मुझे यह पत्र भी नहीं पढ़ना है। तुम्हें पत्र में लिखी बातें यदि सत्य प्रतीत होती हों तो मैं आज ही स्पेशल ट्रेन की व्यवस्था कर तुम्हें यहाँ से बिदा कर दूँ। किन्तु यदि इस बात को तुम असत्य समझते हो तो ऐसे पत्र लिखने वाले और लिखाने वाले दोनों झक मारते रहें।"

महेशचन्द्र ने एक क्षण में शीघ्रतापूर्वक आँखों को नचा कर फिर उसे स्थिर बना लिया। व्यग्र बना हुआ मधुसूदन अवाक् बन बैठा। वीरसिंह के बर्ताव में शंकित होने का कारण उसे कभी भी उपस्थित नहीं हुआ था। उसने पत्र में लिखी बातों को जरा भी सत्य नहीं समझा था। उसका मित्र और पत्नी दोनों विशुद्ध आचरण के हैं ऐसा उसका दृढ़ विश्वास था।

वीरसिंह ने आगे बात चलाते हुए कहा:—

"अच्छा! फिर भी हमें शशिबहन से पूछ लेना चाहिए। यदि वह यह कहें कि तुम्हें नौकरी छोड़ देना है तो फिर मैं तुमसे आग्रह नहीं करूँगा।"

"नौकरी छोड़ने के लिए कदाचित न कहें और आपको हमारे घर आना जाना कम करने के लिए कहें तब?" मधुसूदन ने बात न करने की इच्छा रहते हुए भी इतना कहा।

"हाँ। यह बात यथार्थ है। इसमें सभी की प्रतिष्ठा सुरक्षित रहेगी।" महेशचन्द्र ने सम्मति दी। महेशचन्द्र की सम्मति के प्रति अत्यन्त तिरस्कार युक्त दृष्टि से देखते हुए वीरसिंह ने कहा—

"ठीक! शशिबहन जैसी सम्मति देंगी वही करूँगा। रहा प्रतिष्ठा का प्रश्न यह तो किसी दुष्ट मस्तिष्क की उपज है।"

"सत्य बात है।" महेशचन्द्र ने मुँह के एक कोर से हँसते हुए कहा।

वीरसिंह, मधुसूदन और महेशचन्द्र इस प्रकार बातें कर रहे थे कि इतने में एक चपरासी ने आकर सूचना दी कि रूपाजी आया है।

'आने दो।" वीरसिंह ने कहा।

सफेद वस्त्रों में अपने शरीर के कालेपन को छिपाता हुआ एक भीमकाय-मानव ने प्रवेश किया। उसने वीरसिंह को फर्शी सलाम किया।

"क्या किया रूपाजी?"

"सब प्रबन्ध ठीक हो गया, सरकार। तीन चार शेरों की सूचना मिली है।"

"मचान कैसा है?"

"ठीक बंध गया है। मैडम बहुत आती हैं सरकार, यह ठीक नहीं होता।"

"इसका कोई इलाज नहीं है। साहबों के मुकाबले मैडमें शिकार के लिए अधिक उपद्रव करती हैं।"

"परन्तु इनको सम्हालना बहुत कठिन होता है। शेर को देखते ही कोई चीख उठती हैं, कोई बेहोश हो जाती हैं। इस कारण शिकार का मजा चला जाता है।"

"परन्तु इसके लिए किया क्या जा सकता है! एक दो डाक्टर अधिक लाऊँगा।"

रूपाजी नायक एक परिचित शिकारी भील था। शेर का शिकार उसके विचार से एक बिल्ली के मारने जैसी महत्वहीन बात थी। उसके विचित्र पोशाक में उसकी लम्बाई का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता था। परन्तु ध्यान पूर्वक देखनेवाला सहज ही उसे छः फुट जितना ऊँचा तो मान ही सकता था। उसकी उम्र तीस पैंतीस से कुछ अधिक नहीं लगती थी। आँखें बड़ी और सुर्ख थीं। काले रङ्ग के मुँह पर काली मूँछों का गम्भीर जाल उसकी

विकरालता में वृद्धि कर रहे थे। पूर्व ठाकुरों के समय में रूपाजी नायक का प्रभाव अत्यधिक था। वह चोरी करता, लुटेरों का भी वह नायक ही रहता था। मनुष्य-हत्या करते समय वह जरा भी नहीं हिचकिचाता था। अपने द्वारा किये गये खूनों का स्मरण उसे ब्योरे वार याद हो ऐसा था। एजेन्सी-वालों को भी वह नहीं डरता था। पास के पहाड़ियों के जंगल में उसका अड्डा था। इन जंगलों में उसे पकड़ना आसान नहीं था। बल्कि उसके द्वारा किये गये खूनों के स्मरण मात्र से ही सभी थरथरा उठते थे। जब वीरसिंह राजा हुए तब उन्होंने बहुतेरे अपराधियों को क्षमा प्रदान की थी। रूपानायक पकड़ाता नहीं था और उसका भय बढ़ता ही जाता था इसलिए चाहे किसी भी उपाय से उसके द्वारा उत्पन्न भय को कम करने की व्यवस्था आवश्यक थी। वीरसिंह ने क्षमायोजना का ध्येय स्वीकार कर लिया था और यदि रूपाजी नायक भी शरण में आयेगा तो उसे भी क्षमा मिलेगी यह घोषित किया। रूपाजी भी जंगली जीवन से कुछ ऊबा हुआ था। उसे एकान्त सुहा भी नहीं रहा था। उसके साथियों में बहुतों को क्षमा मिल चुकी थी, और वे रूपाजी का साथ छोड़कर जा चुके थे। इस कारण वह वीरसिंह के शरणागत हुआ। वीरसिंह ने उसे शिकारगाह का कार्य सौंपा। एजेन्सी के आफिसरों को शिकार का शौक होता है, और राजा तथा ठाकुर लोग इस शौक को पूरा कराने का कार्य्य पूर्ण कर्तव्य-निष्ठा से करते हैं। इसलिए रूपाजी को यह अनुकूल कार्य्य रुच गया और शिकारी के रूप में उसने ख्याति पायी।

कुछ यूरोपियन मेहमान शिकार के लिए आनेवाले थे उनके लिए तैयारी करने को रूपाजी को भेजा गया था। वह सभी व्यवस्था पूरी कर सूचित करने को उपस्थित हुआ था।

वीरसिंह ने मधुसूदन से कहा—"तुम भी यदि इस शिकार में चलो तो कैसा हो?"

"यह तुम्हारा हिरन शशक का शिकार मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"मैं तो ऐसा शिकार कभी करता ही नहीं।"

"यह तो साहब शेर का शिकार है?" रूपाजी बोला।

"मुझे तो शिकार करना आता ही नहीं, इसलिए मैं वहाँ बैठा बैठा देखा करूँगा।"

"तो तुम भी सीख लो।" वीरसिंह ने कहा।

"जी साहब, इसमें कुछ भी भयानक काम नहीं है। थोड़ा हाथ सधे और दिल साथ दे, बस इतना ही।" रूपाजी बोला।

प्रत्येक मनुष्य में अपनी ज्ञान वृद्धि करने की इच्छा रहा करती है। क्रिकेट, टेनिस का खेल, घुड़सवारी, बन्दूक की निशानेबाजी इत्यादि कलाओं को साध्य करने की तृष्णा प्रत्येक युवक में निहित रहती है और यदि अवसर मिले तो सीखने का प्रयत्न भी करता है। शिकार के साथ जीवट रहेगा ही ऐसी जन समाज की कल्पना है और बहादुर बनने और दिखावट के मोह को क्या कोई युवक निवारण कर सकता है? मधुसूदन का मन रूपाजी नायक से शिक्षा लेने का हुआ। उसने कहा—

"मैं रहूँगा तो तुमसे सीखूँगा।"

"साहब, पन्द्रह दिन में आपके हाथों शेर मारा जायेगा।" रूपाजी ने अपने शिकार शिक्षण की कला कुशलता में प्रवीण पूर्ण अहम् भाव से कहा।

वीरसिंह और मधुसूदन राज-महल से शशिरेखा से मिलने के लिए रवाना हुए। महेशचन्द्र अकेला रह गया। उसने रूपाजी को साथ में लिया। आनाकानी करता यह मशहूर डाकू महेशचन्द्र की नम्रता के वशीभूत हुआ और दीवान साहब के साथ गाड़ी में बैठने का उच्च सम्मान प्राप्त किया।

शशिरेखा का पत्र द्वारा उत्पन्न हुआ क्षोभ अभी शान्त नहीं हुआ था। वह वीरसिंह से साक्षात् करना नहीं चाहती थी, तथापि जब इस प्रकार वह स्वयं वहाँ आ पहुँचे तब उस समय उससे कोई अविवेक पूर्ण कार्य हो सके

ऐसा नहीं था। वीरसिंह उन्हीं बातों को करने के लिए आये थे। सत्य सत्य उन्होंने सम्पूर्ण घटना कह दी। मधुसूदन यदि दीवान पद छोड़ देंगे तो वह भी राज्य छोड़ देगें ऐसी स्नेह पूर्ण धमकी भी दी।

परन्तु स्त्रियों को झूठा आरोप सहन नहीं होता। एजेन्सी तक शिकायत भेजी गई यह नई बात सुन उसका निश्चय और दृढ़ हुआ। स्त्री हृदय की बनावट ही ऐसी है कि जो वे स्वमान की रक्षा हेतु उठ जाँय तो चिता और खञ्जर से भी नहीं डरतीं। मर्य्यादा के ध्यान से यदि वे हठ जाँय तो उन सरीखी बेशरम दिखावट की कल्पना करना भी कठिन है। दूध और दही में पैर रख सके ऐसा स्वतन्त्र पुरुष संसार को ठग सकता है।

शशिरेखा ने बहुत अधिक मधुर बन दीवान पद से मधुसूदन को पृथक कराने का निश्चय प्रगट किया। संसार की दोष दृष्टि से सचेत हुई, वीरसिंह के अत्यन्त दीनता दिखलाने पर भी उसने नौकरी के लिए इन्कार कर दिया। मधुसूदन का भी अनुमोदन था। वीरसिंह को अनुभव हुआ कि राज्यों का वातावरण विष पूर्ण होता है। लोगों के अशिक्षित होने के कारण उनपर उदारता पूर्ण प्रयोग हो नहीं सकता।

"मैं नहीं समझता था कि तुम लोग बदनामी से इतना अधिक भयभीत हो जाओगे।" वीरसिंह ने कहा।

"आप जैसा चाहें वैसा कहें मेरी ओर कोई उँगली उठाये यह मुझसे सहन नहीं होता।" शशिरेखा ने कहा।

"इसीलिये मुझे अब तुम्हारे इस घर में पैर नहीं रखना है ?"

"ऐसा किसलिए ? परन्तु यदि ये यहाँ स्वतन्त्र व्यापार करें, उस समय लोग कहें तो मैं उसकी परवाह न करूँगी !"

"तब भी मेरी एक प्रार्थना है। तीन महीने के बाद मुझे महाराज की पदवी मिलेगी, उस अवसर तक तुम लोगों को यहीं रहना पड़ेगा।" वीरसिंह ने कहा। इस आग्रह को पति-पत्नी दोनों अस्वीकार न कर सके।

दूसरे दिन प्रातः ही रूपाजी एक बन्दूक लेकर उपस्थित हो गया। मधुसूदन तो इस बात को भूल ही गया था। परन्तु दीवान साहब को गोली चलाना सिखाने वाला शिक्षक होने के मान का लोभी रूपाजी कैसे भूल सकता था? शशिरेखा को मालूम हुआ। उसने भी सम्मति दी। शस्त्र सज्जित पति को देखकर कितनी ही पत्नियों को घबड़ाहट नहीं होती।

एक दिन में मधुसूदन का हाथ सध गया है ऐसा रूपाजी ने बतलाया। एक पेड़ के तने पर खड़िये से गोल निशान बना उसकी ओर दृष्टि जमाने का अभ्यास प्रथम शुरू हुआ। पहले तो बंदूक कैसे पकड़ना चाहिए यह भी साधारण सा ही मधुसूदन को आता था। किन्तु साधारण समझ वाले मनुष्य को बन्दूक चलाना बहुत जल्दी आ जाता है। चार पाँच दिन में निश्चित लक्ष्य पर गोली चलाना आ गया। ज्यों ज्यों मधुसूदन को निशाना लगाने आने लगा त्यों त्यों रूपाजी लक्ष्य का निशान दूर और कठिन बनाता गया। सात दिन बाद रूपाजी ने कहा—

'साहब, उस सुर्खाब को तो मारिये। जो वहाँ ऊँची डाल पर बैठी है।"

मधुसूदन चमक उठा। दीवाल, पेड़, लकड़ी इन सभी पर गोली चलाने का उसका अभ्यास हो चुका था। परन्तु सुर्खाब जैसे प्राणधारी पर उसने कभी गोली नहीं चलाई थी और उसे चलाना होगा ऐसी भी कभी धारणा नहीं बनाई थी।

"नहीं नहीं। वह बेचारा पक्षी तो मुझसे न मारा जायेगा!" मधुसूदन ने उत्तर दिया।

'यह तो साहब आदत डालनी ही होगी। उड़ते हुए पक्षियों का शिकार जब तक न कर लेंगे तब तक शेर के शिकार की हिम्मत नहीं हो सकती।"

अहिंसक वातावरण में पला संस्कारी युवक का हृदय सुर्खाब का शिकार करने के पहले काँपने लगा।

"उसे कुछ कष्ट नहीं होने का है। गोली लगी कि साफ। तड़पेगा भी नहीं।" रूपाजी ने साहस बढ़ाया। दया का विचार सुर्खाब के शिकार में निरर्थक है, ऐसी रूपाजी की मान्यता थी।

मधुसूदन का हाथ चला नहीं। उसे विचार उत्पन्न हुआ कि यदि शिकार करना हो तो बाल्य काल से ही पशुपक्षी के वध की आदत डालना चाहिए। उसने इन्कार कर दिया।

"आज नहीं। कल फिर देखूँगा।"

"मारिये नहीं। परन्तु निशाना तो बाँधिये........हाँ। इस प्रकार जब पक्षी उड़े तो उसके उड़ने की ओर साहब, साहब! घोड़ा दबाइये।" रूपाजी चिल्लाया।

पक्षी पेड़ के सिरे से उड़ा। बन्दूक की आवाज हुई और स्वच्छ विस्तीर्ण आकाश में एक दो बार पंखों को फटक अग्रसर होता बैंत में समा जाय ऐसा गतिमान दाग सरीखा वह आकाश पट पर से अदृश्य हुआ।

"शाबाश!" रूपाजी चिल्ला उठा।

पक्षी को वाचा नहीं है यदि वाचा है तो उसकी मनुष्यों को जानकारी नहीं है। हृदय-भाव को पढ़ लेनेवाला मानव पक्षी के शिकार के समय भूल जाता है कि भाव प्रदर्शन की पक्षियों में भी रीति होती है।

"साहब, ऐसा साफ निशाना बहुत थोड़ों का होता है। सुर्खाब दिखलाऊँ?" रूपाजी ने पूछा।

सुर्खाब क्या? छिन्न भिन्न हुआ जमीन पर पड़ा कलेवर अथवा कल्लोल पूर्वक पंखों को हवा पर नचाता पक्षी!

सुर्खाब को देखने से मधुसूदन ने इन्कार किया। उसने बन्दूक जमीन पर रख दी। उसे हाथ में अधिक बोझ लगा। शेर के शिकार के अभ्यास के लिए पहले पक्षियों का शिकार करना या नहीं इसी उलझन में पड़े अहिंसा प्रिय स्वभाव को रूपाजी के खूनी स्वभाव ने एक क्षण के लिए

विरोध न किया। मधुसूदन का शिकार के लिए घमंड एक क्षण के लिए जीत गया और उसकी अहिंसा वृत्ति की खिंचान को उसने क्षण मात्र के लिये शून्य बना दिया।

यही अहिंसा वृत्ति कुछ क्षण पश्चात् पुनः जागृत हुई। परन्तु अब क्या? पक्षी तो मरा न? उसने क्या अपराध किया था? उसे मारने का मनुष्य को क्या अधिकार था? शौक अथवा शिक्षा के लिए पशु पक्षी का शिकार करने वाले मनुष्य अन्य प्राणियों के वैसे ही शौक अथवा शिक्षण को स्वीकार क्यों नहीं करते। किस कारण वे शेर, बाघ इत्यादि वन पशुओं को जंगली हिंसक इत्यादि विशेषणों से परिचित कराते हैं? पशु-पक्षियों की भाषा में मनुष्यों वाले से भी अधिक कठोर विशेषण नहीं मिलता होगा?

"साहब शुरू शुरू ऐसा ही लगता है, फिर कुछ नहीं। अधिक दया अच्छी नहीं।" रूपाजी ने शिक्षा दिया। मधुसूदन ने मन में पराङ्गत होने वाला उत्साह लाने का प्रयत्न किया। उसे शिकार करना आ गया। कार्य-दक्ष होने का घमंड कम होता है? उसने बाघ और सिंह के शिकार के सम्बन्ध की बहुत सी बातें पूछी और स्वयं अब शेर के शिकार के लिए तैयार है यह भी जाहिर किया। रूपाजी को सभी व्यवस्था जल्दी ही पूर्ण करने के लिए कहा। शिक्षण के लिए आयी भिन्न भिन्न प्रकार की बन्दूकों की बनावट वह खोज खोज कर देखने लगा। उसका वजन देखा। कितनी ही साफ़ थीं। इसमें की बन्दूकों को हाथ में ले निशाना लगाने का दिखाव किया। जमीन पर बैठे बैठे, उसी प्रकार खड़े होकर, एक आँख बन्द कर बन्दूक रखने की पद्धति समझ लिया। विनाश की वृष्टि करता यह अग्नियास्त्र मानों सुन्दर खिलौना अथवा आभूषण हो उस भाव से उस पर हाथ फिराया।

किन्तु वह उड़ता सुर्खाब और एक क्षण पश्चात् का स्वच्छ आकाश उसकी कल्पना में बार बार आने लगा।

"आज क्यों मुँह उदास लगता है?" शस्त्रों के साथ खूब उधेड़ बुन करते हुए मधुसूदन से शशिरेखा ने पूछा।

"कुछ भी नही ! तुम्हारी दृष्टि ही कुछ ऐसी है। मैं तो शेर के शिकार की तैयारी कर रहा हूँ।" उसने उत्साह ला उत्तर दिया।

"मार चुके शेर। एक चींटी तो मरती नहीं।" शशिरेखा ने हँसी की। उसे मालूम नहीं था कि आज सुबह ही मधुसूदन ने चींटी से कहीं बड़े प्राणी का शिकार करना प्रारम्भ कर दिया है। उसकी सूचना अभिमान पूर्वक देने को प्रस्तुत होते ही उसका हृदय धड़का। वह शान्त रहा। उसके मुख पर पुनः खिन्नता आयी। उसे छिपाने के लिए उसने कहा—

"देखना। अभी दो चार दिन में ही शेर का शिकार करूँगा।"

"नहीं जी नहीं! ऐसे जोखिम में मत पड़ियेगा। ऐसी बात करियेगा तो घर के बाहर नहीं जाने दूँगी।" मधुसूदन की निश्चयात्मक बात सुन घबड़ा कर शशिरेखा ने कहा।

सुर्खाब के घोंसले से बाहर निकलते समय उसकी मादा ने कुछ कहा होगा? शशिरेखा ने विरोध किया, क्या इसी प्रकार सुर्खाब की पत्नी ने भी विरोध नहीं किया होगा? स्वाभाविक हँसी हँस, भ्रमित मधुसूदन ने बात बदल दी।

— ::०::—

१४

वनराज

शेर के शिकार के लिए मधुसूदन ने दो तीन बार तैयारी की। परन्तु शशिरेखा इस व्यवस्था को हमेशा अस्त व्यस्त कर देती थी। घर रहकर चाहे जितना अभ्यास किया जाय, परन्तु वन, जंगल में जा शेर का सामना करनेवाली जोखिम उठाने से शशिरेखा ने साफ इन्कार कर दिया। कुछ दिनों तक तो शशिरेखा की जिद मान्य रही। परन्तु जिसने बन्दूक हाथ में पकड़ ली, जिसने एक पक्षी मार भी डाला है, उसकी प्रवृत्ति फिर हाथ में नहीं रहती। एक बार रक्त का स्वाद चख लेनेवाले हिंसक प्राणी का मानस जिस प्रकार परिवर्तन पाता है, उसी प्रकार एक बार जानवर मारनेवाले का हाथ यहाँ से ही नहीं रुकता। स्वजाति मनुष्य का बध करनेवाले को संसार खूनी कह फाँसी के टिकठी पर झुलाता है, पर परजाति के पक्षी को मार कर हँसनेवाले को संसार बहादुर गिन शिकारी की सम्मानयुक्त पदवी प्रदान करता है और सफलता की विजय के साथ घमंड बढ़ता जाता है। शेर का शिकार किये बिना अब उसे जरा भी चैन नहीं पड़ने को है ऐसा मधुसूदन को निश्चित हुआ। शशिरेखा के अनजान में ही उसने शिकार का कार्य-क्रम रूपाजी के साथ निश्चित किया।

मैं समूचे जंगल का हाल जाननेवाला भील हूँ। दूसरों की तरह आपको हाँका करनेवालों की आवश्यकता नहीं है! पोखरी के स्थान में शेर रहता है। पास ही पेड़ पर मचान तैयार है ही। केवल एक बकरा बँधवा दूँगा और आप दोपहर तक पहुँच जायेंगे। किसी से कहने की जरूरत नहीं है।

उपरोक्त सलाह रूपाजी ने दी। वीरसिंह और महेशचन्द्र समीप के

राज्य में विवाह समारोह में सम्मिलित होने गये हुए थे, उसी समय गाँव में काम होने का बहाना बना उत्साही मधुसूदन अपने प्रथम बड़े शिकार के लिये रूपाजी के साथ जंगल में निकल गये।

शिकारी के रूप में मधुसूदन ने पहली बार भयानक जंगल देखा। पोशाक और शस्त्र कितने अंशों में—अधिक अंशों में यदि कहा जाय तो ठीक होगा—मनुष्य को संस्कार देता है। खाकी रेशमी चुस्त वस्त्र ने मधुसूदन को उत्साहित किया। हाथी का कुंभस्थल एक ही गोली में छेद डाले ऐसी आधुनिकतम बन्दूकों ने उसे ढाढ़स दिया, यदि शेरों की टोली आज सामने आ जाय तो वह भी केवल एक बन्दूक लेकर उनके समक्ष खड़ा रह सके ऐसा है। जंगल में बहुत से छोटे-छोटे टीले बने थे। कितने ही स्थलों पर मनुष्य कद की ऊँची घास तथा झंखाड़ उगकर मार्ग अवरोध कर रहे थे। कितनी जगहों पर घने बड़े-बड़े वृक्ष तपते हुये सूर्य के प्रकाश को सन्ध्या काल के निढ़ाल सूर्य्य का भान करा रहे थे। पहले तो समूचा जंगल उस समय शान्त लगा। समाधिस्थमुनि की शान्ति प्रभावकारी लगती है उसी प्रकार जंगल की शान्ति का भी प्रभाव पड़ता मालूम हुआ। उसने रूपाजी के साथ बातें प्रारम्भ की। एक क्षण को उसे विचार उत्पन्न हुआ कि यदि वह स्वयं अकेले पड़ जाय तो भय लगेगा कि नहीं। उसने इस विचार को मन से हटा दिया। उसने एक कदम आगे बढ़ाया था कि रूपाजी ने उसका हाथ पकड़ पीछे को खींच लिया। सहज ही आगे की घास में रूपाजी ने बन्दूक का कुन्दा जोर से मारा।

मधुसूदन थोड़ा चौंक गया। अकेला होता तो अधिक चौंकता ऐसा उसे अनुभव हुआ। भय यह अकेलेपन का लक्षण है। दो व्यक्तियों में भी भय उत्पन्न हो जाता है। उसने पूछा—

"क्या है रूपाजी ?"

"कुछ नहीं वह तो साँप था।"

"फिर क्या किया ?"

"समाप्त कर दिया। आपका पैर उस पर पड़ता।"

ध्यान से मधुसूदन ने उस ओर देखा जहाँ रूपाजी ने बन्दूक से आघात किया था। आगे ही एक मोटा काला चमकता घसीटाता बलखाते हुए साँप पर उसकी नजर पड़ी। घास में उसका आधा अंग छिपा हुआ था और आधा दीख रहा था। भयानक सर्प की पूँछ मृत्यु समक्ष तड़प रही थी। उसका पैर यदि एक क्षण पहले इस हलाहल विषधर के जीते जागते पड़ा होता तो? तो सर्प के स्थान पर वह स्वयं उसी प्रकार छटपटाता होता।

"मुझे क्यों नहीं दिखलायी पड़ा?" मधुसूदन ने आश्चर्य से पूछा।

"आँख सधते सधते सधेगी। जंगलों के बनचरों की इसीलिए जरूरत है।"

शान्त और बस्ती रहित जंगल उसे भयङ्कर प्राणियों से भरा हुआ लगा। निर्दोष बाधा रहित पृथ्वी के प्रत्येक स्थल पर मुँह बाये बैठे हुए सर्पों की एक सेना उसकी कल्पना में खड़ी हुई दिखलायी दी।

"ऐसी जोखिम तो यहाँ बहुत ही होगी?" उसने रूपाजी से पूछा।

"हाँ साहब, जंगल में तो ये जानवर ही बसते हैं न!" क्रूर गिने जाने वाले रूपाजी ने भी जंगल में ऐसे प्राणियों के बसने का अधिकार स्वीकार किया। बन की वनावली काट वहाँ शहर की सृष्टि रच बसने वाली मानव-जाति के प्रति ये जलते और मरते प्राणी क्या भावना और धारणा बनाते होंगे? नीति-शास्त्रों की रचयिता यह जाति वैसे प्राणियों को सुघरी दीखती होगी? मानव के सिवाय दूसरे किसी भी जीव में अभिप्राय सिद्ध करने की बुद्धि नहीं है। ऐसा सिद्धान्त स्वीकार कर मनुष्य जाति इस चिन्ता से मुक्त हो गई है। इसलिये इस विषय पर अधिक विचार हो ही नहीं सकता।

"तो फिर यहाँ आने में तो सचमुच बहुत ही खतरा है!" मधुसूदन ने अपना अभिप्राय प्रगट किया।

"ऐसा तो कोई ख़तरा नहीं है। विना छेड़े कोई भी जानवर यथा सम्भव हमला नहीं करता।" रूपाजी ने प्राणी स्वभाव का वर्णन किया। छेड़ने के

बिना किसी का अहित करवाने का स्वभाव मानवों में अवश्य विकसित हुआ है।

"परन्तु ऐसे ही जानवर यहाँ निश्चय पूर्वक हैं। क्यों?" कदाचित शेर का विचार आने से मधुसूदन ने यह प्रश्न किया।

"जितने चाहिए उतने। देखिए साहब, उस पेड़ की डाल पर चन्दन धो बैठी है।" (एक गिरगिट के समान जानवर)।

मधुसूदन ने निकट वाले पेड़ के ऊपर नजर डाली। रूपाजी ने जहाँ संकेत किया था वहाँ तो गहरे हरे रंग के घने पत्ते और भूरे रंग की डालियों के सिवाय कुछ दिखाई नहीं पड़ा। सर-सर करती हुई हवा से हिलते पत्ते और डालियों के सिवा वहाँ कुछ नहीं होगा ऐसा ज्ञान वह नहीं कहने जा रहा था।

"मुझे तो कुछ भी दिखाई नहीं देता।" मधुसूदन ने उत्तर दिया।

रूपाजी ने एक पत्थर हाथ में लिया, और पूरे जोर से उस वृक्ष पर मारा। 'टिक्' सरीखी आवाज के साथ कोई भारी वस्तु नीचे गिरी।

"देखा साहब, जानवरों का जमीन और वृक्षों जैसा रंग होता है। इसलिये जिन्हें परख नहीं होती उन्हें दिखलायी नहीं पड़ते।" रूपाजी ने समझाया। जानवर जमीन और पेड़ पौधों जैसी जड़ वस्तुओं का भी रंग ग्रहण कर लेते हैं। क्या मनुष्य पर भी संगत का रंग चढ़ जाता है? फिलासफर और धर्म प्रचारक ही उत्तर दे सकते हैं। यही दोनों मनुष्यों में से किसी को भी तंग करने के विचार की धारणा भी न करती चंदन धो डालियों पर झूलती और कुलाचें भरती। मानव की घातकी दृष्टि में पड़ते ही वृक्ष की छत्र-छाया छोड़ कर भूमि पर ढल पड़ी—नहीं, भूमि पर तो केवल उसका रङ्गीन शरीर मात्र ही गिरा। वह कहाँ गई? कौन जाने। विषैले कहलाने वाले जानवरों को भी आश्रय देती जंगल की जो आत्मा है उसने चन्दन धो के प्राण को भी अवश्य आश्रय दिया होगा। शिकारी अपनी बेधन शक्ति पर आकर्षित हुआ! कितना सुन्दर रूपाजी का लक्ष्य भेद था।

बिना कारण प्राण लेने वाले मनुष्य की कल्पनाओं को कुरूप राक्षसी कहा है। धर्म्म की ध्वजा धारण करने वाला, न्याय की तुला को सम-प्रमाण में रखने वाला और स्वयं को भाँति भाँति के गुणों का भण्डार समझने वाला मनुष्य, अन्य प्राणियों की दृष्टि में राक्षस सदृश्य दृष्टिगोचर होता है कि नहीं? निःसन्देह अन्य प्राणियों की दृष्टि मनुष्य को राक्षस मानती है, ऐसा ऐतिहासिकों अथवा वैज्ञानिकों ने लिखकर सिद्ध नहीं किया है।

"देखिये साहब, वह घास हिल रही है। समझ में आता है?" रूपाजी ने आगे बढ़ मधुसूदन को शिक्षा देना शुरू किया।

शेर के शिकार के लिये आये हुए मधुसूदन को इस हिलते हुए घास में शेर की कल्पना हो आयी। उसे अपनी इस निर्बल मनोवृत्ति पर क्षोभ हुआ। शेर का भय प्रगट न करते हुए उसने कहा—

"मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता। हवा से घास हिल रही होगी।"

"नहीं। हवा से हिलने वाली का ढङ्ग दूसरा ही होता है, और इस प्रकार हिलने का ढङ्ग दूसरा। वहाँ खरगोश छिपे हैं। इनके ऐसी डरपोंक जाति दूसरी नहीं। किसी के पैर की आहट हुई कि ये भागोभाग मचा देते हैं।

मधुसूदन तेजी से आगे बढ़ा। रूपाजी खरगोशों को भी इस समय मार डालेगा ऐसा उनको प्रतीत हुआ। निकट में एक छोटा सा गड़हा था। उसको पार करते ही कुछ दूरी पर एक छोटा सा कुत्ता सरीखा जीव तीव्र गति से दौड़ कर भागते हुए मधुसूदन ने देखा।

"यह तो सियार है न?" उसने पूछा।

"जी।"

"कैसे कैसे जानवर जंगल में दिखलायी पड़ते हैं।"

"इस बात को तो पूछिये नहीं! जंगल जानवरों से भरा हुआ है। जहाँ देखिए वहाँ ही कोई न कोई अवश्य होगा।"

सूनसान दिखलायी पड़ते हुए जंगल में इतनी अधिक न दीखती जानवरों

की बस्ती। लेकिन सभी हिंसक। कौन किसी की रक्षा करता होगा? जीवन संरक्षण की कैसी कैसी योजनायें जंगल में चलती होगी?

इस पोखरी में उतरने के पश्चात् अपना निर्धारित स्थान आ जायेगा। रूपाजी ने बतलाया।

"वहाँ शेर बैठा होगा?"

"नहीं नहीं! शेर ऐसे नहीं आता। अभी उसे बाहर निकलने में विलम्ब है।" थोड़ा हँस कर रूपाजी ने कहा। मधुसूदन के अज्ञान पर वह हँसा न होगा?

"मान लो वह एकदम अपने सामने आ जाये तो?"

"शेर कभी इस प्रकार सामने नहीं आता। आयेगा तो बगल से आयेगा।"

"तो मालूम कैसे होता है?"

"मेरी आँख चारो ओर है न? आप जरा भी डरें नहीं। शेर की ताकत नहीं कि मेरी दृष्टि में पड़ने पर वह जीता बच जाय।" रूपाजी ने हिम्मत दिलायी।

"मैं डर नहीं रहा हूँ। मैं तो केवल पूछ रहा हूँ।"

पोखरी पार करते ही सामने दूर से ही एक बड़ा सा दूहा दिखलायी पड़ा। वृक्षों का झुण्ड बिखरा सा दिखलायी पड़ा। एक झुण्ड पर मचान बँधा था।

"यहाँ ही साहब लोगों के शिकार की व्यवस्था की गयी है।" रूपाजी ने बताया।

मचान पर मधुसूदन और रूपाजी चढ़े। बैठने के लिए जमीन के मुक़ाबले मचान पर अधिक सुरक्षित स्थान मिलने से थोड़ा आनन्द हुआ। उसे ऊब होने लगी थी, वह अब यथा स्थान आ जाने से समाप्त हो गई। शेर का शिकार कर वीरत्व का परिचय अपने को ही मिलने पर वह प्रसन्न हुआ। उसने रूपाजी से पूछा—

"शेर कब आयेगा ?"

"अभी थोड़ा विलम्ब है। गर्मी कम होगी तब आयेगा। शेर तो राजवंशी जानवर कहा जाता है। उससे गर्मी सहन नहीं होती।" रूपाजी ने अपना ज्ञान प्रगट किया—"जानवरों में भी ऊँचा नीचा वर्ग होता है।"

"कहाँ से आयेगा ?" थोड़ी देर रुककर उसने पूछा।

"यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतनी दूर में वह रहता है यह निश्चित है।"

समीप के पेड़ में एक बकरा बँधा हुआ था। पत्तियों और घास को चरते हुए वह में-में कर रहा था। कोई भी जानवर जंगल में अनजान नहीं मालूम होता। बकरा जैसे अपने निवास स्थान पर ही है इस प्रकार निर्भयता पूर्वक वह चर रहा था। केवल उसका बन्धन उसे कष्ट दे रहा था। चरते चरते उसकी डोरी खिंच जाती थी तब उसे ध्यान होता कि वह स्वतन्त्र नहीं है। जंगल में भी वह स्वतन्त्र नहीं रक्खा गया।

कुछ देर बाद रूपाजी ने कहा—

"आप थोड़ा सावधान रहियेगा। मैं तो आपको सचेत करूंगा ही परन्तु शेर पहले बकरे पर झपटेगा। बकरे पर ज्योंही आक्रमण करे तुरन्त गोली मारियेगा।"

शेर और बकरी एक घाट पानी पीयें यही मानव राज्य के शासन का आदर्श है। आदर्श यानी कल्पनाओं द्वारा निर्मित सुन्दर चित्र। सुशोभित चित्र दीवान खाने की शोभा वृद्धि के लिए दीवालों पर लटकाये जाते हैं। उसे जीवित मनुष्य की तरह घुमाया फिराया नहीं जाता। मानव को कितने ही अधिक आदर्शों को अभी सिद्ध करना बाकी है। अभी तक तो वह शेर और बकरे दोनों को मारने के कार्य्य में संलग्न है। उसे पानी पीने की भी फ़ुरसत नहीं है। एक साथ उसे लाने की बात फिर हो ही कैसे सकती है ?

"देखिए साहब, कहीं दिखाई दे रहा है ?" बहुत ही धीमी आवाज़ में रूपाजी ने कहा और टेकरी की नोंक की ओर उंगली से संकेत किया।

मधुसूदन के शरीर में कँपकँपी की एक लहर नाच उठी। उसका हृदय धड़क उठा। खुला शेर उसने पहली ही बार देखा था। ढूहे के ऊँचे सिरे पर पिछले दोनों पैर को मोड़ अगले पैरों को लम्बा, गर्दन ऊँची कर रोब से बैठा वह वनराज अपनी इच्छानुसार नीचे के प्रदेशों पर दृष्टि डाल रहा था। दृष्टि जहाँ तक जा सके वहाँ तक मानों उसका अपना ही राज्य है ऐसी स्वाभाविक मुद्रा प्रगट हो रही थी। एक शाहंशाह अपने महल को जिस प्रकार साधारणतः देखता है, उसी प्रकार उसने अपने दोनों ओर देखा और उसकी सत्ता में कोई किसी प्रकार का दखल दे सके ऐसा कोई नहीं है इसका सन्तोष कर लिया।

कहाँ से इतनी जल्दी, इस प्रकार एकाएक टेकरी पर शेर आ बैठा यह मधुसूदन की समझ में नहीं आया। वह शेर के आने की बाट देख रहा था। तथापि वह आया, इसे मधुसूदन देख नहीं सके। ढूहे के पत्थरों से बिना किसी आवाज के वह फोड़ कर उत्पन्न हो गया हो ऐसा उसे जान पड़ा। उसे थोड़ी सी कँपकँपी हो शान्त हो गयी। रूपाजी समीप ही था। लेकिन वह स्वयं भी कुशल निशानेबाज है यह उसे स्मरण हो आया। शेर के शिकार के लिए वह आया है यह उसकी कुछ क्षणों के लिए विस्मरण हुई स्मृति ताजी हो गयी। उत्साह पूर्वक वह शेर को निहारने लगा। एक छत्र-पति को भी लज्जित करे ऐसे गौरव और आत्मविश्वास पूर्वक बैठा हुआ वह शेर उसे सचमुच ही एक चक्रवर्ती सरीखा प्रतापी मालूम हुआ। यह यथार्थतः राजवंशी ही है। निश्चय ही, यह जो वनराज कहा जाता है उसके योग्य है ऐसे विचार उसके मन में आने लगे।

पेड़ के निकट चरता हुआ बकरा चरना बन्द कर क्षण भर खड़ा रहा। एकाएक वह काँपने लगा। गले में से उसके जैसे आवाज निकल ही न सकती हो ऐसी स्पष्ट "मैं" की एक आवाज उसके मुँह से निकली और उसके पैर एकाएक टूट गये हों इस प्रकार वह जमीन पर ढंगल पड़ा। अपना मुंह भी उसने पैरों के बीच डाल दिया। मरने की तैयारी उससे आप ही आप हो गयी।

शेर बकरे की हल्की चीख सुन बैठे ही बैठे मुख उस ओर घुमाया। जैसे किसी की परवाह न हो इस प्रकार उसने अपना भरावदार मुख एक क्षण के लिए उसी ओर रहने दिया और दिन में भी अंगारे सरीखी चमकती तेज आँखों को सहज ही बन्द किया। पीछे लम्बी पड़ी पूंछ को सहज ही उचकाया और पूर्ववत् वह जैसी की तैसी हो गयी।

"अब देखियेगा।" रूपाजी ने कहा। मधुसूदन ध्यानपूर्वक देख रहा था। बकरे की कँपकँपी देख जन्म भर से संचित की हुई अनुकम्पा एकदम उमड़ आयी।

यह शिकार? जीव को इतना कष्ट? उसके हृदय में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ।

शेर को वह ध्यानपूर्वक देख रहा था। मानो शेर को जैसे कोई उतावली न हो ऐसी वह थोड़ी भी चंचलता प्रगट नहीं कर रहा था। वह शेर एकाएक कब खड़ा हो गया इसको मधुसूदन ने नहीं देखा। टेकरी ऊपर खड़े हुए वनराज को देखते ही मानो पीला झलझलाता चमकता मखमल का परिधान पहन कोई समरांगण शूर महाराज खड़ा हो ऐसा उसे प्रतीत हुआ। पृथ्वी पर पूँछ को उसने स्वभावतः पटका और गम्भीर गति से रोब के साथ वह नीचे की ओर उतरने लगा। वज्र के नह और लोह खंड का पंजा होने पर भी मानों ऊन में पैर पड़ रहे हों ऐसा, जरा भी आवाज नहीं हुई। टीले की एक ओर से छिप कर उतरते हुए बीच रास्ते में वह खड़ा हो गया। भरे दरबार में राजा के प्रताप से असाधारण शान्ति प्रसारित हो रही हो, मर्य्यादा को अनजान में भंग करने वाला राजा की दृष्टि से बाहर नहीं रहता। भयानक वन में वनराज के समक्ष दृष्टि मिला देखने वाला बेअदब जीव खड़ा रहे तो वह उसकी दृष्टि से बच नहीं सकता। तिरस्कार पूर्वक उसने रूपाजी और मधुसूदन की ओर जहाँ वे खड़े थे, उस पेड़ की ओर देखा उसे लगा कि वह तुच्छ प्राणी एक थप्पड़ में जमीन सूंघने लगे ऐसे हैं। उनकी ओर ध्यान देने की तिलमात्र भी आवश्यकता नहीं है अपने सामर्थ्य में पूर्ण विश्वास रखने वाले शूरवीर को किंचित मात्र भी भय नहीं लगा।

किन्तु शेर अभी मनुष्यों को पहचानते नहीं। उनके अलावा बहुत अधिक जंगली पशुओं को इन लोगों ने पृथ्वी से खसोट कर नेस्त नाबूद कर डाला है, उनका अवशेष भी नहीं रहा। मनुष्य, निर्बल-मनुष्य बुद्धि-योग से सभी पशुओं को वश में करता है। बुद्धि याने सभी को ठगने की शक्ति ऐसी उसकी व्याख्या हो सकती है या नहीं ? शेर को खबर न थी कि मनुष्यों की बुद्धि ने ऐसे शस्त्रों का निर्माण कर लिया है कि यदि उनका पूर्ण प्रयोग करने में आये तो उनकी जाति भी दूसरे पशुओं के समान ही देखते देखते समाप्त हो जाय।

शेर उतरने लगा। उसके शरीर में थोड़ी सी भी स्थूलता न थी। स्नायुओं से सर्जित शरीर सहज ही दुर्बलता का भास कराता था। पतली कमर, आगे की ओर विशाल बनता जाता वक्ष-स्थल, स्फूर्ति का अम्बार सरीखा उसका शरीर! उसके मुख से सम्पूर्ण सामर्थ्य व्यक्त हो रहाथा।

वह नीचे उतर गया। बकरे की ओर दृष्टि डाल वह थोड़ा जमीन के साथ चिपका।

"अब ध्यान रखियेगा। यह अब उछल कर बकरे पर हमला करेगा।" रूपाजी ने सावधान किया।

अनेको पीढ़ियों का अहिंसा संस्कार मधुसूदन में जागृत हो उठा। उसे शेर का शिकार करना है। भयानक प्राणी का बध करने का खिलवाड़ मात्र करना था, किस कारण से बकरे को मरने दिया जाय ? इसका अपराध क्या है ? अपना शौक पूरा करने के लिए बकरे को मृत्यु की लम्बी क्षणों का अनुभव करने के बाद मरने देना और उस मरते हुए प्राणी के ऊपर बैठा केवल मात्र अपना वीरत्व, ऊपर झूमता, शेर को भूलकर उसे यंत्र से बींध डालना मानव वीरता है ? बुद्धि की आड़ में छिप, रक्षित स्थान से घात करना, इसी का नाम वीरता है ? तीव्रता के साथ उसके मस्तिष्क में विचार आये। विचार में गति होती है कितने ही क्षणों में विचार की गति कालातीत बन जाती है।

बिजली की गति सा कुछ उछला। उसी क्षण अनुकम्पा और वीरत्व के

विचार से तीक्ष्ण बन गया मधुसूदन का मस्तिष्क उसकी दृष्टि में सचेतता आई। शेर की छलांग के साथ ही उसने गोली मारी।

"बहुत बड़ी गलती की। सम्हलिये।" रूपाजी चिल्ला उठा।

बकरे पर इस वेग से छलांग मारते हुये शेर को अनधारी दिशा से चोट हुई। इस कारण छलांग की नाप ठीक न बैठने से सहज ही दूर गिरा। बकरा थोड़ी दूर रह गया। किन्तु उसे वह छोड़ कर गिरने के साथ ही एक बार गुर्राया। आँख झपक कर खुलने के समय के अन्दर ही वह तो जहाँ मधुसूदन खड़ा था वहाँ मचान पर आ पहुँचा। शिकारी की तीव्र चंचलता मधुसूदन में जाग्रत हो उठी उसने करालकाल सरीखे शेर को एक छड़ी जितना दूर देखा। अंगारे समान दहकती दो आँखे, पूरे गुर्राहट के साथ मिश्रित चित्कार, और मृत्यु के मूर्ति समान विकराल मुख उसके समक्ष दिखाई पड़ा अन्तिम समय आ गया है ऐसी उसे अनुभूति हुई। बन्दूक उठा उसका निशाना लगाने जितना समय उसके पास न था, इतना पर्याप्त स्थान भी न था। सुर्खाब एकाएक उसकी दृष्टि समक्ष खड़ा हो आया। एक क्षण, आधी क्षण में मरते मरते कितना विचार, कितनी इच्छायें और कितना स्फुरण हो आते हैं इसका उसे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। गोली की गति से मरते हुए सुर्खाब को भी एक के लाखवें भाग में एक लाख विचार उत्पन्न हो सकते हैं, ऐसा उसे लगा।

शेर ने वज्रमयी पंजा उचकाया। मधुसूदन को लगा कि वह स्वयं फिसल गया है। अन्तिम समय का आवेश उसमें उत्पन्न हो आया। अचानक वह मृत्यु समक्ष हो गया। बन्दूक उठा पूरे बल-पूर्वक कुन्दा शेर पर मारा। शेर की मचान वाली पकड़ छूट पड़ी। किन्तु शेर ने कुन्दा पकड़ रक्खा। उससे अथवा पीछे की ओर किसी ने धक्का मारा उससे शेर, मधुसूदन और बन्दूक तीनों नीचे भूमि सात् हुये।

उड़ते सुर्खाब के अदृश्य होने वाला दृश्य अनुपम रंगों से सजाया मधुसूदन के हृदय में गिरते समय चित्रित हो रहा था और उसकी चेतना या उसकी

आत्मा शून्य में समा गई। मधुसूदन का शरीर या शव हिले डुले बिना भूमि पर पड़ रही। कुछक्षण पश्चात् शेर हिलने लगा। हिलने के साथ ही वह उठ खड़ा हुआ उसे बगल में गोली लगी थी। वह इस तरह लगी थी कि उसकी तत्काल मृत्यु न हुई। दो चार क्षणों की आयु बढ़ी, वह अपने घातक से बदला अन्तिम श्वाँस तक ले सके तहाँ तक उसने लिया। मनुष्य को उसने नीचे पृथ्वी पर पड़े हुये देखा। पर वह बकरा अभी मुँह ऊँचा उठा नहीं सका था। दोनों को शेर ने देखा और उन्हें उसी प्रकार रहने दिया। मृत्यु का क्षण शेर को भी अनुभव हुआ। प्रत्यक्ष में सभीके देखते हुये मरनेमें उस वनराजको संकोच का अनुभव हुआ। सहज ही घसीटता हुआ वह निकट की झाड़ी में घुस गया। झाड़ी में किसी भारी वस्तु के गिरने की आवाज हुई।

"शेर मर गया।" रूपाजी थोड़ा गम्भीर होकर बोला।

जंगल का शाहंशाह सदैव के लिये अमीरी तरीके से ढके परदे आड़ में सो गया—सदा के लिए। स्वयं मर गया है अथवा नहीं इसका मानों निश्चय कर रहा हो इस प्रकार मुँह सहज ही ऊँचा उठाकर वह बकरा क्षीण स्वर में बोला........में........।"

वहाँ कोई था नहीं। रूपाजी भी अदृश्य हो गया था।

१५

अदृश्य मधुसूदन

पहले दिन किसी को कुछ खबर न हुई। सभी लोग जानते थे कि वे गाँव गये हैं। निःसन्देह वे दो दिन में वापस लौट आने वाले थे, इसलिए उनका कागज-पत्र छावनी पर ही जाता। गाँव में पहले दिन लोगों ने समझा कि साहब अन्दर से बाहर निकले ही नहीं हैं। उन्हीं कुछ थोड़े से व्यक्तियों को जो गाँव के निकट से होकर जंगल में जाते थे खबर थी कि रूपाजी और दीवान साहब शिकार करने के लिए गये हुये हैं। शिकार की बात छिपा कर रखनी थी, इसी कारण किसी ने इसकी अधिक चर्चा नहीं की। रूपाजी के जंगल के ज्ञान और शिकार की दक्षता में लोगों को इतना अधिक विश्वास था कि उसके साथ गये व्यक्ति की रक्षा के लिए कोई शंका भी कर सके ऐसा न था।

रात हो गई तब गाँव के लोगों को थोड़ी चिन्ता होने लगी। मशालों सहित जंगल के मार्गों पर जंगली भेजे गये परन्तु कोई लौटा नहीं। दूसरे दिन सुबह भी दोनों व्यक्तियों की बहुत देर तक प्रतीक्षा की गई। कोई लौटा नहीं इसलिये लोग टोली बांध-बांध जंगल में गये। चिट्ठी आदि लेकर आया चपरासी छावनी दफ्तर में सब कुछ रख सुन्दरपुर लौट गया। शिकार के लिए गये दीवान साहब को खोजने के लिये लोग जंगल-जंगल भटक रहे हैं, ऐसा उसने बतलाया। बात की बात में समूचे नगर में बात फैल गई। शशिरेखा ने भी सुना। वह अधमरी हो गई। जिस कार्य्य के लिए उसने मना किया था उसे ही मधुसूदन ने प्रथम किया, अब क्या होगा? क्या हुआ होगा?

उसने इधर-उधर के मनुष्यों को गाँव भेजा। क्षण-क्षण उसकी व्यग्रता बढ़ती गई। वीरसिंह नहीं थे, महेशचन्द्र भी नहीं थे। किससे सब बातें कही जायँ?

उसने वीरसिंह को तत्काल सूचना भेजी कि मधुसूदन शिकारगाह से लापता हो गये हैं। उसका हृदय तड़प तड़प कर रह जाता था। जब उसने यह खबर सुनी तब से उसने अन्न जल और निद्रा त्याग दिया। दूसरे दिन रात्रि में समाचार आया कि जंगल में किसी का भी पता नहीं लगता है एक मरा हुआ शेर झाड़ी में पड़ा था और मचान खाली था. केवल वहाँ एक बँधा हुआ बकरा घास चर रहा था।

इससे क्या समझा जाय ? उसकी घबड़ाहट बहुत बढ़ गई। उनका मन शोकातुर हो उठा, उसके आँसू भी उसके दुःख को कम न कर सके। कुछ समझती कुछ न समझाती हुई निर्दोष बालिकायें रमा और वृन्दा पिता सम्बन्धी समाचार बार बार पूछा करतीं। उनका भी दुःख अधिक बढ़ जायेगा इसलिए अस्पष्ट उत्तर देने के सिवाय वह दूसरा और क्या करें ? कदाचित् निराश्रय बनती जाती बालिकाओं की ओर देख निराधार बनी हुई माता उत्तर में केवल आँसू बहाती। आँसू सम्भावित है। एक को रोता देख दूसरे को भी रोने की प्रेरणा होती है। बालिकायें सामने रोतीं।

समाचार पाते वीरसिंह का ही होशहवाश गायब हो गया। विवाह की महफिल छोड़ वे एकदम वापस लौट आये, रास्ते में वे महेशचन्द्र से बार बार मधुसूदन सम्बन्धी बातें पूछ रहे थे। महेशचन्द्र भी कुछ नहीं जानता था इस कारण क्या उत्तर दे ? केवल मात्र मुख गम्भीर कर, रुद्राक्ष की माला को वक्त बे वक्त ठीक कर वह सामान्य आश्वासन के निश्चित वाक्यों को बीच बीच में कहता जाता था।

"क्या हुआ होगा ? समाचार सत्य था ?" वीरसिंह प्रश्न करते।।

"यह तो वहाँ पहुँचने पर ही मालूम होगा।"

"किसी को साथ लेकर गया कि अकेले ?"

"यदि रूपाजी को साथ लिया होगा तो कोई डर नहीं है। हाँ यदि अकेले शिकार को गये होंगे तो प्रभु भला करें!"

'उसने बन्दूक चलाने का थोड़ा अभ्यास कर लिया था। परन्तु इस प्रकार

एकाएक बिना कुछ अनुभव के वह क्यों निकल पड़ा ? शिकार कई बार देखा हो, तभी अनुभव होता है !"

"जवानी का जोश है न, राजा साहब !"

कुछ देर रुकने के पश्चात् फिर वह पूछते—"क्या समाचार सुनने को मिलेगा ? कौन जाने ?"

"सरकार इस प्रकार घबड़ाने से क्या होगा पूज्य दयारामजी कह गये हैं—'चित्त तू किसकी चिन्ता करता है, भगवान् को जो करना है, वह करे ?" अपनी धार्मिक प्रवृत्ति, प्रभु पर श्रद्धा और आगे के पूज्य शब्द का प्रयोग कर, दयाराम कवि के प्रति पूज्य भाव और ममता प्रगट करते हुए महेशचन्द्र ने सान्त्वना दी।

नगर में पहुँचते ही राजासाहब महल में न जा प्रथम शशिरेखा के यहाँ गये। शशिरेखा के प्रति पक्षपात, उससे सम्बन्धित लोक चर्चा, ये सभी बातें राजमहल में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। राजमहल इन लोक चर्चाओं और लोक वार्ताओं का केन्द्र स्थान था। वहाँ सूचना न मिले ऐसा कभी प्रगट हुआ ही नहीं। वीरसिंह की रानियों ने वीरसिंह की समवेदना के प्रति तीव्र विरोध प्रगट किया। उनके सांसारिक जीवन की निर्बल अवस्था में जागृति आ गयी थी। ज्यों ज्यों राजमहल के वातावरण में उस क्लेश का अधिक दर्शन होने लगा त्यों त्यों वह मधुसूदन के घर अधिक समय बिताने लगा। इस स्थिति का दो तीन मास में अन्त आने वाला है ऐसा जान राजमहल में थोड़ी शान्ति हो गई थी।

आज आने के साथ ही राजासाहब शशिरेखा के पास गये यह बात राज महल में तत्काल पहुँच गई। रानियों ने अपना महत्व घटता जा रहा है इसके प्रतिक्रिया स्वरूप विरोध प्रदर्शन की योजना तैयार की, इस योजना में कुछ कमी रह गई हो तो उसे पूरी करने को अपने दासियों की सम्मति भी ली। दासियों ने सम्मति दे विरोध प्रदर्शन को पूर्ण रूपेण प्रभावकारी बना दिया। वीरसिंह के आने की प्रतिक्षा करती दोनों रानियाँ कुपित मुख बैठीं।

वीरसिंह को देखते ही शशिरेखा फूट पड़ी। वीरसिंह ने सान्त्वना दी किन्तु उनका हृदय धड़क रहा था।

"तुम जरा भी घबड़ाओ नहीं।"

"रूपाजी भी साथ में हैं इसलिए कोई भी कष्ट नहीं होगा।" महेशचन्द्र ने धीरज बँधाया।

"रूपाजी का भी तो पता नहीं है?" शशिरेखा ने रोते हुए कहा।

"मैं अभी तुरन्त जा रहा हूँ। समूचा जंगल मेरा छाना हुआ है। जंगलियों द्वारा खोज कराऊँगा और जंगल के चारो ओर के आस पास के गाँवों में भी मैं सवार दौड़ाता हूँ। वह मिले बिना रहेगा नहीं।"

आश्वासन निरर्थक होने पर भी घाव पर फूँक के समान मधुर लगता है। आश्वासन दे वीरसिंह तुरन्त उठ खड़े हुए और महेशचन्द्र को साथ लेकर राजमहल में गये। महेशचन्द्र को आज्ञा दी कि तुरन्त घोड़ा और घुड़सवारों को तैयार करायें।

"अभी प्रस्थान करना है?" महेशचन्द्र ने पूछा।

"हाँ अभी। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"परन्तु आप क्यों कष्ट उठा रहे हैं? आदमी क्या कम हैं?"

"नहीं नहीं मैं स्वयं जाऊँगा! आप तुरन्त तैयारी करायें।"

"रास्ते में रात हो जायेगी!"

'रात का भय मुझे रोकने वाला नहीं है।"

वीरसिंह अभी मधुसूदन की खोज में चले जानेवाले हैं, यह सूचना अन्तःपुर में उसी क्षण पहुँच गयी। समाचार में बिजली की गति थी, वायरलेस और तार का युग तो पहिले से जाना हुआ है। नये अन्वेषण से समाचार की गति में यथार्थ परिवर्तन हुआ है क्या यह विचारणीय विषय नहीं है?

रानियों से मिलने की वीरसिंह को कुछ खास इच्छा न थी। मधुसूदन-

को जाते ही खोज निकालने के कार्य में चित्त लिप्त था। फिर भी गृहस्थ का कर्तव्य निबाहने को वे रानियों के पास गये।

राजा और रानी परस्पर किस प्रकार वार्ता करते हैं यह बहुतों को जानने की जिज्ञासा होती है। पुराने जमाने की उनकी बातचीत तो प्रचलित कण्ठस्थ कहानियों से सहज ही ज्ञात होती है। परन्तु नये युगके राजा रानियों की कथायें अभी लिखी नहीं गई हैं, इसलिए उसे जानने का भाग्यवश ही अवसर मिल पाता है।

दोनों को लोक दृष्टि बहुत ही उच्च और उनमें अदृश्य भूमिकायें विराजती हैं, दूसरी कल्पना करती हैं। परन्तु वे मनुष्य होते हैं तब मनुष्य की भूमिका में ही उनकी बात चीत का स्तर हो आता हो तो कुछ नवीनता नहीं है।

रानी के मुख पर अभ्यर्थना के भाव न थे। राजा और रानी यह प्रजा का साक्षेप शब्द है, परस्पर का नहीं। प्रजा के मन राजा, रानी के मन तो मात्र पति।

"मैं अभी जाने वाला हूँ।"

"अभी तक तो बाहर ही गये हुए थे न!" लोक कल्पना को लज्जित करते हुए रानी ने उत्तर दिया।

"परन्तु आप जानती हैं कि मधुसूदन का पता नहीं है?"

"जी हाँ।"

"फिर आप लोगों ने कुछ किया या नहीं?"

"हम लोगों को क्या करना था?"

"शशिरेखा के पास आप लोग नहीं गईं?"

"नहीं। हमें वहाँ जाकर क्या करना है? आप तो जाने वाले हैं न?"

वीरसिंह क्रोधित हो उठे। उन्हें लगा कि यह रानी कहलाती सभी स्त्रियाँ बात करने के योग्य नहीं हैं। पैर पटक कर वह वहाँ से उठ कर दूसरे रनिवास

में पहुँचे। दूसरी रानी भी इस समय यदि चपेट में पड़ जाँय तो पति से लड़ने को प्रस्तुत थीं। एक दो दासियाँ उनकी क्रोध भाजन बन चुकीं थीं।

"मैं जा रहा हूँ। समझा ?"

"बहुत ठीक। पधारिये !"

"सुन चुकी हो न ?"

"क्या ?"

"मधुसूदन लापता हो गये हैं !"

"यह तो समूचा नगर जानता है।"

"फिर, मुझे तो उनकी खोज करना है न ?"

"आपके सिवा और कोई खोज करनेवाला होगा भी नही ! क्यों ?"

"मुझे तो स्वयं पता लगाना चाहिए न ?"

"लगाया पता ! शेर-वेर के मुँह में पड़ गया होगा तो आप क्या कर लेंगे ?"

मधुसूदन का उपकार एक क्षण के लिए भी न भूलने वाला वीरसिंह क्रोधित हो उठा।

"तुम्हें मालूम है कि यदि वह न होता तो मैं राजा नहीं हो सकता था ?

"यह तो भाग्य की बात है, परन्तु आप स्वयं जाकर भी क्या करेंगे ?"

"शशिरेखा के मन को सान्त्वना मिलेगी। उसका तो पति गया, यह भी सोचा ?"

"आप हैं न ?"

टेबुल पर एक छोटी घड़ी रखी थी। वीरसिंह ने अपना सन्तुलन खोकर घड़ी को हाथ में उठा लिया और दाँत कटकटाया। स्त्री के ऊपर हाथ उठाने वाले सरीखा नीच कोई भी नहीं है यह बात सत्य है। परन्तु कितने ही समय

में मशीन के समान उठा हुआ हाथ वापस लौटाना यह महान आत्मसंतुलन का कार्य है। स्त्री सौन्दर्य्य और माधुर्य्य की मूर्ति कितने ही अवसरों पर जीभ से अग्नि वाणों की वर्षा करती हैं, उससे हाथ उठ जाता है। स्त्रियों को मारनेवाले जंगली मूर्ख पुरुषों के कार्य्य पर सहानुभूति उत्पन्न होती है और कितने ही अवसरों पर उनका अनुकरण करने के लिये प्रेरित हो उठते हैं। ईश्वर पति-पत्नी के झगड़े से बचावें।

रानी को लगा कि घड़ी की चोट उसके खुले घूँघट को और खोल देगी। झट उसने घूंघट को तान लिया। कष्ट सहन करने के लिये शरीर प्रस्तुत नहीं होता। कष्ट से बचने के लिये वह स्वाभाविक प्रयत्न करता ही है। घूंघट को तान मुँह फेर कर बैठ जाने वाली रानी पीठ पर किसी आघात की आशा से पीठ को नचाती हुई बैठी रही।

एक क्षण में ही महान कार्य्य सम्पन्न हो जाता है। क्षण बीतने के पश्चात् उसकी महत्ता रह भी नहीं सकती। एक क्षण बीतने के बाद, कभी न अनुभव हुआ संस्कार कभी पूरा हुआ हो ऐसा ज्ञात नहीं हुआ। टेबुल पर घड़ी टक टक टक करती जा रही थी। रानी ने घूंघट से ही भय को देखने की हिम्मत की। घूंघट दृष्टि को बहुत-बहुत सी अनुकूलतायें देता है। रानी की दृष्टि में कुछ दिखलायी नहीं दिया। उसने घूंघट खोला और अपने चारो ओर देखा।

राजा वीरसिंह कमरे में नहीं थे।

रानी को कुछ भी अधिक बतलाये बिना वे लौट गये। रानियाँ वीरसिंह से प्रेम करती थीं। उनके संस्कारों में कमी थी। तो भी वीरसिंह को उनसे जितना संभव होता सुख देने का प्रयत्न करती थीं। परन्तु जब से शशिरेखा सम्बन्धी बात चली थी तब से उनके हृदय में क्षोभ व्याप्त गया था। बल्कि गुम नाम पत्र लिखने वालों ने रानियों को भी पत्र लिखा था। अन्तः वीरसिंह इस प्रकार चले गये इससे दोनों रानियाँ थोड़ी खिन्न तो हुईं, किन्तु आस पास घूमती सम्मति दाता दासियों ने खिन्नता छुड़ा दी। शशिरेखा के प्रति वीरसिंह के सहानुभूति की बारम्बार उनके आगे चर्चा कर कि उनका कार्य्य

यथार्थ और योग्य है उन्हें सान्त्वना दी।

रात ही रात वीरसिंह जंगल में पहुँच गये। निकट वाले इधर उधर के गाँव के लोगों को तैयार कर मशाल जला वे जंगल में फिरने लगे। खोहों में, चोटियों पर वे स्वयं जाते और खोजते। शेर की गरज और सियार का रोदन इस धूमधक्कड़ से अधिक बढ़ा। जंगल के शान्ति में कोई अकस्मात् बाधा आ पड़ी हो ऐसा वहाँ के वासी वनचरों को लगा। निशिचर भी ऐसे उपद्रव के आदी न थे। मनुष्यों के द्वारा प्रज्वलित अग्नि की चिनगारियों और हुँकारों से वे डरे। वनराज सिंह भी अपनी चमकती हुई आँखों को संकुचित बना खोह के अन्दर अधिक गहराई में जा बैठे।

मधुसूदन का पता नहीं लगा। प्रातः काल से पुनः वीरसिंह ने जंगल खोजना आरम्भ किया। कदाचित सूर्य्य का प्रकाश उनको अधिक सहायता दे। उन्होंने बार बार ध्यान पूर्वक मचानवाले स्थान का निरीक्षण किया बँधे बकरे को जिन लोगों ने देखा था उनसे प्रश्नों की झड़ी लगा दी। परन्तु किसी से सन्तोष जनक उत्तर नहीं मिला। मरे हुए शेर के शव की परीक्षा की। उसे एक गोली लगी थी और उसके मुँह तथा छाती ऊपर किसी भारी वस्तु की मार पड़ी हो ऐसे घाव को भी उन्होंने देखा। शेर मारा गया था। उसको मारने वाला गया कहाँ? शेर के पंजों में खून नहीं लगा था, शेर के जबड़ों में भी कहीं खून नहीं लगा था। फिर दोनों बन्दूकधारी कहाँ अदृश्य हो गये?

रूपाजी अनुभवी शिकारी था। स्वयं मर जाय परन्तु दूसरे का घात हो जाय ऐसा सम्भव न था। क्या तिलस्मात हुआ होगा? कदाचित शेर ने शेरनी के पीछे आकर उन पर हमला तो नहीं कर दिया? मनुष्य के घसीटे जाने का कोई चिन्ह दिखलायी नहीं पड़ता।

इतने में कुछ मनुष्यों ने आकर सूचना दी कि गाँव से पास किसी मृत मनुष्य की लाश पड़ी है। व्यग्रता पूर्वक वीरसिंह दौड़े पड़े। चार पाँच दिन से सड़ता गलता हुआ शव पहिचाना जा सके ऐसा नहीं रह गया था। उसके

शरीर पर किसी किसी जगह चोथे माँस के बड़े छोटे घाव दिखाई पड़ रहे थे। पोशाक अथवा शरीर किसी से पहिचान किया जा सके ऐसा न था।

"यही मधुसूदन हैं" किसी ने बतलाया।

मधुसूदन की कल्पना में डूबे हुए वीरसिंह को उस मनुष्य की बात सत्य प्रतीत हुई। निराशा में वे विचार मग्न हो उठे! उनकी आँखों से आँसू भी भी नहीं गिरा, वे जमीन पर बैठ गये। थकावट और दुःख से वे एकाएक अचेत हो ढल पड़े।

—::o::—

१६

पति वियोगिनी

अचेतना से राजा वीरसिंह सचेत हुए और उन्होंने पहली आज्ञा यही दी कि "रूपाजी का वध कर डालो।" कारण रूपाजी ने मधुसूदन की रक्षा का प्रयत्न नहीं किया। परन्तु रूपाजी हैं कहाँ? उसका तो पता लगता ही नहीं। ऐसा महेशचन्द्र के सूचित करने पर उनको भान हुआ कि वे अपने महल में सोये हुए हैं।

"शशिरेखा कहाँ है?" उन्होंने दूसरा प्रश्न किया और वह बिछौने पर उठ कर बैठ गये।

"राजा साहब! आप की तबीयत अच्छी नहीं है। मन पर भारी बोझ है इसलिए आप सो रहें। डाक्टर साहब ने बात करने की मनाही की है।" महेशचन्द्र ने समझाया।

"डाक्टर साहब जहन्नुम में गये। शशिरेखा कहाँ है?" अधिक आवेश से वीरसिंह ने पूछा। दोनों रानियों ने एक दूसरे से दृष्टि मिलायी।

"वह तो दो दिन हुआ यहाँ से चली गयीं।" दीवान महेशचन्द्र ने उत्तर दिया।

"क्यों जाने दिया? मुझसे पूछा भी नहीं? मैं भी वहीं मर जाऊँगा ऐसी धारणा तुम सब ने बना ली थी?"

बहुत समझाया। परन्तु जो जबान से निकला उसे उन्होंने बदला नहीं। तब चार आदमियों को साथ कर उन्हें बिदा किया।

ऐसे प्रसंग पर बिना सहानुभूति के शान्ति पूर्वक उत्तर देते महेशचन्द्र के कोट पर लटकती रुद्राक्ष की माला मानों आँखों में गड़ रही, हो

उसे उसी दम तोड़ फेंकने की इच्छा वीरसिंह को हुई। महेशचन्द्र पर उन्हें बिना कारण ही घृणा और ऊब हो उठी। उसकी चालाकी भरी आँखों में वीरसिंह को कपटता दिखलाई पड़ने लगी। अस्वस्थ व्यक्ति में बिना प्रयोजन ही चिढ़ हुआ करती है।

इसे मैं यहाँ से निकाल बाहर करूँगा। उन्होंने मन ही मन संकल्प किया।

किन्तु यह संकल्प सिद्ध होना कठिन था। दो तीन दिन पश्चात् वीरसिंह के शरीर में कुछ स्फूर्ति आई तब महेशचन्द्र ने ही बात प्रारम्भ की—

"राजा साहब! शशिरेखा बहन को आपकी ओर से पाँच सौ रुपया भेजा गया है।"

वीरसिंह भी यही विचार कर रहे थे। मधुसूदन के अदृश्य होने के पश्चात् यह निराधार कुटुम्ब क्या करेगा उन्हें इसकी चिन्ता हुई। इस कुटुम्ब पर जो दुःख पड़ा है, उसके लिये मानो स्वयं उत्तरदायी हों, ऐसा उनका हृदय उन्हें तिरस्कृत करता था। महेशचन्द्र के कार्य्य का ढंग सराहनीय था। वह एक भी ऐसा कार्य्य नहीं करता जिसमें उन्हें टोकने की आवश्यकता पड़ती।

"ठीक किया। हर महीने इतना भेज दिया करिये।"

"जी हाँ! ऐसा ही चाहिये। परिवार असहाय हो गया।" स्वभावतः दुःख से अधीर हो महेशचन्द्र ने कहा। वीरसिंह ने दृष्टि उसकी ओर उठाई। उन्हें निश्चय करना था कि महेशचन्द्र के इस वाक्य में केवल स्वर का कौशल है अथवा हार्दिक सहानुभूति है। नल के टोटी की चाभी को दबाने के साथ ही जैसे पानी गिरने लगता है उसी प्रकार महेशचन्द्र की जरा भी इच्छा होते ही उनकी आँखों में पानी उमड़ आ सकता है। उसकी आँखों में भी नास थी। वीरसिंह ने अधिक बातें नहीं की।

चार दिन बाद मनिआर्डर लौट आया। महेशचन्द्र उसे लेकर वीरसिंह के पास आये। वीरसिंह का स्वास्थ्य अब सुधर गया था। परन्तु उनके मन पर शोक का असह्यभार था। महेशचन्द्र द्वारा समाचार सुनके अधिक उद्विग्न हो उठे।

"किस कारण वापस लौटाया है ?" वीरसिंह को चिन्ता हुई।

"कुछ कारण लिखा नहीं। पत्र भी नहीं है।"

'तो फिर पता लगाइये। नहीं तो मेरी ओर से आप स्वयं जा कर समझ आय।"

'जी हाँ। यही ठीक होगा। आपकी इच्छा हो तो गवर्नर साहब से मिलने जाने के समय अथवा लौटती बार आप भी पधारते तो अधिक अच्छा होता।'

राजा वीरसिंह महाराजा होने वाले थे। उसके लिए गवर्नर साहब के ही कर कमलों द्वारा यह खिताव प्रदान किया जाय यह प्रार्थना करने के लिए जाने की प्रथा थी। योजनानुसार जाने का दिन निश्चित हो चुका था और शशि रेखा का नैहर भी रास्ते में ही पड़ने के कारण सुझाव पर अमल किया जा सके ऐसा था। परन्तु वीरसिंह ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया।

"मुझसे मधुसूदन के अभाव में शशि बहन का सामना न किया जा सकेगा। क्या मुँह लेकर मैं उसके पास जाऊँ ?"

संसार की दृष्टि में खुशी दीखते, महाराजा होने की तैय्यारी करते हुये राजा वीरसिंह का हृदय विदीर्ण था। अपने मित्र पत्नी के सम्मुख जाते हुए उनके पैर उठेंगे ऐसा था ही नहीं।

"लड़कियों को स्टेशन पर मिलने के लिए बुलवा लीजिये !" महेशचन्द्र विवेक का सागर स्वरूप था। वीरसिंह ने स्वीकार किया।

गवर्नर साहब से मिलकर लौटते समय स्टेशन आने पर वीरसिंह ट्रेन की खिड़की से सिर बाहर निकाल देखने लगे। राजा की प्रतिष्ठा के अनुकूल यह व्यवहार न होते हुए भी मित्र की कन्याओं को देखने के लिए वे अधीर हो उठे। साधारण वस्त्र पहने आठ, दस वर्ष की दो बालिकाओं ने राजा वीरसिंह को देखा और उनकी ओर उँगली दिखलाती आगे बढ़ते जाते हुए सैलून की ओर दौड़ने लगीं। खड़े होने के पहले ही वीरसिंह प्लेटफार्म पर कूद पड़े और झट से नन्हें पैरों से दौड़ती आती बच्चियों को दोनों हाथों में एक एक को उठा लिया।

"रमा ! वृन्दा ! कैसी हो बेटी ?" वीरसिंह इससे अधिक बोल न सके।

उन्हें मधुसूदन का स्मरण हो आया। उन बालिकाओं को बिना पिता के बनाने का मानों उन्होंने अपराध किया हो और उसका घोर पश्चाताप उन्हें हो रहा हो। उनका गला भर आया। दोनों को गोद में उठा कर उन्होंने सैलून में बैठाया और मेवों की ढेरी उनके सामने रख दी।

लड़कियों ने किसी चीज को स्पर्श नहीं किया।

'क्यों ? कुछ खा नहीं रही हो ?" वीरसिंह ने पूछा।

राजा वीरसिंह बालिकाओं से काफी परिचित थे। नित्य प्रति राजासाहब की उपस्थिति के समय उन्होंने छोटेपन से ही तुतली तुतली बोली बोल राजा साहब को अपने ऊपर मोहित कर लिया था। राजा साहब के पास उन्हें थोड़ा भी अपरचित पन नहीं लग रहा था। किन्तु आज मेवा लेते समय उन्होंने संकोच प्रदर्शित किया, एक दूसरे की ओर देखने लगीं। साथ आये व्यक्ति ने जो सैलून के बाहर खड़ा था उसकी ओर भी दोनों ने देखा।

"संकोच क्यों कर रही हो ? खाना शुरू करो।" चालाक वृन्दा का दुलार करते हुए वीरसिंह ने कहा।

"माँ ने बतलाया है कि कोई कुछ दे तो लिया नहीं जाता।" वृन्दा ने कारण बतलाया। सभ्य और नीतिवान बनने के पहले बालक माँ बाप की हमेशा फजीहत करते हैं।

परन्तु वीरसिंह ने दोनों बालिकाओं को समझाया कि जिस सिद्धान्त को तुम्हारी माँ ने तुम्हें सिखलाया है वह मेरे लिये नहीं है। उन्होंने बालिकाओं को अच्छी पोशाकें, सुन्दर सुन्दर खिलौने और दूसरी उपयोगी वस्तुओं के साथ एक निःश्वास छोड़ बिदा किया।

परन्तु किसी की दी हुई वस्तु कब तक चलेगी ? बालिकाओं का शरीर भी उम्र के साथ बढ़ता है और उनकी आवश्यकतायें भी बढ़ती हैं। इन सबका विचार पिता की अनुपस्थिति में माँ को ही करना पड़ता है। पति-विहीन हिन्दू स्त्री

सरीखी करुणावस्था संसार भर में किसी की नहीं है। संयुक्त कुटुम्ब की जीवित संस्थामें उसका दुःख-पूर्ण संकीर्ण स्थान है। संयुक्त कुटुम्ब की अनेक कारणों से छिन्न-भिन्न हो जाती प्रणाली विधवा अथवा त्यक्ता सधवा को स्थान दे सकती ही नहीं। पति आश्रित रहने के लिये सर्जित स्त्री, पति को खोते ही, जीवन भर के लिए सुलगती चिता पर बैठ जाती है।

शशिरेखा के नैहर में मामा का लड़का मात्र ही था। वह सुन्दर स्वभाव का और स्नेही था। शिकार के लिये मधुसदन गये जंगल में मारे गये, यह समाचार जब उसने सुना तुरन्त वह बहन के पास आया और उसकी सुन्दरपुर छोड़ने की प्रबल इच्छा को मान दिया। शशिरेखा और उसकी दोनों कन्याओं को वह अपने घर ले आया।

मनुष्य मानसिक संतुलन लेकर उत्पन्न होता है कदाचित यह बात स्वीकार करली जाय तो भी बाहरी संयोगों के संघर्ष के कारण उसके मानसिक शक्ति को ऐसा स्वरूप दे देता है कि जन्म सिद्ध संस्कार पहिचाने जा सकें ऐसा भी नहीं रहता। परोपकारी संस्कार लेकर उत्पन्न हुए कितने ही कंजूस के रूप में परिचित होते हैं। मनुष्यों के, विशेष कर मध्यम वर्ग के मनुष्यों का दोष अधिकांश में साधन हीनता का ही होता है। शशिरेखा के मामा का लड़का रमाकान्त जो कि बहन के प्रति स्नेह का बर्ताव रखता था वह साठ रुपये में पत्नी और चार बालकों के कुटुम्ब का निर्वाह कठिनता से कर पाता था। वह युवक तीन और प्राणियों का भरण पोषण किस प्रकार कर सकेगा यह विचारणीय है। बालकों को चाय मिल जाती है तो दूध नहीं होता है; दूध है तो चीनी नहीं रहती। रायता मिल जाता तो साग बहुत थोड़ा मिलता और यदि कढ़ी बनी होती तो उस दिन साग का नाम मात्र भी दिखलाई नहीं पड़ता। नौकर रखने का मन तो प्रत्येक गृहस्थ के घर में होता ही है, परन्तु मूल्य दे पानी लेना और उसी प्रकार अपना कपड़ा स्वयं धो डालने का कर्तव्य अनेकों बार निभाना पड़ता है। मसहरी बिना सोने से मलेरिया होता है ऐसा डाक्टरों और धनिकों का कहना ठीक है, परन्तु सात

आठ व्यक्तियों के लिये मसहरी खरीदने के लिए एक दो माह तक समूचे परिवार को उपवास कराया जाय क्या? इस सम्बन्ध में डाक्टरों को विशेष सम्मति देनी चाहिए। जमीन में सोने से चींटे जैसे जन्तु काट लेते हैं और उससे चमड़ी में दर्द होता है यह मानने के लिए सभी प्रस्तुत हैं, परन्तु प्रत्येक मनुष्य सबके लिए चारपाई बिछाने की व्यवस्था पाँच सात रुपये मासिक भाड़े वाले घर में किस प्रकार करे, और चारपाई में होनेवाला खर्च किस प्रकार पूरा किया जाय इसका सावधानी पूर्वक विचार कर एक योजना प्रस्तुत करने के लिए धनिकों को एक खास कमेटी स्थापित करने को अवश्य कहा जाय।

किसी को भी कन्जूस कहने के पहले, किसी के भी आतिथ्य में कमी निकालने के प्रथम अनेकों कारणों पर ध्यान देना आवश्यक है।

शशिरेखा ने दो वर्ष रमाकान्त के घर में व्यतीत किया। उसने अनुभव किया कि वह अपने भाई पर भयङ्कर बोझ हो पड़ी है। वीरसिंह की ओर से हमेशा आनेवाली सहायता को वह बिना संकोच लौटा दिया करती थी। पति की उपस्थिति में सुख का सत्कार करने वाली नारी उनके अनुपस्थिति में गर्विष्ठ बन गयी और क्रम क्रम कर भाई के भार को भी उसने हटा दिया। एक दिन उसने रमाकान्त से कहा—

"भाई! मुझे इन लड़कियों को अंग्रेजी पढ़ाना है।" रमाकान्त भी बच्चों को किसी प्रकार अंग्रेजी पढ़ायें इसी उधेड़बुन में था। बहन की यह इच्छा उसे अधिक भार पड़ती मालूम हुई। वह कुछ भी उत्तर दे कि उसके पहले ही शशिरेखा ने कहा—

"कन्या पाठशाला के समीप ही मैं एक घर अलग से लूँगी, यह मेरी इच्छा है।" स्नेही, परन्तु स्नेह के शौक से निभा सकने में असमर्थ भाई ने शशिरेखा की ओर देखते हुए थोड़ी अप्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा—

"इस प्रकार दूसरा अलग घर लेने की जरूरत क्या है? आपको यहाँ अधिक कष्ट हो रहा है क्या?"

"तुम्हारे सिवा मेरा और कहीं घर है क्या? हम लोगों के लिए तुम

लोगों ने क्या कम कष्ट उठाया है ? यह तो कुछ रुपया बीमा का आया है, इसलिये लड़कियों को पढ़ा सकूँगी ।"

मधुसूदन ने कितने का बीमा कराया था इसे शशिरेखा नहीं जानती थी । बीमा वसूली की कही बात उसे स्मरण हो आई । वीरसिंह की ओर से एक व्यक्ति आकर हस्ताक्षर तथा साक्षी इत्यादि कई कागजों पर करा ले गया था तब शशिरेखा को पता चला कि पाँच हजार की रकम उसको मिलने वाली है । तब से भाई पर से भार हटा लेने और कन्याओं को उचित रूप में शिक्षित करने का उसने निश्चय किया ।

यदि उसे बीमा का इतना धन न मिलने वाला होता तो उसकी निराधार स्थिति कितनी विकट बन जाती इसका ध्यान आते ही स्त्रियों को भी शिक्षित होने की विशेष आवश्यकता का उसे ध्यान हुआ । शिक्षा से उच्च संस्कार प्राप्त होता है या नहीं यदि इस प्रश्न का अलग छोड़ दिया जाय तो भी स्त्रियों को भरण पोषण का एक पूर्ण साधन मिलता है यह बात निश्चित है । बालिकायें भी अपने वैभव-मय जीवन को भूलती हुई, अत्यन्त सादगी से अंग्रेजी शिक्षा का अध्ययन करने लगी ।

एक दिन शशिरेखा अपना भूतकाल विचार करती हुई बैठी थीं । छोटे से घर के एक छोटे कमरे में चटाई पर शशिरेखा से थोड़ी दूर पर पुस्तकों के जमघट बीच रमा तथा वृन्दा बैठी पढ़ रही थीं । शिक्षकों की विचित्रताओं को विद्यार्थी बड़ी शीघ्रता से निकाल लेते हैं । उनका उपनाम रखने की आदत, विद्यार्थियों की चालाकी, शिक्षकों को भी हँसने को बाध्य करती हैं । वृन्दा ऐसा नाम रखने में और शिक्षकों के शिक्षण कार्य्य में विराग उत्पन्न हो ऐसी स्थिति प्रस्तुत करने में बहुत ही पटु थी । अध्ययन करते करते उसने पाठशाले की बहुत सी बातें बताया और दोनों बहन हँसने लगीं । शशिरेखा ने उसे पढ़ने की ओर ध्यान लगाने के लिए डाँटा । इतने में नीचे किसी ने दरवाजा खोला ।

"देखो रमा, कौन है ?"

रमा शीघ्रता पूर्वक नीचे उतरी, आने वाले को देखकर वह ऊपर आयी।

"वह सुन्दरपुर में थे न ? वही हैं।" रमाने उत्तर दिया !

बालिकाओं के लिए आनेवाली भेंट स्वीकार करते रहने के कारण सुन्दर-पुर का स्मरण अभी भी बना था।

"बुलाओ वृन्दा ! उस कुर्सी को यहाँ लाओ।" शशिरेखा ने पूर्व समय की दो तीन मैली हो गई कुर्सियाँ पड़ी थीं उनमें से एक को मंगाया।

"शशि बहन आऊँ क्या ?" सीढ़ी चढ़ते हुए एक परिचित व्यक्ति का स्वर सुनाई पड़ा। शशिरेखा ने दीवान महेशचन्द्र को पहचाना। खड़े हो कर आदर के साथ उन्हें कुर्सी पर बैठने के लिए कहा।

महेशचन्द्र ने पूरे मकान को सुनाई पड़ सके ऐसी निःश्वासें भरी। सिर हिला, आँखों को नचा कर मुखपर गंभीर उदासी का भाव प्रगट किया और बगुला के पर सरीखे सुफेद दुपट्टे से त्रिपुण्ड मिटे नहीं ऐसी दक्षता से उसने आँखें पोंछी। शशिरेखा का आँसू सूख गया था वह बिना बोले नीचा मुख किये बैठी रही। थोड़ी देर बाद महेशचन्द्र ने दुःख भरे स्वर में पूछा—

"लड़कियाँ तो अच्छी तरह हैं ?"

"जी हाँ ! उन्हें पढ़ा रही हूँ।"

"यह अच्छा कर रही हैं। क्या पढ़ती हैं ?"

"रमा अंग्रेजी की पांचवीं कक्षा में और वृन्दा चौथी में है।"

"अंग्रेजी किसलिये पढ़ना पड़ता है ?"

"क्या किया जाय स्त्री की जाति ! घर कैसा मिले कैसा नहीं। कुछ भी व्यवसाय कर सकनेवाले को किसी के आश्रय में रहना नहीं पड़ेगा। हमारी दशा देखते हैं न ?"

"घर तो अच्छा मिलेगा ही। आप ऐसी क्यों धारणा करती हैं कि बच्चियों का ध्यान मुझे नहीं होगा ? मधुसूदन भाई की मैं क्या बात कहूं ? परन्तु मेरा

और उनका इतना सम्बन्ध तो था ही कि उनकी पुत्रियों को अपनी पुत्री मानूँ।"

"आप जैसे सज्जनों का संरक्षण है इसका मुझे संतोष है।"

"आपकी इच्छा हो तो लड़कियाँ आज ही अपने घर चली जाँय। रमा की क्या उम्र है?"

"तेरह वर्ष पूरा हुआ।"

"तब तो आपको चिन्ता होनी ही चाहिये!"

शशिरेखा को लगा कि अचानक सहायता आ पहुंची है। पुत्रियों को अच्छा घर और वर मिले यह माता की तीव्र इच्छा होती है। उसने सहज ही अपनी अनुमति प्रगट की। वर कौन है, कैसा है, क्या पढ़ता है, उसके माँ बाप कैसे हैं ये सभी बातें उसने पूछी। अपने भाई की सम्मति लेकर लड़के को देखने के पश्चात् रमा के विवाह की पक्की रसम करने का अपना आशय बतलाया।

ये बातें जब हो रही थी तो रमा और वृन्दा दोनों सुन रहीं थीं। बारह तेरह वर्ष की उमर होने तक जिस कन्या का विवाह नहीं हुआ होता तो निकट सम्बन्धियों में असन्तोष व्याप्त जाता है। ऐसा युग का रिवाज था।

समय के परिवर्तन से बारह तेरह वर्ष की कन्या के विवाह का विचार करना अब भी कितनों को हास्य जनक मालूम पड़ता है। फिर भी इस आयु में विवाह सम्बन्धी विचार करने का वातावरण अभी अशक्य नहीं बन गया था। रमा की जिज्ञासा जाग्रत हुई। विवाह के प्रथम प्रेम अथवा विवाह पश्चात् प्रेम, यह काल्पनिक झगड़ा खड़ा करने की बहुत लोगों की इच्छा नहीं होती। विवाह पश्चात् प्रेम हो तो वह विवाह सन्तोष-प्रद मान विवाह के पहले प्रेम के रोमाञ्च की अद्‌भुत कहानी चरितार्थ करने में किसी को रुचि हो जाय ऐसा नहीं है। हिन्दू बाला का ध्येय विवाह है, इसलिए उस संस्कार में पली रमा अपने भविष्य हेतु जिज्ञासा रखती ही थी।

परन्तु इस चर्चा के साथ ही दूसरी भी एक महत्त्व की बात महेशचन्द्र ने बतलाई।

"इस लड़के को मैं आपको दिखा दूँगा, उन्नीस वर्ष का है और इन्टर में पढ़ता है। अच्छा! मधुसूदन भाई की मृत्यु में आपको कुछ भेद मालूम पड़ता है?" महेशचन्द्र ने पूछा।

"मेरा भाग्य ही ऐसा था दूसरा क्या?" शशिरेखा ने उत्तर दिया।

"परन्तु आपका किसी पर शुभा-शक नहीं है?"

"किस पर शुभा हो? किसी को मेरे दुःख से क्या प्रसन्नता होगी?"

"वह तो आप जानें! आपके दुःख से किसी को प्रसन्नता न भी हो........ कुछ नहीं। मैं कुछ कहना नहीं चाहता।"

"आप कुछ कहने जा रहे थे, फिर रुक क्यों गये?"

"कुछ कुछ बातें धीरे-धीरे प्रगट होती सुन पड़ रही हैं, इसलिए यदि आप कुछ जानती हों, आपको किसी पर कुछ शुभा हो तो उस विषय में मुझसे आप प्रगट करें तो कुछ रास्ता निकले।"

"मैं तो अपने दुःख में पागल बन गयी हूँ मुझे कोई खबर है ही नहीं और न मुझे किसी पर कोई शुभा ही है। यदि आप कुछ जानते हों और बत-लायें तो दूसरी बात है।"

"देखिये! मधुसूदन बाबू की लाश तो मिली परन्तु रूपाजी का पता नहीं है। यह आपको रहस्यमय नहीं मालूम होता?" मानो उसे स्वयं कुछ समझ न पड़ता हो इस प्रकार उसने अपने हाथ की कानी उंगली को मरोड़ा।

"रूपाजी शेर से कभी मरेगा नहीं, मान लीजिये कि वह भी मरा हो तो चार दिनों बाद उसकी लाश तो मिलना ही चाहिये?"

"फिर?"

"वह नहीं मिली इसलिये शक होता है कि रूपाजी भाग गया।"

"ऐसा ही हुआ हो !"

"आपने अभी समझा नहीं। शेर और मधुसूदन बाबू दोनों की लाशें मिली थीं। इसीलिये ऐसा अनुमान होता है कि किसी ने जान बूझ कर मधुसूदन बाबू को शिकार में भेज कर उन्हें इस खतरे में डाला।"

"अभी तक मुझे आपकी बातों का मतलब समझ में नहीं आ रहा है।"

"नहीं समझा जा सके, ऐसा ही भेद है। इसीलिए तो मुझे भी समझने में इतने वर्ष बीत गये। मधुसूदन बाबू की इच्छा एक विशेष व्यक्ति ने जागृत की। उसने उन्हें शिकार की लत लगाया। मामूली साधारण शिकार करना आया ही था कि इतने में ही शेर जैसे भयङ्कर जीव के शिकार का मोह उत्पन्न किया। बिना अनुभव उन्होंने हिम्मत किया, लेकिन दूसरे शंका न करें इसलिये रूपाजी सरीखे कुशल शिकारी को उनके साथ भेजा।"

"मेरा दिमाग तो कुछ काम नहीं करता।"

"उपाय ही ऐसा रचा गया था कि किसी को शंका उत्पन्न होने का कारण ही न रहे। रूपाजी कौन और कैसे भयङ्कर कामों का करनेवाला था, यह तो आप जानती हैं न ?"

"हाँ वे कहते थे कि पहले वह खूनी और डाकू के नाम से विख्यात था।"

"ऐसा मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? ऐसे व्यक्ति को राज्य में अनियन्त्रण के रक्खा गया था तो किसी ऐसे ही कार्य्य के लिये न ? या दूसरा कुछ ?"

"फिर आपकी क्या धारणा है ?"

"मेरी धारणा नहीं, मेरा तो निश्चय हो गया है कि मधुसूदन बाबू के वध के लिए पहले से ही सभी योजनायें व्यवस्थित की गई थीं। अनुभवहीन शिकारी गोली मारने में चूके तो शेर द्वारा मारा जायेगा ही। भाग्यवश गोली ठीक निशाने पर लगे तो भी शेर बाघ के अलावा भी अधिक क्रूर और खूनी समूचे जंगल में है जो इच्छा चाहें करें। मृत शेर और मधुसूदन बाबू का शव कितनी दूरी पर पड़ा हुआ मिला था यह तो आपने

सुना ही होगा ? किस कारण ऐसा न हो ? सच्ची बात तो यह है कि शेर मधुसूदन बाबू के हाथों मरा, और स्वयं शिकार के स्थान से एक गाँव जितनी दूर आगे जा रूपाजी के हाथों मारे गये !"

"परन्तु इतना सब किसने किया ? और किस वैर के कारण ?"

"आप सरल मानवी हैं, इसलिए आपको सारा संसार सरल ही लगता है ! क्षमा करियेगा। परन्तु इस घटना के होने के पहले कोई विचित्रतापूर्ण पत्र आपको मिला था।"

"वीरसिंह पर शंका करते हैं ? झूठी बात है !"

"मैंने क्या कहा ? आप सरल हैं। इसलिए किसी का दोष आपको दिखाई नहीं पड़ता। परन्तु मेरा तो निश्चय हो गया है और उसका पूरा प्रमाण मेरे पास मौजूद है। योजनाओं में कहीं से कमी नहीं हुई थी। नहीं तो राजधानी से स्वयं उनकी अनुपस्थिति का संयोग कैसे उपस्थित होता ?"

"नहीं नहीं, दीवान साहब ! राजा साहब ऐसा नहीं कर सकते !"

"कोई किसी के हृदय में बैठ कर निकला है ? यह तो ठीक है परन्तु चार ही दिनों के बाद आपके पास ऐसे दुःख के समय पाँच सौ रुपयों की लालच भेजनेवाले मन में क्या क्या नहीं हो सकता ?"

"ऐसा ? आपलोग कहते हैं तो ठीक होगा। नहीं, नहीं ! मैं राजा साहब को अच्छी तरह पहचानती हूँ। उन्होंने किसी भी दिन मेरे सामने अनुचित व्यवहार किया ही नहीं।"

"उसमें कुशलता चाहिए। शशिरेखा बहन, वीरसिंह का अन्तिम समय आ गया है। मेरे पास इसके पूरे प्रमाण तैयार हैं। मैंने तो ऐसे नीच राजा की नौकरी छोड़ दी है, परन्तु आप अपनी छोटी सी भी शंका प्रदर्शित करें तो वीरसिंह को गद्दी से हटा फाँसी या काले पानी की सजा दिला दूँ।"

शशिरेखा अवाक बन गई। इसमें सत्य क्या है और झूठ क्या है? वीरसिंह जैसा मित्र ऐसा कुचक्र रचेगा? उसके मन ने अस्वीकार किया। उसने महेशचन्द्र की ओर देखा। रुद्राक्ष की माला उपरान्त धार्मिक दिखाव का घेरा बनाता हुआ महेशचन्द्र हाथ से अपनी माला फिराने लगा। उसे शान्तिपूर्वक माला फिराते देखकर शशिरेखा को लगा कि ऐसा पुण्यशाली व्यक्ति किस हेतु झूठ बोलेगा?

महेशचन्द्रने समझ लिया कि उसने उपयुक्त अवसर उत्पन्न कर लिया है। यह प्रभाव आगे भी बना रहे इसलिए रमा का विवाह अपने एक निकट के सम्बन्धी के साथ करवाकर शशिरेखा को अपने पक्ष में मिला लेने की योजना बनायी थी। उसने रमा सम्बन्धी पुनः बातें की। दूसरे अथवा तीसरे दिन उस इंटर के विद्यार्थी को शशिरेखा के पास लिवा लाया। युवक सुन्दर और सरल प्रकृति का था। वह शशिरेखा को रुचा, शशिरेखा के भाई रमाकान्त को भी पसन्द आया और रमा तथा वृन्दा ने भी उसे पसन्द किया। उसका घर साधारण स्थिति का था. तथापि वह थोड़े ही दिनों में ग्रेजुयेट होगा और फिर महेशचन्द्र ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति से सम्बन्ध रहेगा, इत्यादि ऐसा समझ रमा का विवाह उसके साथ शीघ्रतापूर्वक कर डाला।

विवाह पश्चात् एक वर्ष में ही, एक असाध्य बीमारी का पाँच सात दिन भोग वह नवयुवक स्वर्ग सिधार गया।

रमा विधवा हो गयी। शशिरेखा के लिए यह भी दुःख बाकी था, सो पूर्ण हुआ। रमा दुःख को समझकर अथवा अनजाने अपना विद्याध्ययन चालू रक्खा।

१७

स्त्रियों की व्यायाम शिक्षा

"तुम नई झंझट खड़ी मत किया करो। मुझसे सारी दुनियाँ का काम न होगा ?" हृदयनाथ ने ऊबकर निरंजन को उत्तर दिया।

"भीलों को शिक्षा देने के लिए वर्ष में दो महीना तुम जंगलों में बिता सकते हो और यहाँ यदि तुमसे मुलाकात करने के लिए कोई आये तो इसमें तुम्हें झंझट मालूम होती है ! क्यों ?" निरञ्जन ने तर्क किया।

"परन्तु स्त्रियों को मेरी मुलाकात से क्या काम ?"

"वह स्त्रियाँ जानें ? तुम्हारे लिए स्वयम्बर नहीं रचा गया होगा ! तुमसे कोई सम्मति लेनी होगी। तुम व्यायामों के विशेषज्ञ गिने जाते हो, इसलिए दो बात पूछकर तुम्हें थोड़ा महत्त्व देंगी। दूसरा क्या ?"

"मेरी सलाह उन्हें उपयोगी होगी ऐसा नहीं होगा।"

"उपयोगी नहीं होगी तो दूसरी बार तुम्हारे सम्मति के लिए नहीं आयेगी। आज तो किसी प्रकार भी इन्कार नहीं किया जा सकता !"

"पुरुषों के अखाड़े के निरीक्षण से स्त्रियों को क्या लाभ ? किसलिए तुमने स्त्रियों को यहाँ बुलाया ? मैंने तुमसे अनेक बार कहा कि तुम्हारा यह व्यवहार मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता !"

"तुम्हें तो एक प्रकार का भूत लग गया है।" थोड़ा हँसकर निरञ्जन ने कहा।

"तुम्हारा दिमाग हल्का, क्षुद्र और तुच्छ बनता जा रहा है। स्त्रियों के सिवा तुम्हें दूसरी कोई बात सूझती ही नहीं।" हृदयनाथ ने झुंझलाते हुए कहा।

"पाँच मिनट तक तुम इसी प्रकार बकवाद किये जाओ। इतने में वे स्त्रियाँ यहीं आ पहुँचेगी।"

"तो तुम्हें फिर इन्हें घर पर मिलने के लिए बुलाना था।"

"सावजनिक अखाड़ा जैसे स्थान पर तो तुम उन्हें आने ही नहीं देते हो फिर तुम्हारे घर पर मैं उन्हें कैसे बुला सकता था। स्त्रियों का अपमान मैं करना नहीं चाहता.........देखो वह नीचे दो मोटरें आयीं। अभी भी चलना नहीं है? चलो, स्वागत के लिए चलना ही पड़ेगा!"

"नहीं, नहीं! मैं नहीं जाऊँगा। तुम्हीं लिवा लाओ न! इतना मेरा काम नहीं करोगे?" मोटर में से पाँच सात युवतियों को उतरते हुए देख थोड़ा घबड़ाकर नम्रता के साथ हृदयनाथ ने कहा।

स्त्रियों के आदर और सम्मान के लिए सदा उत्सुक रहता निरञ्जन तेजी से नीचे की ओर दौड़ा। अखाड़ा नीचे के भाग में था। ऊपर व्यायामशाले का कार्य्यालय था। इस व्यायामशाला की ओर से एक मासिक पत्र निकलता था। हृदयनाथ और निरञ्जन दोनों ही उसके सम्पादक व्यवस्थापक थे। इस पत्र का कार्य्य भी इसी कार्य्यालय में होता था। लोंगों से मुलाकात के लिये भी यही स्थान नियत था।

स्त्रियों की व्यायाम शिक्षिका, एक निपुण अमेरिकन महिला भारतमें आयी थीं। भारत की स्त्रियों में व्यायाम का प्रचार हो सकेगा या नहीं इसका ध्यान पूर्वक जाँच कर रही थीं, वे कन्या शालाओं तथा हाई स्कूलों और कालेजों में विद्याध्यन करती हुई कन्याओं तथा युवतियोंसे मिलकर उन्हें तथा उनकी शिक्षिकाओं को व्यायामके प्रति रसिक बनाने का प्रयत्न करती थीं। सामान्यतः पुरुषों में भी व्यायाम सम्बन्धी प्रवृतियों का प्रचार करना उसके कार्य के अन्तर्गत था। भारत में जब से वे आयीं थीं तब से हृदयनाथ और उसके अखाड़े के विषय में उन्होंने कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा बड़ी प्रशंसा सुनी थी। इस कारण वे तभी से उसे तथा उसकी संस्था को देखने के लिये उत्सुक थीं। अपने कार्य्य में

इस प्रकार के व्यायाम विशेषज्ञ व्यक्ति से उपयोगी सूचनायें मिलेगी इसकी भी उन्हें आशा थी।

निरञ्जन ने इस महिला के बारे में कितनी ही बातें अपने मासिक पत्र में प्रकाशित की थी जो कि हृदयनाथ को अनावश्यक लगी थी। इतना ही नहीं यदि लेख छपने के पूर्व उसके देखने में आगये होते तो वह अवश्य ही उन्हें निकाल देता।

इस महिला ने पत्र लिखकर संस्था के निरीक्षण करने की इच्छा प्रगट की थी। निरञ्जन ने स्वयं ही हृदयनाथ से बिना बताये ही उसका उत्तर दे दिया था। इतना ही नहीं बल्कि वह उस महिला से साक्षात भी कर आया था, और साथ ही दूसरी चार महिलाओं को भी आमन्त्रित कर आया था।

हृदयनाथ अस्वीकार न कर सके इस प्रकार से मुलाकातकी व्यवस्था उसने की थी और उसे सूचना भी ऐसे समय पर दी गई थी कि उस समय अखाड़े से हट कर कहीं और चले जाने का मौका भी उसे न मिल सके।

महिलायें उसकी संस्थाका निरीक्षण करें, इसका हृदयनाथ के लिये पहला ही अवसर था। वह भाग्य से ही स्त्रियों से बात करता, कदाचित् बात करने का प्रसङ्ग आ जाता तो जिस प्रकार भी हो सकता था उसी प्रकार विपत्ति से छुट्टी ले अलग हो जाता था। ब्रह्मचर्य्य के सिद्धान्त पर वह बहुत अधिक विचार करता था। उसे यह विश्वास हो गया था कि प्राचीन धर्मोपदेशकों ने जो कर्म, मन और वचन से स्त्री सम्पर्क का निषेध किया है वह उचित है। प्राचीन युग होता तो क्या वह योगी, मुनी अथवा यती न बन बैठा होता? परन्तु इस नवीन युग के नवीन संस्कारों से प्रभावित होने के कारण संसार से उसे वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ था। संसार में उसे अनेकों कार्य करने हैं, ऐसा उसने निश्चय किया था। उन कार्य्यों के आवश्यक अंग के रूप में ब्रह्मचर्य्य को उसने स्वीकार किया था। स्त्रियों का संसर्ग और विचार उसने इतनी दृढ़ता पूर्वक छोड़ दिया था कि उनका प्रसंग उपस्थित होतेही वह एक प्रकार की घब-

ड़ाहट का अनुभव करता और इस कठिनाई से जैसे बने वैसे शीघ्रता पूर्वक छुटकारा पाया जाय वैसा ही प्रयत्न करता।

स्त्रियों के विचार मात्र से ही जो मनुष्य दूर भागता हो वह पाँच-सात स्त्रियों से साक्षात करे, यदि ऐसा प्रसंग उसे बहुत ही विकट मालूम हो तो इसमें कोई विचित्रता नहीं है।

'इतनी बड़ी सेना ?' उसके मनमें विचार आया और उसी क्षण सात स्त्रियों की सेना उसके सामने खड़ी थी।

"आप हैं मिस कोलिन्स ! स्त्री व्यायाम विशारदा। आप हैं मिस्टर हृदयनाथ ! प्रख्यात पुरुष-व्यायाम के प्रचारक।" चश्मे को ठीक करते हुए क्रम क्रम एक दूसरे का परिचय कराते हुए निरञ्जन ने कहा।

'मिस हैं ? बापरे !' भयभीत हो धीरे धीरे आगे हाथ बढ़ाते हुए हृदयनाथ के हाथ को मिस कोलिन्स ने यूरोपियन ढङ्ग से भावपूर्वक अपने बढ़े हुए हाथ में ले खूब अच्छी तरह हिलाया। हृदयनाथ को लगा कि आकाश-पाताल एक हो जायेगा। उसका मुख लाल हो गया।

"आपसे मुलाकात के लिए मैं बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। आप तथा आपकी संस्था का सुनाम मैंने प्रत्येक स्थलों पर सुना है। आपसे परिचय हुआ इसे मैं अपना बड़ा सम्मान समझती हूँ।" मिस कोलिन्स ने बात प्रारम्भ की। चालाक अमेरिकन युवती की बात भी बहुत ही रसदार होगी।

"जी हाँ !.........नहीं .... नहीं..........मैं तो...... साधारण संस्था है।" हृदयनाथ टालमटोल करने लगा।

वार्तालाप भी एक कला है। कितने लोगों का बोलना रुचता है कितनों का बोलना बन्द करवा देने का मन चाहता है और कितने मनुष्यों में वाचा है कि नहीं इसकी शंका रह जाती है। जीवन के प्रत्येक क्षण में बिना महत्त्व की बात भी रसपूर्ण रीत से हो तो उसी प्रकार करनेवाली प्रत्येक वार्ता करना

कर्तव्य है ऐसा समझना चाहिये। सामान्य बातचीत को कला के रूप में ग्रहण करने का यूरोपीय प्रजा जनों ने जिस लगन से प्रयत्न किया है उसे आदर्शमान भारतवासियों को भी कुछ शिक्षा लेना आवश्यक है।

मिस कोलिन्स ने देखा कि हृदयनाथ बातचीत करते हुये सकुचाते हैं। समक्ष बातचीत करने वाले व्यक्ति को वार्तालाप में कम संकोच हो ऐसा करने की सुवक्ताओं में आदत होती है।

"आपने अत्यधिक नम्रता प्रदर्शित की यह आपकी सौजन्यता है। किन्तु आपके भव्य शरीर से यदि आपके संस्था की कल्पना करूँ तो मैं उसे साधारण संस्था नहीं कहूँगी।"

"मैं तो थोड़ा ही काम करता हूँ........। मेरे मित्र निरञ्जन की सहायता से...."

"नहीं! इस संस्था का पूरा श्रेय हृदयनाथ के सिवाय और किसी दूसरे के हिस्से में आ ही नहीं सकता।" निरञ्जन ने बात काटा—"परन्तु आप सब लोग बैठें। आप सब लोगों का परिचय अपने मित्र से करा दूँ!"

निरञ्जन सभी युवतियों की ओर संकेत कर कहने लगा—

आप मिस सुशीला! मिसेज रमा! मिसेज सुलोचना! मिस वृन्दा! विष्णु सहस्र नाम का पाठ करनेवाले भावुक का स्वर कोई नास्तिक सुने और इन नामों की निरर्थकता के प्रति उसे अरुचि हो, उसी प्रकार ऊपर ही ऊपर हँसता हुआ युवतियों का नाम सुनते हुये हृदयनाथ का मन ऊब उठा। यह सभ्य अंग्रेजी पढ़ी युवतियाँ कदाचित "शेक हैन्ड" करने को प्रवृत्त हों इसलिये नाम उच्चारण होने के साथ ही हृदयनाथ ने दोनों हाथ जोड़ नमस्कार करके उन लोगों के स्पर्श दोष का पाप नहीं किया।

"स्त्रियों की शारीरिक शिक्षा के प्रति आपकी क्या धारणा है?"

"मैंने इस विषय पर कुछ विचार नहीं किया है।"

निरञ्जन ने सोचा कि यह विचित्र मनुष्य असामायिक व्यवहार द्वारा

अपनी मर्य्यादा घटा देगा। वार्तालाप अंग्रेजी में हो रहा था, इस कारण उसने हिन्दी में हृदयनाथ से कहा—

"बेवकूफ! ठीक से बात तो कर। गप्प मारने से इज्जत चली जायेगी।"

"विना मनन किए हुए कोई अपना मन्तव्य प्रगट न करने की आपकी प्रवृत्ति पसन्द करने योग्य है। परन्तु आप इतना तो स्वीकार करेंगे ही कि पुरुषों के समान स्त्रियों को भी स्वस्थ रखना आवश्यक है?" मिस कोलिन्स को मानो बात करने की आवश्यकता हो इसीलिए वह हृदयनाथ से प्रश्न करने लगी।

"जी, मैं इसे स्वीकार करता हूँ।" हृदयनाथ ने उत्तर दिया।

कब से टकटकी लगाकर देखती और बोलने का अवसर खोजती हुई वृन्दा से रहा नहीं गया। उसने मन्द स्वर में किन्तु सब सुन सकें ऐसी आवाज में निरञ्जन से पूछा—

"यह मिस्टर हृदयनाथ ने अंग्रेजी की कहाँ तक शिक्षा ली है?"

एक दो स्त्रियाँ हँस पड़ी। कुछ गम्भीर बन ऐसा प्रश्न पूछनेवाली अशिष्ट बालिका की ओर व्यङ्गयुक्त दृष्टि से देखने लगी। निरञ्जन भी थोड़ा हँसा। उसने हृदयनाथ से कहा—

"यह वृन्दा जी पूछती हैं कि आप कितनी अंग्रेजी पढ़े हैं?"

हृदयनाथ ने प्रश्न सुना था। कटाक्ष सहित यह प्रश्न पूछा गया है यह भी वह समझ गया था। स्वयं बात करता हुआ वह घबड़ा रहा है यह भी उसकी दृष्टि से बाहर न था। स्वभावतः वह क्रोधित हो उठा। उसने उत्तर दिया—

"तुमसे पूछ रही हैं तुम उत्तर दो!"

"ये तो युनिवर्सिटी से एम० ए० हैं और बड़े अच्छे पोजीशन से एम० ए० पास किया है।" निरञ्जन ने गर्व से उत्तर दिया!

"ऐसा........?" वृन्दा ने झूठा आश्चर्य प्रदर्शित किया।

"जब स्त्रियों को स्वस्थ रहने की आवश्यकता है तब उनके लिये भी कदम बढ़ाने की आवश्यकता है !" मिस कोलिन्स ने अपना मत प्रगट किया।

"जी हाँ !" हृदयनाथ ने अनुमोदन किया।

"मैं सभी से ऐसा पूछती हूँ कि भारत में किस प्रकार प्रगति की जा सकती है !"

"आपका प्रश्न उचित है।"

इस जड़ बुद्धि के मनुष्य से मिस कोलिन्स कुछ भी ज्ञान प्राप्त कर सकें, इसकी सम्भावना बिलकुल ही नहीं है ऐसा उन बैठी हुई महिलाओं के मुख के भावों से प्रगट हो रहा था।

"आपको पुरुषों के व्यायाम का पूर्ण अनुभव है। जो प्रथम प्रयत्न पुरुषों के प्रति आपने प्रारम्भ में किया था वह स्त्रियों के व्यवहार में लाया जा सकता है या नहीं ?"

"कोई हानि तो नहीं है . परन्तु........दोनों के बीच........अन्तर है।" पहली बार हृदयनाथ ने अभिप्राय प्रगट किया।

"क्या अन्तर है ? आप बतलायेंगे तो मेरे ज्ञान की वृद्धि होगी।"

"पुरुषों के लिये व्यायाम की प्राचीन व्यवस्था आज तक चालू है !"

"आपने उचित कहा। इस चलती आती व्यवस्था का विकास अनुकूल पड़ता है। जब कि स्त्रियों के लिए व्यायाम यह एक नया प्रयास है। एक पाले हुए वृक्ष को सुधारना सँवारना जैसा कार्य्य है और दूसरा नये वृक्ष के बीजारोपण सरीखा, क्यों ?"

"ठीक ऐसा ही। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण अन्तर है। कार्य्य प्रारम्भ करनेवालों को इसे ध्यान में रखना चाहिये।"

"इसका मुझे कुछ स्पष्ट सुझाव दीजिए कि यह कैसे प्रारम्भ हो जिससे स्त्रियों के व्यायाम का विकास हो सके।"

"स्त्रियों के प्राचीन व्यायाम में गृहस्थी के कार्य और हाँ....... गर्बानृत्य। मैंने भीलों का नृत्य देखा तब मुझे ध्यान आया कि नृत्य में व्यायाम का अधिक अंश होता है।"

'हृदयनाथ जी! आपके और मेरे विचार बहुत मिलते हैं। मुझे सन्तोष हो रहा है कि आप जैसे व्यायाम विशारद की सम्मति मेरी योजनाओं के अनुकूल है।"

"मैंने अभी विचारपूर्वक अपनी सम्मति निश्चित नहीं की है। यह तो साधारणतः अपना विचार मैंने निवेदन किया।"

"नृत्य के प्रति मेरा गम्भीर अनुभव है। प्राचीन ग्रीस की नृत्य कला को ठीक ठीक सीखने के लिए मैंने यथेष्ठ धन व्यय किया है। भारत की नृत्य कला को भी अच्छी प्रकार से देखा है।"

' कला की दृष्टि से मैं कुछ भी नहीं कह सकता। ललित कलायें मेरे लिए वर्जित हैं। मैं तो केवल व्यायाम का जहाँ जहाँ अंश होता है उतना ही स्वीकार करता हूँ।"

"मुझे भी यही चाहिए। प्रथम व्यायाम, पश्चात् वह किसी कला के स्वरूप में मिश्रित हो आये तो उसके लिए उसे वर्जित नहीं किया जा सकता।"

हृदयनाथ स्वयं इस वाचाल महिला के तर्कों में कैसा उलझता जा रहा है, इसका उसे भान हुआ। बचपन में उसने गर्बा (गुजराती-नृत्य) देखा था। बड़े होने पर भाग्यवश एक भील नृत्य देखने का अवसर मिला। नृत्य के व्यायामवाले अंश उसकी दृष्टि में बस गये। कला का कट्टर विरोधी स्वयं व्यायाम के कारण नृत्य जैसी अनिष्ट से अनिष्ट विकार पोशक तथा नाम मात्र ले लेने से अपवित्र हो जाने में आये ऐसी व्यवसायी स्त्रियों द्वारा पोषित कला का अनुमोदक कैसे बन गया. इस व्यवहार में स्वयं उसे ही नवीनता लगी। स्नान कर पृथक खड़ा रहनेवाला पवित्र ब्राह्मण किसी भंगिन द्वारा छू जाये

और वह जिस प्रकार लाचार बन बैठे वैसी ही लाचारी हृदयनाथ ने अनुभव की। वह अपने ऊपर सहज ही झुँझला उठा। असावधान मनुष्य पर आक्रमण कितनी सरलता पूर्वक हो सकता है इसका वह स्वयं ही दृष्टान्त बना। किस कारण उसे स्त्रियों के व्यायामसम्बन्धी विचार करने पड़े ? पुरुषों के व्यायाम के प्रति विचार करने का ही कहाँ पूर्ण अवकाश मिलता है कि उसे स्त्रियों के प्रति अपने मन को लगाना पड़े ?

'आपके यहाँ तो नृत्य में दो भिन्न परम्परायें हैं, क्यों ? एक कर्नाटकी और ... " मिस कोलिन्स को बीच में ही रोकते हुए हृदयनाथ ने कहा—

"मुझे इस विषय की जरा भी जानकारी नहीं है !"

"इनके बड़े भाई हैं वे संगीत के अच्छे ज्ञाता हैं।" निरञ्जन ने नयी बीमारी खड़ी की।

"नृत्य और संगीत ये दो पृथक कलायें हैं !" मिस कोलिन्स ने बहुत ही सूक्ष्मता से अपना ज्ञान प्रगट किया।

"हम तो दोनों को इकट्ठा ही समझते हैं।" निरञ्जन को बात बढ़ाने में कोई दिक्कत नहीं होती थी।

"वाद्यों का उपयोग दोनों में ही होता है, इसलिए बहुत से लोगों को ऐसी ही भ्रान्ति होती है। बल्कि संगीत और नृत्य का संयोगी-करण भी करने में आता है।" मिस कोलिन्स नृत्य-संगीत पर भाषण तो नहीं देंगी ऐसा हृदयनाथ को भय हुआ।

"हाँ, मिस कोलिन्स ! ग्रीक नृत्यकला का प्रदर्शन आप कहीं करनेवाली थीं न ?" निरञ्जन को कला के व्याख्यान के बदले कला का प्रदर्शन अधिक रुचता था।

"जी ! उसमें मैं आप दोनों महानुभावों को आमन्त्रित करूँगी।"

सौभाग्य से ही बात यहाँ रुक गयी। मिस कोलिन्स ने अखाड़ा सम्बन्धी प्रश्न किया। अखाड़े के निरीक्षण के लिए उठीं। व्यवस्था देख वह बहुत

खुश हुईं, उन्होंने कितने ही सफल विद्यार्थियों की फोटो भी देखी। एक फोटो में अखाड़े के विद्यार्थी फौजी ड्रेस में बैठे थे। उसे देख मिस कोलिन्स ने पूछा—

"आपका अखाड़ा तो राजनीति से मुक्त है ?"

"किस कारण से मुक्त होना चाहिए ? राजनीति में तो अभी सभी को सम्मिलित होना होगा। अब तो श्वास लेने के साथ ही राजनीति की वायु हृदय में प्रवेश करती है।" व्याख्यान वीर निरञ्जन को बोलने का अवसर मिला।

"मैं तो केवल पूछती हूँ; सरकार आपके अखाड़े को कदाचित शंकित दृष्टि से देखती हो ?"

"देखती ही नहीं देखती है ! परन्तु अब किसी से डरने का समय बीत गया।"

निरञ्जन ने सरकार से न डरनेवाली नवीन युग की वीरता प्रदर्शित की।

मिस कोलिन्स ने शीघ्रतापूर्वक सभी वस्तुओं का निरीक्षण किया। साथ में आई हुई कितनी ही युवतियों ने भी अखाड़े के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। मिस कोलिन्स ने हृदयनाथ से पुनः मिलने की इच्छा प्रदर्शित की और सबने अति प्रसन्न हो बिदा ली।

हृदयनाथ को मर्य्यादा पालन हेतु सबको दरवाजे तक पहुँचाने जाना पड़ा। उसने किसी युवती को मन्द स्वर से कहते हुए सुना—

"यही तुम्हारा हृदयनाथ है क्या ?"

निरञ्जन वृन्दा के साथ बात करता हुआ मालूम हुआ। वृन्दा ने नीचेवाला ओंठ थोड़ा लम्बा करते हुए अपनी अरुचि का भाव प्रगट किया।

१८

प्रत्यक्ष जीवन

मिस कोलिन्स का नृत्य प्रदर्शन में अपने को निमन्त्रण आये तब क्या करना इसकी योजना बनाता हुआ हृदयनाथ अखाड़े के कार्य्यालय में आकर बैठा। विदा होती हुई सुन्दरियों को मोटर में बिठा दिया, इतने पर भी आतिथ्य पूर्ण नहीं हुआ ऐसा समझ मोटरों के रवाना होने के साथ ही हाथ उठा रूमाल हिला भाव की ध्वजा फरफराता निरञ्जन कुछ देर बाद लौटा।

खीझ उत्पन्न करनेवाले वातावरण से छूटकर हृदयनाथ ने एकदम एक प्रभावकारी लेख लिखना आरम्भ कर दिया। निरञ्जन आकर एक आराम कुर्सी पर पड़ गया, उसकी ओर उसने अपना थोड़ा सा भी ध्यान नहीं दिया। किन्तु कुछ ही समय पश्चात् उसकी आँखों के आगे धूँयें का बादल मंडराने लगा। उसने आँखें ऊपर उठायीं। निरञ्जन सिगार पीता हुआ विचारों में खोया सा दीखा।

"फिर यह कब से शुरू कर दिया?" हृदयनाथ ने साश्चर्य पूछा। अखाड़े में धूम्रपान की सख्त मनाही थी। हृदयनाथ के समक्ष भी धूम्रपान की सख्त मुमानियत थी। केवल एकमात्र निरञ्जन ही कितनी ही स्वतन्त्रताओं का उपभोग करता था। वह किसी की शिक्षा ग्रहण करे ऐसा नहीं था। परन्तु हृदयनाथ का मन दुःखी न हो इसलिए कितने ही नियमों का भी पालन करता था। बड़ी कठिनता से वह हृदयनाथ के सामने सिगार न पीने के लिये वचनबद्ध हुआ था। आज वह प्रतिज्ञा भङ्ग हुई थी।

"कल से।" निरञ्जन ने उत्तर दिया।

"क्यों ? क्या किसी महाभारत की योजना गढ़नी थी ?"

"व्यसन एकाग्रता अर्पित करते हैं; विचार बल अर्पण करते हैं, घबड़ाहट दूर करते हैं. ऐसे ऐसे उनके अनुमोदन में तर्क हैं।" इन सबकी ओर संकेत करते हुए हृदय ने पूछा—"ऐसा !"

"हाँ !" मुख में सिगार दबाये हुये ही निरञ्जन बोला।

"तुम्हारी जबान बन्धक पड़ी है ? और किसी दिन तो नहीं आज बोलने में थक क्यों रही है ?"

"मैं अध्यापक बन रहा हूँ। उसमें बहुत बोलना पड़ता है, इसलिये संयम से बोलने का अभ्यास कर रहा हूँ।"

"क्या ? तुम अध्यापक बन रहे हो ?" हृदयनाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, हाँ !" थोड़ा हँसकर निरञ्जन बोला।

"कहाँ ?"

"एक रियासत में।"

"किस कारण ? फिर अपनी संस्था का क्या होगा ? अपना पत्र कौन चलायेगा ? मुझसे अकेले काम नहीं हो सकेगा।"

"तुम बुड्ढे हो गये, क्यों ? इस कारण से अकेले नहीं चलाया जा सकेगा ?"

"ऐसा नहीं ! परन्तु जो उस भील मण्डल की व्यवस्था को मैंने अपने सिर पर ले लिया है उसमें कितनी दिक्कतें सरकार खड़ी कर रही है उसे तो तुम जानते हो ?"

"इसी कारण तो मेरे पिता मुझे रास्ते पर लगाना चाहते हैं।"

"तुम्हें अभी क्या रास्ते पर लगाना बाकी है ? तुम्हारे लिए ही तो रियासत में हाथ फेरकर इतनी बड़ी जायदाद इकट्ठी की है। अब उस प्रायश्चित

के लिए तो उन्हें कुछ सेवा करने के लिए स्वतन्त्र रहने दो।"

"तुम्हारी या हमारी जायदाद किस प्रकार एकत्रित हुई यह बात तो अलग रक्खो। जायदाद माने पाप का ढेर। चाहे वह हमारी हो या तुम्हारी।"

"अपने पिता की तो तुम खूब टीका करते हो ?"

"परन्तु कोई दूसरा उनकी टीका करे इसे सहन नहीं करता।"

"तो फिर भले ही अध्यापकी कर रियासत के नौकर बनकर खाओ।"

निरञ्जन ने सिगार फेंक दी और हँसना शुरू किया।

"तुम्हें आशा है कि मुझसे नौकरी होगी और वह भी राजा के लड़के को पढ़ाने की ? मेरे स्वभाव से तुम परिचित हो ही। मैं तो उसे रोज चपतिया दूँगा !"

"तुम्हारे पिता तुम्हारा स्वभाव नहीं जानते ? ऐसी बिना रुचि की नौकरी में तुम्हें क्यों ढकेल रहे हैं ?"

"यह तो वे ही जाने ! कदाचित तुम्हारे संस्था के साथ लगा रहूँ और इस कारण सरकार की आँखों में आजाऊँ तो ."

"तो तुम्हें नौकरी करानी है ?"

"मेरे पिता को तो नौकरी करनी है न ? उन्हें पेन्शन न मिले, यदि उन्हें राज्य की नौकरी से पृथक कर दिया जाय तब ?"

"केवल इस अखाड़े के साथ सम्बन्ध रखने से ही ऐसा परिणाम होगा ?"

"इसका क्या कहा जाय ? आज मैं सरकार के विरुद्ध भाषण करूँ और कल किसी आफिसर पर बम फेकूँ तो ऐसा क्यों नहीं हो सकता ? मेरे पिता को यही डर है।"

"मेरा व्रत अहिंसा का है। बम फेकने की शक्ति जब आयेगी उस दिन बम फेकने की आवश्यकता ही नहीं होगी। बैर के जहर के नशे में चूर रहनेवाला निर्बल मनुष्य केवल.........."

"यह तुम्हारी मान्यता सभी को मान्य न होगी।"

"जिन्हें मान्य न हो वे अखाड़े से पृथक हो जाँय, यह तो ठीक है। परन्तु नौकरी तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल नहीं। तुम राजा के साथ लड़ पड़ोगे!"

"पिताजी राजा साहब को बचाने के कार्य्य में व्यस्त हैं।"

"राजा को बचाने मे? ऐसा क्यों?"

"राजा के ऊपर किसी के खून करने का आरोप है। उस दिन वह जो दो लड़कियाँ आयीं थीं उन्हें देखा था न। रमा और वृन्दा?"

"वृन्दा जो जाते जाते हमारी ओर मुँह टेढ़ा बनाकर गई थी वही न?" हृदयनाथ को वह दृष्य याद था।

सहज हंसते हुए निरञ्जन ने उत्तर दिया—

"हाँ, वही! थोड़ी चंचल है। उसके पिता और मेरे पिताजी एक साथ सुन्दरपुर के राज्य में दीवान थे। शिकार के बहाने राजा वीरसिंह ने इन लड़कियों के पिता मधुसूदन को मरवा डाला। इस अपराध को प्रमाणित करने का प्रयत्न चल रहा है। मेरे पिताजी ने भी वीरसिंह से ऊबकर उनकी नौकरी छोड़ दी थी। खून का आरोप उपस्थित होने पर फिर वीरसिंह ने उन्हें बुलवाया और मुझे भी अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए नियुक्त करने की इच्छा प्रगट की है। मेरे पिताजी के मन में यह है कि क्रम-क्रम कर मुझे यह दीवान पद मिल जायेगा। अभी मुझे नौकरी करनी नहीं है और पिताजीको मुझसे नौकरी करवानी है?"

"साफ साफ इन्कार कर दो!"

"इन्कार कर दिया था। किन्तु उसका परिणाम क्या हुआ जानते हो?"

"क्या?"

"मुझे एक भी पाई देने से वे इन्कार कर रहे हैं।"

"मानों उनके पाई बिना तुम भूखे ही मर जानेवाले हो।"

निरञ्जन कुछ बोला नहीं। हृदयनाथ ने लेख लिखना शुरू किया। कुछ समय पश्चात् उसने पूछा।

"वीरसिंह की गणना तो बहुत अच्छे राजाओं में होती है। इस समय तो हर एक राजा की बदनामी है परन्तु वीरसिंह के लिए एक भी लाञ्छन का शब्द कोई नहीं कहता ?"

"तुम्हारे अखाड़े और भोलमण्डल को सहायता दी है इसलिए ?"

"नहीं ! उनके राज्य, शासन का निरीक्षण करो ! उनका अपना निजी खर्च नहीं जैसा है और स्वयं भी परिश्रम कर वे उसे पूरा कर लेते हैं। उन्हें तो हम एक साधू मानते हैं।"

"किसी भारी अपराध को ढकने के लिये यह समूचा दिखाव करता है, ऐसा मुझसे कहा गया है।"

"यदि यह बात सत्य हो तो उसके अपराध का प्रचार करना चाहिये। रमा और वृन्दा की माँ क्यों नहीं आगे कदम बढ़ातीं ?"

"वीरसिंह पर कोई ऐसा आरोप लगाने को वे प्रस्तुत नहीं हैं।"

कुछ देर तक दोनों में कोई कुछ बोला नहीं। हृदयनाथ को लेख लिखते हुए पुनः रमा, वृन्दा और उसके पिता का इतिहास स्मरण हो आया। किन्तु इस समय उसने कुछ भी बात नहीं की।

लौटने का समय होने पर निरञ्जन ने कहा—"आज मैं तुम्हारे यहाँ ही भोजन करूँगा और सोऊँगा !"

"ऐसा क्यों ?"

"मेहमानदारी भारी पड़ी क्या ?" हँस कर निरञ्जन ने पूछा।

"तुम्हें कब मेहमान माना है ? जब आओ तब तुम्हारे लिये घर खुला है। परन्तु तुम्हारे पिताजी यहाँ ही हैं और तुम मेरे यहाँ रहोगे ?"

"हाँ।"

हृदयनाथ कुछ बोला नहीं। दोनों वहाँ से चल पड़े। नीचे के खण्ड में विद्यार्थी आकर सायंकाल की कसरत प्रारम्भ कर चुके थे। हृदयनाथ ने अखाड़े की ओर एक बार देखा। सभी लोग अपने व्यायाम में व्यस्थ थे। प्रसन्न हो वह बाहर आया। दरवाजे पर वृन्दा द्वारा बनाया हुआ मुँह उसे स्मरण हो आया।

मुँह इतना अधिक क्यों बनाती है? कितना भद्दा लगता है? उसने इस विचार को मन से जबरदस्ती निकाला और निरञ्जन से बिना बोले घर की ओर बढ़ा। अखाड़े से उसका घर आध मील की दूरी पर था—रास्ता थोड़ा कट जाने पर निरञ्जन ने कहा—"तुम्हारी विचित्रताओं का भी पार नहीं है?"

"क्यों? अब क्या हुआ?"

"घर में मोटर है खाली पड़ी रहती है, फिर भी तुम उसे इस्तेमाल नहीं करते और पैर घसीटा करते हो!"

"इसमें तुम्हारा क्या?"

"मेरा क्या? मेरा पैर आज इतना थक गया है कि एक कदम भी आगे बढ़ना मुश्किल हो रहा है। मोटर मँगाया होता तो बैठ कर जाया जाता न?"

"पहले क्यों नहीं कहा? एक मील चलनेवालों को सवारी पर चढ़ना ही बन्द कर देना चाहिये। परन्तु देखो। वह गाड़ी खड़ी है, किराये की है। कोई हो तो जुतवा लो।"

गरीब दीखते हुए मुहल्ले में एक गाड़ी खड़ी थी। समीप ही एक बड़ी झोपड़ी सरीखा मकान था, उसके मिट्टी से लिपे आंगन में बैठी एक स्त्री रोटियाँ सेक रही थी। स्त्री की उम्र अधिक मालूम पड़ती थी। यौवन और और वृद्धा दोनों में पुरुष की तुलना में स्त्रियाँ प्रथम ही परिपक्व हो जाती हैं। स्त्री के मुख से रक्त की आभा समाप्त हो गयी थी, सर के बाल आधे सफेद हो चुके थे। जीवन में कुछ रस न रह गया हो ऐसी रूक्ष आँखें थीं। वह रोटियाँ

सेंक रही थी। गाड़ी भाड़े पर जा सकेगी या नहीं यह पूछने के लिए आते हुए निरञ्जन तथा हृदयनाथ को उसने नहीं देखा। दोनों खड़े हुए थे कि इतने में वहाँ एक आठ वर्ष का बालक घर के अन्दर से दौड़ता हुआ आया और उस स्त्री के सामने खड़ा हो अत्यन्त प्यार से कहने लगा--

"माँ, मुझे एक पैसा दो !"

इस बालक की वाणी में एक नहीं, बल्कि लाखों पैसा आकर्षण करनेवाली मृदुता उमड़ी पड़ती थी।

रोटी पर से दृष्टि हटा माता ने बालक की ओर देखा, फिर अपनी दृष्टि उसने चूल्हे पर डाल दी।

"माँ ! तुमने कहा था न ? आज एक पैसा न दोगी ?" माता द्वारा प्रदत्त वचन की ओर बालक ने ध्यान दिलाया।

"पापी ! पूरा पेट खाने को तो है नहीं और तुझे पैसा चाहिए।"

बालक को अपमान भासा अथवा नहीं यह कौन जाने ? कदाचित अनुभव के आधार से उसे भी लगा हो कि माता के ऐसे उद्गार में समाये हुए अदृश्य अपमान के पीछे माता का दृश्य हाथ उसके गाल और पीठ को प्यार से सहलाने के लिए शीघ्र गति से आ पहुँचेगा। चबूतरे पर से कूद कर बालक गली में आया और धूल तथा कंकड़ों के साथ खेलने लगा।

माँ और बच्चे की इस वार्तालाप को सुन कर हृदयनाथ का हृदय हिल उठा। जिस समाज में एक भी माता को बालक के प्रति ऐसे उद्गार प्रगट करने का प्रसङ्ग उपस्थित हो उस समाज को चूल्हे में झोंक देना चाहिए। लाखों रुपयों के प्यार से उमड़े पड़ते शब्दों में केवल एक पैसे की माँग के उत्तर में माता के मुख से गाली ! धन को एक स्थान पर एकत्रित कर बैठे हुए धनिकों को देश निकाला देना चाहिए अथवा संसार से ? ऐसी परिस्थिति में बालक जन्मते ही किसलिये हैं ? उसने विचार किया। बालकों का जन्म अपनी इच्छा से नहीं होता। माँ बाप की स्वेच्छा अथवा स्वछन्दता के वे खिलौने हैं।

"क्यों बच्चे यह गाड़ी किसकी है ?" निरञ्जन ने बालक से पूछा।

"मेरी है।" मुट्ठी की धूल गिराता वह बालक बोला।

"परन्तु हाँकता कौन है ?"

"हमारा बाप।"

"वह कहाँ है ?"

"कौन जाने ?" नङ्गी जाँघ पर कंकड़ों का ढेर रखते हुए वह बालक बोला।

"इससे क्या पूछते हो ? हम दूसरी गाड़ी कर लें।" कहकर हृदयनाथ उस बालक के पास जाकर एक रुपया उसके हाथ में दिया।

बालक रुपया लेते हुए चमका। थोड़ी दूर बैठी उसकी माँ ने भी देख लिया। इतने में उसने रास्ते की ओर उँगली से इङ्गित करते हुए कहा—

"वह बापू आ रहा है।"

१६

सुरा

धूल में घिसराता साफा माथे पर बाँधने का प्रयत्न करता लड़खड़ाते पैरों भयभीत गति से एक आदमी आता दिखलायी पड़ा। हृदयनाथ और निरञ्जन उसके सामने गये। पहले तो उन्हें समझ में नहीं आया कि यह आदमी ऐसी विचित्र चाल से क्यों चल रहा है। उन्हें लगा कि वह बीमार जैसा है।

"कुछ नहीं साहब! आप साहब हैं न? साहब सलाम।" थोड़ा आँखों को स्थिर कर वह गाड़ी वाला बोला।

"इसे क्या हुआ है? देखो, गिर पड़ेगा?" निरञ्जन ने कहा।

"मुझे कुछ हो नहीं सकता। मैं गिरने वाला नहीं हूँ। मैंने दारू नहीं पी है। साहब, निश्चय रखिये मैं झूठ नहीं बोलता।"

गाड़ी वाले के भरोसा देने पर भी दोनों के समझ में तुरन्त आ गया कि यह आदमी दारू के नशे में बकवाद कर रहा है। उन्माद में वह व्यसन सेवन नहीं किये हैं ऐसा समक्षवालों को समझाने का प्रयत्न करता है।

दोनों ने एक दूसरे को देखा। शराब के प्रति तथा शराब पीये व्यक्तियों के प्रति उन्होंने बहुत देखा और सुना था, परन्तु शराबी के समक्ष खड़े होने का यह पहला अवसर उनके जीवन में उपस्थित हुआ था। निरंजन के प्रति हृदयनाथ को शंका रहती कि समय बे समय वह शराब पीता है। निरंजन शोक के लिये अथवा केवल दूसरों से पृथक होने के लिये कदाचित् वैसा करता भी हो। परन्तु स्वादिष्ट फ्रेन्च अंगूरी शराब और देशी ठर्रा पीने में अत्यधिक अन्तर होता है। निरंजन भी इस व्यक्ति को देख चकित हो उठा। इतने में पीये हुये गाड़ीवाले ने निरंजन के गले में हाथ डाल दिया और बकने लगा—

"साहब के गले में हाथ है मैं झूठ नहीं बोलता....झूठ नहीं बोलता ... ।" उसका विचार शिथिलता से अग्रसर होने के कारण उसका उच्चारण भी स्पष्ट नहीं हो रहा था। निरंजन ने उसके हाथ को गले से खींचकर निकाल दिया। उसे तिरस्कार मालूम हुआ। परन्तु शराबी इतनी जल्दी छोड़नेवाला नहीं उसने एक के बदले दोनों हाथों को गले में डाल दिया और निरंजन से उलझ पड़ा।

"मर जाऊँगा परन्तु छोड़ूँगा नहीं। मुझे शराबी कहनेवाला तू कौन? साहब, तुम्हारे घर का...।" गाड़ीवान ने बकना शुरू किया। मद्यपीने की मस्ती में भी मायावाद की कुछ छाया रहती हुई मालूम देती है। वह रस्सी को साँप मानता है इतना ही नहीं, परन्तु रस्सी जहाँ नहीं होती वहाँ भी सर्प मानता है। वह नये सृष्टि की रचना कर सकता है। निरंजन ने क्या अपराध किया था कि उसे छोड़ने से उस शराबी ने इन्कार कर दिया? उसने पी है, यह निरंजन ने कब कहा था? निरंजन ने साहब होने की बड़ाई कब हाँकी थी? निरंजन ने कुछ ऐसा नहीं कहा था। फिर भी मस्ती में भरा गाड़ीवान निरंजन ने ऐसा कहा है मान कर ही बकने लगा। नशे में जैसा वह बोलता था वैसा ही मानता था।

अन्धेरा होना शुरू हुआ था। रोटी सेंकना छोड़ कर वह स्त्री दौड़ी हुई आई। हृदयनाथ ने झटके से गाड़ीवान से निरंजन का गला छुड़ाया इससे वह गिरता पड़ता हृदयनाथ पर हमला करने झपटा हृदयनाथ ने उसे हल्का सा धक्का दिया। हल्का धक्का ही उसके लिए बहुत हो गया। वह धड़ से जमीन पर गिर पड़ा।

"मदिरा ने सबका जीवन नष्ट कर दिया।" गाली दे कर अपना अधिक से अधिक विरोध प्रगट करने के पश्चात् वह स्त्री वहीं नीचे बैठ गयी और मातृ वात्सल्य से उसके शरीर पर की धूल झाड़ा और उसे बैठाने का प्रयत्न करने लगी। गाड़ीवाला बड़बड़ा रहा था।

"मुझे शराबी कहनेवाला वह कौन?" यही एक वाक्य बराबर उसके मुँह

से निकल रही थी। कुछ देर उसे बैठाने का प्रयत्न कर थकी स्त्री ने कपाल पर हाथ मारा और बड़े ही कष्ट से बोली –

"अब मैं इसे कैसे ले जाऊँ ?......अरे देख न ! कोई हो तो बुला !" दूर खेलते हुये अपने लड़के से उसने कहा।

"लाओ, मैं पहुँचा दूँ !" हृदयनाथ को उस स्त्री पर दया आई।

"नहीं, नहीं भाई ! आप जैसे बड़े आदमी से कैसे कहा जाय ? आप जाइये।"

पापी को, अपराधी को, अस्पृश्य को भले आदमी का सहारा दिया जा सकेगा ? उनकी स्वच्छता, उनकी इज्जत क्या घट न जायेगी ? किन्तु हृदयनाथ को ऐसी अच्छाई में रुचि नहीं हुई। व्यसनी-पापी की सहायता के लिये वह अधीर हो उठा। उस स्त्री की प्रार्थना उसने नहीं सुनी और उसे स्वयं उठाने लगा।

शराब पी पृथ्वी पर गिरे हुये मनुष्यों को खड़ा करना और एक पतित हुये महा नगर को विकसित करना एक सरीखा कठिन कार्य है, ऐसा हृदयनाथ को लगा। क्या सार है ? गिरे को गिरा ही रखना अथवा उबारना ? समस्त संसार के सम्मुख यह महान प्रश्न उपस्थित है।

उसका मुँह ऊपर की ओर ऊँचा किया गया, इतने में उसका हाथ मानो कट पड़ा हो इस प्रकार पृथ्वी पर लुढ़क पड़ा। हाथ को ठीक ढङ्ग से रखने की कोशिश की कि इतने में उसका सिर ढलँग गया। कमर से पकड़ कर उसे बैठाया गया कि कमर के साथ उसका पैर भी उठ गया और पैर दबाया गया तब उसका हाथ हृदयनाथ के मुँह पर पड़ा। हृदयनाथ झुंझला उठा, इस कारण उसने चिढ़ कर उस गिरे हुये व्यक्ति को गोद में उठा लिया और अपने शरीर से लगाये हुये उसके घर तक ले गया। निरंजन और उसी प्रकार गाड़ीवान की पत्नी दोनों ही आश्चर्यचकित हो उठे। गाड़ीवान शरीर से काफी ऊँचा और वजन में काफी भारी था, सूतक्ला का अपना जीवन व्यसन में

नष्ट करते हुये भी अभी लड़कपन के समय की शक्ति उसके भार में पूरे रूप से विद्यमान थी।

टूटी रस्सियों का एक खटोला सहन में पड़ा था, उस पर एक फटी गुदड़ी पड़ी थी। उस स्त्री ने नम्रता पूर्वक थोड़ा आगे बढ़ खटोले को ठीक कर दिया तथा हृदयनाथ ने गाड़ीवान को उस पर सुला दिया। गाड़ीवान बड़बड़ाता ही जाता था।

"मुझे कुछ कहनेवाला वह कौन? वह समझता क्या है? मुझे मनुष्य का खून कर डालने में क्या डर लगेगा? कितनों को मार डाला।"

"बहुत हुआ अब। मुँह बन्द करो। बिना बोले सो जाओ।" उस स्त्री ने उठने की कोशिश करते हुये गाड़ीवान को दबा पुनः सुलाते हुये कहा।

अन्दर से दो तीन लड़कों के रो उठने की आवाज आई। वह स्त्री पति को दाबे हुये बैठी थी। दया और वात्सल्य से भरे हुये उसके नेत्रों में किंचित रोष उत्पन्न होता जान पड़ रहा था।

खटोले के नीचे से एक बड़ा सा मैला कुत्ता बाहर निकल आया। कान फड़फड़ा, शरीर कँपा, पैर लम्बा कर उसने आलस्य मिटाया और जीभ निकाल खटोले से सटकर खड़ा हो गया। अचेत बने जीभ और आँखों को धीरे-धीरे बन्द करते हुये गाड़ीवान के मुख की ओर उसने देखा और अपनी पूँछ धीरे-धीरे हिलाने लगा। ऐसे शराबी गाड़ीवान के दो प्रेमी थे। एक उसकी पत्नी और दूसरा उसका कुत्ता। इन दोनों में से कोई इस समय भी उसका तिरस्कार नहीं कर रहा था। हृदयनाथ का मन इस समय कुछ और ही अनुभव कर रहा था। मनुष्य की पामरता और अधमता, जैसा आज उसने प्रत्यक्ष आँखों से देखा वैसा कभी उसने अपने जीवन में नहीं देखा था। साथ ही साथ पामरता को भी प्रेरित करनेवाला प्रेम भी संसार में हो सकता है इसका उसे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। निर्बलता का तिरस्कार करनेवाला हृदयनाथ किस प्रकार नम्रता का अनुभव करने लगा।

"क्यों, अब चलना है न?" निरञ्जन ने पूछा।

"हाँ भाई, आप जायें ! यदि आज आप न होते तो मुझे बड़ा कष्ट होता।" उस स्त्री ने आभार प्रदर्शित करते हुये कहा।

किन्तु हृदयनाथ के पैर उठे नहीं। उसे कुछ कहना था। वह एक स्त्री के सामने खड़ा है यह वह भूल गया था, इसका उसे अब ज्ञान हुआ। वह सकुचा गया, और मानों बोलते हुये सकुचा रहा हो इस प्रकार एकाएक बोल उठा—

"तुम्हें कुछ चाहिये ?"

"नहीं साहब।"

"परन्तु तुम्हारे पास पैसा तो है नहीं ?"

"आपने कैसे जाना ?"

"अपने बच्चे को तुम पैसा नहीं दे सकी इस कारण ! मैं तुम्हें कुछ दे जाऊँ ?"

"नहीं साहब, नहीं ! किसी का दिया पैसा कहाँ तक चलेगा ? माथे जो पड़ेगा भोग लूँगी। आपकी दया है यही बहुत है।"

"नहीं नहीं। यह दस रुपया रख लो।"

"मेरे घर से दस हजार चला गया तो इस दस से क्या होगा ?"

निरञ्जन और हृदयनाथ एक दूसरे की ओर देखने लगे। इसके घर में दस हजार रुपया था और वह खत्म हो गया ? यह कौन है ?

धीरे-धीरे अंधेरा होने लगा था। दोनों कुछ बोले बिना आगे बढ़ने लगे। मुहल्ले के बाहर निकलते ही संध्या-काल की सड़क की रोशनी के निकट से छिप कर कोई युवती जाती हुई दिखलायी पड़ी। उसके हाथों में तपेली जैसा कोई बर्तन था।

"इसे कहीं देखा है ?" हृदयनाथ ने पूछा।

"हाँ ! आज सुबह ही।" निरञ्जन ने उत्तर दिया।

"कहाँ ?"

"अपने अखाड़े में !"

ओंठ सिकोड़ती हुई वृन्दा का मुख हृदयनाथ को याद आया।

"यह तो बृन्दा है न ?"

"हाँ ! कैसे भुलक्कड़ हो ? इतने में भूल जाते हो ?"

"इस प्रकार ऐसे अंधेरे में क्यों जा रही है ?

"देखा नहीं। उसके हाथों में बर्तन है !"

"हाँ देखा। परन्तु वह क्या लेने जा रही है ?"

"दूध लेने। इतना भी समझ में नहीं आता। तुम्हें तो डम्बल्स और लेजिम के सिवाय और किसी बात की जानकारी ही नहीं है !"

"यह क्यों दूध लेने जाती है ? यह तो कॉलेज में है न ?"

"हाँ ! परन्त कॉलेज में क्या दूध मिलता है ? जहाँ दूध मिलता है वहाँ से लाती है।"

"इसे स्वतः क्यों जाना पड़ता है ?"

"तुम्हीं सोचो। घर में नौकर न हो तो क्या करे ?"

साधारण वस्त्र धारण करने के कारण परिचित निरञ्जन को देख, थोड़ा सकुचा कर जाती हुई बृन्दा कहीं अदृश्य हो गयी। उसे भी थोड़ी शर्म लगी होगी, नहीं तो वह अपने स्वभाव के अनुसार बोले बिना नहीं रहती। क्य इसकी इतनी अधिक गरीब स्थिति है कि उसे गृहस्थी कार्य्य के लिए स्वयं बाजार जाना पड़ता है ?"

जो हो मुझे क्या ?—इस प्रकार मन को सान्त्वना दे हृदयनाथ ने अपनी विचारधारा को बदल दिया।

हृदयनाथ के नियमित जीवन क्रम को झकझोर डाले ऐसा प्रसङ्ग आज उपस्थित हो गया था। गाड़ी नहीं मिली इसलिये समूचे संसार की दरिद्रता पर थाप देता थका निरञ्जन भी हृदयनाथ के साथ-साथ चलने लगा।

२०

रस भङ्ग

अरविन्द फोटो की ओर देखता हुआ बैठा था। उसके समूचे यौवन का इतिहास इस फोटो में लिपि बद्ध था। वह बकुल की—मृत बकुल की—फोटो थी। बकुल की मृत्यु हो सकती है? बकुल को उस घर में फिरती हुई वह नहीं देख सकता? उसका मधुर स्वर क्या वह सुन नहीं सकता? स्वाभाविक आँख मींचती उसके पास बैठी पहले के ही समान क्या बकुल बातें नहीं करती? निःसन्देह, एक दिन भी ऐसा नहीं बीतता था कि बकुल उसे दिखलाई न पड़ी हो।

तब, बकुल की मृत्यु हो गयी, ऐसा कौन कहता है? सभी! अरविन्द स्वयं भी विदीर्ण हृदय से ऐसा ही कहता है। बकुल का हाथ पकड़े धड़कते हृदय से वह उस दिन बैठा हुआ था और बकुल ने जो आँख मूँदा फिर खोला ही नहीं। तब उसने उससे क्या कहा था? अरविन्द उक्त स्मरण से थरथरा उठा। उस क्षण पश्चात् से बकुल को वह ढूँढ़ता है, फिर भी वह दिखाई नहीं पड़ती; उसे पुकारता है, लेकिन वह सुनती नहीं; उसके साथ वह बात करता है, किन्तु उससे बातें नहीं होती। यह कैसी विचित्रता? दिखलाती हुई फिर नहीं दिखलाती। सुनाई पड़ते हुये नहीं सुनता! बकुल क्या धुयें की पुतली बन गई? बकुल दिखलाती है लेकिन उसके बीच इतना अन्तर क्यों मालूम होता है? उसका स्पर्श होता है परन्तु वह स्पर्श नहीं हुआ ऐसा खाली खाली क्यों प्रतीत होता है? उसकी बात सुनायी पड़ती है, किन्तु मालूम होता कि वह शुक्र अथवा मंगल ग्रह में से बोल रही हो इस प्रकार की भनक मात्र का क्यों भाव होता है? यह क्या हो गया?

अरविन्द उदास हो गया। उसने बकुल के फोटो की ओर दृष्टि की। वह एकदम चिल्ला उठा—

"बकुल, बकुल ! तुम कहाँ गईं ? मुझे छोड़ कर क्यों चली गईं ?"

उसकी आँखें डबडबा आईं। उसका कण्ठ रुंध गया।

दो बच्चे बाहर लड़ रहे हों ऐसी आवाज एकाएक उसे सुनायी पड़ी। उसके साथ दूसरी आवाज भी मिश्रित थी। आवाज एकत्रित हो आगे बढ़ते हुई उसके कमरे के दरवाजे के निकट आने लगी। संसार दुःख भोगने का भी अवकाश नहीं देता !

शशिकान्त और सुहासिनी को पकड़े तीन चार नौकर आये। दोनों नौकर जोर-जोर से चिल्लाकर रो रहे थे। चिल्लाने और रोने का जब मिश्रण हो जाता है तब प्रलय के मेघ के गर्जन सरीखा प्रभाव सुननेवाले के मन में उत्पन्न होता है।

"क्या हुआ ?" ऊँचे स्वर से अरविन्द ने पूछा।

दोनों बालक और साथ आये हुये नौकरों ने एक साथ ही कारण बतलाना शुरू किया। अरविन्द की समझ में कुछ नहीं आया।

"तुम सब लोग एक साथ मत बोलो। शशि ! तुम कहो, क्या हुआ ? झगड़ा तुमने किया है न ?"

"नहीं, जी !" सभ्यता के मर्य्यादा में 'जी' कहने वाली आदत की रक्षा मात्र करते हुये शशि बोली।

"बकु का बिस्कुट बहिन छीन रही थी।"

"मैं कहाँ छीन रही थी ? बकु रो रहा था इसलिये मैं उसके पास छिटके बिस्कुटों को उसे देने जा रही थी।" सुहासिनी ने अपने पर लगते हुये आरोप को पूरा सुने बिना ही बचाव किया।

बकु और बचु ये छोटे भाई-बहिन की जोड़ी थी।

"पिता जी, यह झूठ बोल रही है। मैंने इसे छीनते हुये देखा था।" शशिकान्त ने अपनी ओर से प्रमाण उपस्थित किया।

"मैं झूठ बोलती हूँ?" सुहासिनी से आरोप सहन नहीं हुआ। रुदन में पुनः ज्वार आया। रोते-रोते उसने कहा।

"जब तब यह ऐसा ही करता है। कल मोटर में इसने क्या किया था पूछिए जमादार से?"

लड़ाई का इतिहास बिस्कुट से मोटर तक, और आज से बीते हुए कल तक बढ़ा डाला गया। विग्रह तथा सन्धि यह बालकों का कार्य-कलाप नित्य का प्रसङ्ग है। जितनी शीघ्रता से बालक विग्रह खड़ा करते हैं, उतनी ही बल्कि उससे भी तीव्र गति से वह संधि भी कर सकते हैं। विग्रह और सन्धि दोनों में प्रवेश करने में भयभीत होते हुए राष्ट्रों को बालकों से इस विषय में बहुत कुछ सीखना है।

परन्तु अरविन्द को बिस्कुट तथा मोटर वाली दोनों बातों में से एक भी बात लड़ाई करने जितनी महत्व की नहीं लगी। दोनों पक्षों की साक्षी ले, अन्त में निर्णय दे, किसी को अपराधी ठहराने वाली थोड़ी सी भी प्रवृत्ति अरविन्द की नहीं हुई। उन्होंने दोनों को चेतावनी दी।

"तुम दोनों बड़े हो। जब तुम्हीं इस प्रकार आपस में लड़ोगे तो कैसा दीखेगा? यदि अब इस प्रकार से कभी लड़े तो.........तो....... मैं कुछ भी ला कर नहीं दूँगा?" क्या सजा देनी चाहिए इसका निश्चय न कर सकने के कारण अरविन्द ने ऐसा कहा। बालकों की लड़ाई का इस प्रकार निपटारा होता है। कोई उनका पूरा विवरण सुनता नहीं, और सच्चा कौन है झूठा कौन है इसका निर्णय हुए बिना ही दोनों को ही दोषी में गणना कर चेतावनी देते हैं। दोनों ने समझा कि उनके प्रति अन्याय हुआ है। मुँह चढ़ाये दोनों बाहर निकले और अन्याय की एकता से ग्रसित दोनों अपनी पहले की हुई लड़ाई भूलकर परस्पर सहानुभूति का अनुभव करने लगे। बाहर निकलने के साथ ही सुहासिनी ने कहा—

"चलो शशि ! हम लोग सायकिल चलायें।"

"हाँ, चलो !" कह शशिकान्त ने सुहासिनी के हाथों में अपना हाथ दिया। पंजे से पंजा मिला दोनों दौड़ते हुये चले गये। दो तीन क्षण में उनका अट्टहास समूचे मकान में गूंज रहा था।

अरविन्द थक गया। उसने पुनः फोटो की ओर देखा। बकुल के जीवन काल में इस प्रकार की लड़ाई हुई हो ऐसा उसने कभी सुना न था। बालकों का केवल मोहक रूप ही उसकी दृष्टि में आता था। उनका यह विचित्र और बिभत्स रूप माता के हृदय में समाया रहता। फिर अब कोई बालक रोयेगा अथवा लड़ेगा इसकी चिन्ता करता हुआ अरविन्द समीप के एक पलङ्ग पर लेट गया।

लेटते ही पलङ्ग में से धूल उठी। स्वच्छता के अत्यधिक आदी अरविन्द को धूल असह्य हो उठी. इस पलंग की कितने दिनों से सफाई नहीं हुई इसे कौन जाने ? नौकर को रोज साफ करना चाहिए, लेकिन उसने क्यों नहीं किया ? अब नौकर भी लापरवाह हो गये हैं ऐसा उसे लगा क्योंकि कोई उन पर देख रेख नहीं रखता ! उसने विचार किया। साथ ही साथ मन में दूसरे विचार भी स्फुरित हुए।

परन्तु कौन देख रेख रक्खे ?

बच्चे छोटे हैं। उनकी ही देख भाल करने का प्रश्न कठिन था। हृदयनाथ को उसके अखाड़े के सिवा और कुछ सूझता ही न था। गद्दा साफ न होगा तो वह कहेगा कि गद्दे के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। स्वयं उसे क्या कठिनाई पड़ती है उसका ही उस अनुभवहीन व्यक्ति को ध्यान है क्या ?

एक कोने में कुछ खड़खड़ाहट हुई। अरविन्द ने अपनी दृष्टि उधर घुमाई। एक दराज थोड़ी खुली रह गयी थी उसमें एक चूहा घुसने की कोशिश कर रहा था। एकदम वह उठा। इस दराज में उसका रेशमी कपड़ा भरा हुआ था। उसे चिन्ता हुई। कपड़ों का उसे अत्यधिक शौक था। चूहा

ने उसके कपड़ों को कितना अधिक नष्ट किया होगा इसकी कल्पना कर वह घबड़ा उठा। वह दराज की चाभी खोजने लगा। मेज के खाने को अच्छी तरह से खोजा, जहाँ जहाँ ताली रक्खे जाने की सम्भावना थी उन सभी स्थानों को उसने देखा, किन्तु ताली न मिली।

उसने घन्टी बजायी, परन्तु कोई नौकर न आया। पाँच मिनट पश्चात् उसने फिर घन्टी बजायी। उसका भी पूर्ववत् ही परिणाम निकला। उसने दो मिनट तक लगातार घन्टी बजाना चालू रक्खा। परन्तु उसके कमरे के बाहर मानो घन्टी की आवाज पहुँचती ही न हो, इस प्रकार से किसी के द्वारा उसे घन्टी का उत्तर नहीं मिला। दरवाजे पर भी घन्टी के आज्ञा की अमान्यता होने लगी। अरविन्द को जागता देख भागा हुआ चूहा, घन्टी बजती रहने पर भी किवाड़ पर चढ़ अन्दर घुसने लगा।

अरविन्द उठकर दरवाजे पर गया। दरवाजे पर एक नौकर से वह टकरा गया।

"तुम सब बहरे हो गये हो ?" अरविन्द ने प्रश्न किया।

नौकर सचमुच बहरा बना हुआ था। मानो अरविन्द की वह कल्पना सत्य हो रही हो। क्योंकि नौकर ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"दराज की ताली कहाँ है ?"

"सरकार, ताली का हाल तो गोविन्द जाने। कपड़ों की सम्हाल वह करता है।" नौकर ने कार्य विभाग की व्यवस्था का ध्यान दिलाया।

"गोविन्द को बुलाओ !"

"गोविन्द आज नहीं आया है।"

"क्यों नहीं आया ?"

"यह तो मुझे नहीं मालूम।"

तुम्हें ताली का हाल नहीं मालूम, गोविन्द क्यों नहीं आया, यह भी नहीं

मालूम, तब तुम्हें मालूम क्या है ? नौकरों पर कदाचित् ही क्रोधित होने वाला अरविन्द चिल्ला चिल्ला कर नौकर से प्रश्न करने लगा। उसका उस समय क्रोध करना नौकर की दृष्टि में अकारण था। परन्तु यदि लोग एक दूसरे के दृष्टि विन्दु को पहचान लिया करें तो फिर संसार में एक दूसरे का झगड़ा रहे ही क्यों ? अरविन्द का दृष्टि विन्दु कोई समझे ऐसा इस समय कौन था ?

"सरकार ! मैं तो बाहर का काम काज करता हूँ !"

"जाओ। अभी साथ में गोविन्द को लिवा लाओ।"

"उसका घर........"

"बको मत। एक अक्षर भी बिना बोले जो मैं कहता हूँ करो !"

कुछ विचार में पड़ नौकर चला। उसके चाल में जितने गति की आवश्यकता थी उतनी नहीं दीख पड़ी। इस कारण अरविन्द चिल्ला उठा—

"जल्दी जाओ और किसी को यहाँ बैठा दो।"

नौकर दौड़ पड़ा। अरविन्द कमरे में झूले पर बैठा। दराज कुतरता चूहा उस समय भाग गया था अरविन्द को मानों वह चिढ़ा रहा था।

अरविन्द को असह्य खिन्नता उत्पन्न हुई। कमरा सुनसान लगा। उसने बगीचे की ओर देखा। सुनसान आकाश उसे ढाँकता हुआ दिखाई पड़ा। कोई पक्षी भी वहाँ उड़ता हुआ नहीं दिखाई दिया। उसका जीवन भी उसे आकाश सरीखा विशाल और शून्य सा लगा। मनुष्यों से भरे घर और संसार इन दोनों में कोई सत्व या कोई सत्य उड़ गया हो ऐसा उसे दृष्टिगोचर हुआ। माया से परिपूर्ण परछाईं सदृश्य संसार में वह अकेला उड़ता हुआ गिर गया हो, ऐसा वह घबड़ा गया। गिरते हुए मनुष्य को आधार नहीं मिलेगा यह जानते हुए भी आधार के लिए हाथ फैलाता है। उड़कर गिरते हुए अरविन्द ने थोड़ा हाथ फेंका। यह हाथ तकिये पर पड़ा। तकिये के नीचे लोहे के जंजीर

सरीखी कोई वस्तु झनझना उठी ! तकिया उठा कर देखा तो उसे तालियों का गुच्छा दिखाई पड़ा।

इस गुच्छे में ही दराज की ताली होगी ऐसी उसकी धारणा हुई। धारणा सत्य हुई। दराज के निकट जा कर उसमें दो तीन तालियों के लगाते ही एक ताली से वह खुल गया। दराज खुलते ही मानों नोट उड़ रहे हों ऐसा उसे लगा। उसने कभी कपड़ों को तहाया अथवा रक्खा न था। उसे नवीनता लगी एक कपड़ा उसने उठाया। दस बारह झींगुर दौड़कर इधर उधर छिप गये। किसी अनजान शत्रु ने उनके अधिकार पर आक्रमण किया था।

अरविन्द को बड़ा दुःख हुआ। कपड़ों को चाट डाला क्या ? हजारों रुपये के रेशमी वस्त्र थे। अच्छी से अच्छी कुशल बुनाई, सिलाई का नमूना उसमें था। इस तुच्छ झींगुर ने अनधिकार दराज में बैठ कर इन सब वस्त्रों को नष्ट भ्रष्ट कर डाला होगा। उसने दूसरा कपड़ा उठाया। बीच वाली परत खोल कर देखा। दोनों कपड़ों को बाहर निकाला। उसे यत्न पूर्वक खोल कर देखा। कला के नमूने समान इन कपड़ों में चित्र-कला के सम, विषम, चौरस, गोल ऐसे नये नये प्रकार की डिजाइनें उसने देखा।

'कपड़ों को चाट डाला !'' वह कह उठा।

झींगुर और चूहों के बच्चे कुछ दूसरी ही धारणा कर रहे थे। जिस स्थान में उनका जन्म हुआ, जिस स्थान में वे बड़े हुये, उस स्थान पर किसी दूसरे का अधिकार किस प्रकार हो सकता है ? जन्मसिद्ध परम्परा को भोगना यह प्रकृति का नियम नहीं है क्या ? किसलिये यह अनजाना राक्षस उन्हें दुःख दे रहा है।

एक एक कपड़ा अरविन्द निकालने लगा। अपने मालिकाने वाले मकान की जाली, दरवाजा, खिड़की, प्रवेश-द्वार इन सब को बन्द करने का मनुष्य को अधिकार है। फिर चूहों को क्यों नहीं है ? उन्हें मात्र जीवन की आवश्यकता है परन्तु मनुष्यों की धारणा वैसी नहीं है। कपड़ों की बरबादी से दुखित हुआ अरविन्द कपड़ों को खोल खोल कर देखता हुआ दूर फेंकता जा रहा

था। कुछ ही समय में अरविन्द ने निरुपयोगी हुये वस्त्रों का एक बड़ा ढेर लगा दिया। ढेर की ओर उनकी नजर गयी। उसका सारा शरीर दुःख रहा हो ऐसा उसे मालूम हुआ।

एक नौकर ने पीछे से आकर सूचना दी—

"कोई मिलने आया है।"

"कौन है ?"

नौकर ने कार्ड दिखलाया। वकील मनमोहन राय और वैसे ही दूसरे कितने परिचित व्यक्ति उससे मिलने आए थे। उसे तेज सिर दर्द होने लगा था। दीवानखाने में जाकर मुलाकात करने की शक्ति जैसे उसमें न रही हो ऐसा उसे लग रहा था। निजी कमरे में बुलाने में हानि क्या है ? बकुल के साथ ही उसका गृहस्थ जीवन क्या अदृश्य नहीं हो गया ?

"यहीं बुला लाओ।"

"यहीं ?" नौकर ने आश्चर्य्य चकित हो पूछा।

"हाँ कोई हानि नहीं। सभी परिचित हैं।"

नौकर चला गया। अरविन्द ने दराज उसी प्रकार खुला छोड़ दिया। वस्त्रों का ढेर ज्यों का त्यों उसने रहने दिया और आगे बढ़ कर अतिथियों की प्रतिक्षा में खड़ा हो गया।

२१

असह्य एकान्त

वकील मनमोहन राय तथा साथ ही अरविन्द के चार मित्रों ने उनके कमरे में प्रवेश किया। अरविन्द ने खड़े होकर वकील साहब का स्वागत किया। रम्भा के साथ हृदयनाथ के विवाह की वार्ता भङ्ग होने के पश्चात् भी उन बातों को भुला कर उसके पिता उससे मिलने आये हैं इसका कारण अरविन्द की समझ में नहीं आया। सम्मानित व्यक्ति ऐसे निजी बातों की अपेक्षा कर सकते हैं। मनमोहन राय एक प्रतिष्ठित नागरिक हैं।

"आइये! आज आपने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की!"

"बहुत दिनों से आपका दर्शन करने का मेरा विचार था। आप अस्वस्थ रहते हैं मैंने सुना था इसी कारण आपसे मिलने की इच्छा थी।"

"अनेकों धन्यवाद विराजिये!" कहकर अरविन्द ने सबको बैठाया।

एक दूसरे ने परस्पर कुशल क्षेम पूछा। देश के राजनीति-आन्दोलन पर विचार-विमर्श हुआ, नेताओं की टिप्पणियाँ हुईं, बढ़ती हुई महँगी का प्रभाव किसी के शरीर पर दिखलायी न देने पर भी उसका खूब उल्लेख हुआ, किसानों को एक कौड़ी की भी सहायता न करने पर भी उनके दयनीय स्थिति पर निःश्वास भरे उद्गार निकाले गये; और भी ऐसी ही कितनी सभ्य समाज योग्य वार्तायें हुईं, अपरिहार्य चाय के अधिकार की पूर्ति की गयी। पश्चात् मनमोहन रायजी लौटने के लिये प्रस्तुत हुये।

अरविन्द द्वार तक उन्हें पहुँचाने के लिये आये, वहाँ दोनों ने हाथ मिलाया। हाथ मिलाते ही मनमोहन राय बोले—

"आपको तो बुखार मालूम होता है। किसी डाक्टर को दिखाइये।"

मनमोहन राय की सम्मति के प्रति आभार प्रदर्शन कर अरविन्द कमरे में लौट आये। उन्हें लगा कि सचमुच तबियत ठीक नहीं है। मित्रों से क्षमा माँग वे झूले पर लेट गये और कम्बल ओढ़ लिया। मित्रों ने घर लौटने की इच्छा प्रगट की पर अरविन्द ने मना कर दिया। उन्हें अधिक उदास लगने के कारण मित्रों की उपस्थिति अच्छी लगी। उनका एक घनिष्ठ मित्र उनके पास जाकर झूले पर बैठ गया, और माथा दबाने लगा। दूसरे मित्रों ने वार्तालाप जारी रक्खा।

"अरविन्द ! तुम्हें जीना है या मरना ?"

"दोनों में एक भी हमारे हाथ में है क्या ?" अरविन्द ने प्रश्न किया।

"दोनों ही तुम्हारे हाथ में है। यदि मरना हो तो चटपट आत्म-हत्या कर फैसला कर डालो और यदि जीना हो तो भले आदमियों की तरह जीओ !"

"मैं जी रहा हूँ ऐसा तुम लोगों को नहीं मालूम होता ?"

"नहीं, जरा भी नहीं ! तुम्हारी मिलन-सारिता कहाँ गई ? तुम्हारा शौक कहाँ गया ? तुम्हारा संगीत कहाँ गया ? तुम्हारी हँसी कहाँ गई ? एकदम नीरस हो गये हो !"

"वह सब बकुल के साथ चला गया !" फीकी हँसी हँसते हुये अरविन्द ने कहा।

"तुम्हारे प्रेम पर मैं चोट नहीं पहुँचाना चाहता, परन्तु मनुष्य को जब तक जीना है तब तक उसे व्यवहार शून्य नहीं होना चाहिये, इसे तो तुम मानोगे न ?"

"इस कारण तुम सभी का यह कहना है कि मुझे फिर विवाह करना चाहिये, यही न ?" अरविन्द ने थोड़ा गंभीर होकर कहा।

"निश्चय ! इसके सिवाय दूसरा उपाय क्या है ? इस अपने घर को देखो ! अपने कमरे को देखो ! उस कपड़े के ढेर को देखो !"

"इसके सिवाय, तुम्हारा मुनीम मुझे अभी नीचे मिला था। वह कह रहा

था कि नौकर चीजों को चुरा ले जा रहे हैं। रसोइयाँ बहुत अधिक सामान नष्ट करता है, बालकों की धाय रोज दो-चार वस्तुयें खो देती है।" दूसरे मित्र ने कहा।

"ऐसे नौकरों को बदल कर दूसरे नेक नौकर रख लूँगा।" अरविन्द ने उत्तर दिया।

"भाभी के मरने के बाद क्या कम नौकर बदले गये? नौकरों द्वारा क्या घर का प्रबन्ध हो सकता है? ऐसा तुम सोच सकते हो?"

दराज भर कपड़े झीगुंर चाट गये उसकी अरविन्द को याद आई। फिर भी उसने उत्तर दिया—"घर का इन्तजाम करने के लिये मैं विवाह करूँ? नौकरों पर हुकुम करने के लिये एक हाउस कीपर की आवश्यकता होने के कारण मैं विवाह करूँ? आप लोगों ने क्या समझा है?"

"इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विवाह करना भी पड़ता है! परन्तु हम लोग जो आग्रह कर रहे हैं उसके अनेकों कारण हैं!"

"उन कारणों को आप लोगों ने मुझे एक क्या सैकड़ों बार समझाया है।"

"इतने से ही हम लोग सन्तुष्ट नहीं हो सकते। जब तक तुम हम लोगों का कहना नहीं मान लोगे तब तक हम कहते रहेंगे। किसी प्रकार भी तुम सुखी हो यही हम सब चाहते हैं।"

"अब मैं खुश हो चुका!"

"यही तुम्हारी भूल है! बकुल भाभी में जो बातें थी वह मिलना तो असम्भव है। वह गईं, वह समय गया। किन्तु अब जितने दिन जीना है उन दिनों को दुःखी, निराश होकर बिताने से क्या लाभ है? विवाह कर लोगे तो अपने अन्तर की बात कहने को एक साथी मिल जायेगा, घर में मन लगेगा, तुम्हारे निराश जीवन में थोड़ी चंचलता आयेगी और आदत पड़ जाने पर स्वभावतः तुम्हे निश्चय ही रुचि उत्पन्न हो जायेगी।"

"मैं अपनी प्रसन्नता के लिये एक पुतली घर में ला कर बसाऊँ, क्यों ?"

"तर्क ही करना हो तो जो इच्छा हो कहो। किन्तु एक पुतली के मुकाबले एक पत्नी तुम्हारे जीवन को अधिक सुखी बना देगी चाहे क्यों न वह दूसरी ही पत्नी हो। संसार में ऐसा ही होता है। दूसरा विवाह भी लोग करते हैं। देखो वह........................"

"अब तुम सब लोगों के नामावली का जाप मत कर डालो। मैं जानता हूँ !" अरविन्द ने बीच में ही रोकते हुये कहा।

"ये सभी क्या तुमसे कम अपनी पहली पत्नी को प्यार करते थे ? प्रेम का ठेका तुम्हीं ने ले रक्खा है ? जिस लौ से बकुल भाभी के तुम उपासक थे, वैसे ही इन सब लोगों ने भी अपनी पत्नियों को प्यार किया था, क्या तुम नहीं जानते ? तुम्हारे पास तो धन का साधन है। दूसरे बेचारे कम पैसे में भी क्या-क्या नहीं करते थे ?"

अरविन्द ने उत्तर नहीं दिया। कुछ क्षणों तक कोई दूसरा भी नहीं बोला। एक मित्र ने घंटी बजा कर नौकर को बुलाया और उसे अरविन्द को दिखलाने के लिये डाक्टर को बुला लाने के लिये भेजा।

कुछ देर बाद दूसरे मित्र ने कहा—

"बकुल भाभी ने तुम्हें ऐसे प्रसङ्ग के लिये क्या कहा था ?"

"उस बेचारी ने तो मुझसे पहले ही कह दिया था कि 'मैं मर जाऊँ तो आप अवश्य दूसरा विवाह कर लीजियेगा। मुझे स्वप्न में भी इस बात का ध्यान नहीं आया था कि ऐसा प्रसङ्ग उपस्थित होगा।" अरविन्द की आँखें गीली हो उठीं।

एक बहुत ही विचारशील मित्र जो अभी तक बोला न था। उसने कहा—

"मृत आत्मा का सन्देश अभी प्राप्त किया जा सकता है। अरविन्द की इच्छा हो तो इस सम्बन्ध में बकुल भाभी की इच्छा जानी जा सकती है।"

जिस सहृदय पत्नी ने अपने जीवन में भी अस्वीकार न किया वह अपनी मृत्यु के पश्चात् किस कारण से इन्कार करेगी ? अरविन्द के मन में विचार आया। उसने कहा—

"प्रेत योनि वर्तमान युग में जीते हुए जीवों के लिए अधिक अनुकूल हो चुकी है। एक भी गतपत्नियों की आत्मा "नहीं" शब्द के अनुमोदन को मेरी समक्ष से प्रस्तुत न होगी।"

"हँसी करने की आवश्यकता नहीं। यह गम्भीर वार्ता है। तुम अपने वर्तमान स्थिति पर विचार करो। तुम्हें बुखार आया है; थोड़ी देर में हम सब चले जायेंगे। सभी को तुम पर तरस आता है, परन्तु तुम्हारे काम कोई नहीं आयेगा। डाक्टर दवा देकर चला जायेगा। नौकर दवा खिला देंगे और सारी रात तुम जागते हुए बिताओगे।

अरविन्द कुछ बोला नहीं। उसके बदले एक दूसरे मित्र ने उत्तर दिया—

"ये तो कहेंगे कि मैं नर्स बुला लूँगा!"

"नर्स वर्स तो सभी ठीक है पर अपने प्राणी जैसा कोई दूसरा नहीं है?"

"और समय पर यदि नर्स ही अपना प्राणी बन जाय तो?" शब्दों में निहित वक्रोक्ति पर आँख के मटकने का भार दे एक रसिक मित्र ने शंका उपस्थित की। स्त्रियों की वार्ता प्रारम्भ होते ही वह वाचाल बन जाता था। वह शिक्षित तथा सम्मानित अग्रगणी व्यक्ति था। ऐसा सिद्धान्तरूप में सभी मान्य रखते। अतः नियमानुसार अपवाद की संख्या उसके ध्यान में अधिक आती। ऐसी प्रचार की बातें आती तब वह बहुत रसिक बन जाता था। थोड़े में स्त्री पुरुषों की बातें सदैव एक आँखभींच कर ही करनी चाहिए ऐसी अपनी मान्यता को वह मित्र मण्डली के समक्ष व्यवहार में प्रगट करता।

"यह बात भी भूलने जैसी नहीं है।" एक मित्र ने कहा।

"भूलने जैसी क्या? यह तो महत्व की बात है! मनका भरोसा कहाँ तक। अकेला परिवार में मनुष्य मर्यादा का कहाँ तक पालन कर सकता है?"

यह विवाद है। विवाह यह क्या मर्यादा का चौकी पहरा है? जिस मर्यादा पर चौकी पहरा हो वही मर्यादा यथार्तः है? स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को विवाह का नाम और स्वरूप दिया गया। इससे ही उसमें मर्यादा का समावेश हो गया? विवाह में क्या अनीति नहीं हो सकती? ऐसे ऐसे प्रश्न उपस्थित करने के बदले इन्हें दार्शनिकों के लिए छोड़ देना चाहिये।

"मैं तो एक बात जानता हूं? तुम काम काज के लिए नौकर रक्खो, परिचर्य्या के लिए डाक्टर नर्स की व्यवस्था करो, आनन्द के लिए नृत्य संगीत के जलसे का आयोजन करो और नीति अनीति की परवाह न रखो पर ये सभी व्यर्थ हैं। पत्नी के सिवाय सभी को मैं अपूर्ण समझता हूं। सुख प्राप्ति के लिए विवाह आवश्यक है। विचार कर देखो।"

इस व्यवहार-ज्ञान से पूर्ण कथन पर विचार हो कि उसके पहले ही डाक्टर आ पहुँचे उन्होंने अरविन्द के स्वास्थ्य की परीक्षा कर दवा लिखा। मानसिक परिश्रम के लिये एकदम मनाकर दिया तथा बीमार से बात चीत करने की एकदम मनाही की। बुखार उतरने तक भींगे कपड़े की पट्टी माथे पर रखने को कहा।

एक नौकर दवा लेने को दौड़ा। दूसरे ने आकर भींगी पट्टी माथे पर रखना शुरू किया। मित्र लोग उठने लगे। एक मित्र ने रात्रि में रुकने की इच्छा प्रगट की। अरविन्द ने अस्वीकार कर दिया। अतः उसने अरविन्द के समीप जा धीमे स्वर में कहा—

"तुम हाँ कहो चाहे ना कहो, परन्तु हम लोगों ने तो निश्चय कर दिया है। तुम्हारे भाई ने मूर्खता किया जिससे उस बेचारे मनमोहन राय की कन्या को अभी तक कुआँरी रहना पड़ा। अब यदि तुम्हारे में बुद्धि हो तो उस लड़की के लिये अपनी स्वीकृति देना! हम लोगों ने मनमोहन राय को समझाया है।"

"क्या? क्या कहा?" अरविन्द एकदम चौंक कर उठ बैठा।

'कुछ नहीं। तुम्हारा जब बुखार उतर जाय तब शान्तिपूर्वक विचार कर मुझे बतलाना। मैं फिर आऊँगा।"

"अरे भाई वह तो बहुत छोटी है ! मैं कहाँ............पन्द्रह सत्रह वर्ष का फर्क........ !"

"अभी दिमाग न खपा कर तुम सो जाओ । बीस बाईस वर्ष की तो वह है और पच्चीस में तो उम्र का भेद समाप्त हो जाता है । कुछ मालूम भी है ?"

मित्र लोग चले गये । अरविन्द अकेला रह गया । रात होने लगी थी । उसने बच्चों को अपने निकट बुलाया । उनके मस्तक पर हाथ फिराया और उन्हें सोने के लिए भेज दिया । एक नौकर उसके माथे पर गीली पट्टी रख रहा था, परन्तु उससे उन्हें आराम नहीं मिला । उसका मन बहुत व्यग्र हो गया था । उसका शरीर ज्वर की तेजी से तप रहा था । घड़ी में आठ बजा । यह समय उस परिचर्या करनेवाले नौकर के घर जाने का था नौकर के हाथों में शिथिलता आ गई, उसकी पट्टी रखनेवाली गति में परिवर्तन आ गया । अरविन्द के तकिये पर पानी टपकने लगा ।

"क्यों रे ! कहाँ ध्यान है ? कपड़े को तो थोड़ा निचोड़ ले !"

"जी हाँ ! निचोड़ लेता हूँ । जी.... ......मुझे घर पर थोड़ा काम था !" नौकर ने बात करने का अवसर पा अपने घर जाने का समय हो जाने की सूचना दी ।

"आज यहीं रहोगे । मुझे बुखार है यह तुम नहीं जानते ?"

"यहाँ रहनेवाला तो हूँ ? परन्तु बात यह है कि घर में मेहमान आये हुए हैं पाँच मिनट में मिलकर लौटा आता हूँ ।"

"जाओ और किसी को बैठा दो !"

नौकर गया । जाते जाते वह दूसरे नौकर को बैठा गया । उसने परिचर्या का प्रारम्भ अच्छा किया । अरविन्द को आधे घन्टे में नींद आ गयी । इसी बीच हृदयनाथ और निरंजन अरविन्द के पास आये । अरविन्द को सोया देखकर हृदयनाथ ने पूछा—

"भैया की तबियत कैसी है ?"

"अच्छी है। अभी अभी नींद आई है। बात चीत करने के लिये डाक्टर ने मना किया है।" नौकर ने कहा।

हृदयनाथ को भय हुआ कि यदि वह भाई के शरीर को स्पर्श करेगा तो सम्भवतः वह जग जायेंगे। पन्द्रह मिनट तक वह निरंजन के साथ वहाँ चुपचाप बैठा रहा। फिर नौकर ने उन्हें जाने का इशारा किया और मन्द स्वर में कहा—

"सरकार जागेंगे तो मैं आप को खबर दूंगा।"

अनिच्छा पूर्वक दोनों वहाँ से उठे। उसी समय अरविन्द की निद्रा भंग हुई।

परिचर्या का उत्तम से उत्तम स्वरूप परिचर्या के प्रारम्भ वाले प्रथम घन्टे में दिखलायी देता है। बाद में वह पुण्य कार्य रसहीन बनता जाता है। नौकर को निद्रा आने लगी थी। ललाट पर रखने वाली पट्टी मुँह पर रख दिया। अरविन्द दुःखी था ही, उस पर नौकर की लापरवाही ने और दुःखी बना दिया।

"जाओ, अब सो जाओ।"

"नहीं साहब, मैं नींद का गुलाम नहीं हूँ।" उसने उत्तर देकर अपने कर्तव्य परायण वृत्ति को प्रेरणा दे सचेष्ट किया। आलसी बैल सरीखी यह प्रवृत्ति थोड़ी देर उफनने के बाद शान्त होने लगी। ललाट पर की पट्टी तथा हथेली दोनों जब तक गरम न हो जाँय तब तक रहने देकर नौकर ने अपने सिर को झूले पर चढ़ा दिया। प्रत्येक झोकों पर नौकर का सिर अरविन्द के मस्तक की निकटता बढ़ाता और बढ़ाता चला जा रहा था।

"जाओ सो जाओ।" नौकर का हाथ पकड़ कर अरविन्द ने हिलाया।

"हाँ सरकार ! लाता हूँ।" मालिक बुला रहे हैं। इसके माने कुछ लाना ही होगा। इस बात को नींद में भी न भूलने वाले वफादार नौकर ने समझ

कर उत्तर दिया ।

"छोटे सरकार को बुलाऊँ ?"

"कहाँ हैं ?"

"यहाँ आकर फिर अपने कमरे में गये हैं ।"

भाई के प्रति प्रेम रखने वाले अरविन्द के मन में यह वाक्य खटका। उसका कोई भी नहीं है ? ऐसा अस्पष्ट भी न समझा जा सके इस प्रकार का पूर्ण व्यक्ति भी न हुये भावों ने अरविन्द के हृदय को दुःखित कर दिया ।

"नहीं, किसी का काम नहीं है ।"

नौकर चला गया। जाते-जाते उन्हें न घबड़ाने की और जब आवश्यकता हो तुरन्त अपने को बुला लेने को और वह स्वयं हल्की नींद में सोयेगा इस बातका विश्वास करने की सलाह देता गया।

अरविन्द को एकान्त असह्य हो उठा। उसने स्वयं नौकर को बिदा कर दिया था। स्वयं ही हृदयनाथ को बुलाने के लिये भी मना कर दिया था। अतः अपनी इच्छा तथा आज्ञानुसार कार्य्य करनेवाले नौकर पर और उसी प्रकार भाई पर वह क्रोधित हो उठा।

मेरे इन्कार करने पर भी मेरे पास बैठे ऐसा कौन है ? बकुल होती तो क्या वह चली जाती ? उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ। विचार के साथ उसके व्याकुलता में अत्यधिक वृद्धि हुई ।

"इन सबमें मेरा कौन है ?"

ऐसी धारणा करते ही वह मानों अनन्त उड़ान में अकेला उड़ता जा रहा हो और समूचे संसार की बस्ती तमाशा देख रही हो ऐसा उसे लगा। बहुत अधिक बेचैनी में वह करवट बदलता रहा। उसको लग रहा था कि उसका सारा शरीर दुःख रहा है। उसके सिर पर हथौड़ा चल रहा है, उसकी इच्छा विरुद्ध उसके द्वारा ठंढी श्वाँस भर जाती थी। अपने समीप पड़े हुये एक कपड़े से उसने अपने ललाट को कसकर बाँधा, दुःख निवारण हेतु हाथ और

पैर लम्बा कर अंगड़ाइयाँ लीं। कंधों पर हल्की-हल्की मुक्की मारा, परन्तु दर्द कम न हुआ। जोर से बाँधे हुए कपड़े से ललाट के मांसल अधिक दुखने लगे, उसने उसे खोल दिया और ललाट को बलपूर्वक पंजे से दबाया। क्षण दो क्षण आराम मिला फिर सर में दूने वेग से वेदना उठी।

बाप...... रे। मुँह से निकल पड़ा। उसने माथा सहज ही चटकाया और फिर तकिये पर पटक दिया। दुःख की अधिकता और अकेलेपन की भयङ्करता में उसका मन शून्य सरीखा बन गया।

उसके मन में सहज ही चेतना आई तब उसे भान हुआ कि उसके माथे पर किसी का भारी पंजा रक्खा है। उसने अपने हाथों से उस पंजे को शीघ्रता से हटा दिया।

कुछ समय पश्चात् उसे अनुभव हुआ कि वह शक्तिशाली हाथ उसके पैर: पर फिर रहे हैं। नौकर के संस्कारहीन वजनी हाथों से वह घबड़ा उठा। उसका शरीर मृदुल स्पर्श की माँग कर रहा था। उसे बकुल के हाथों की आवश्यकता थी। और बकुल न हो........तो.......वैसे ही किसी के हाथों की आवश्यकता थी। उसने पैर दबाते हुए हाथों को झटक दिया। 'मुझे मत परेशान करो।' ऐसी आज्ञा दे उसने करवट ली।

उसकी आँखें बंद थीं। उसके शरीर पर हाथ फिरना बन्द हुआ, चिढ़ा हुआ मन किसी पर चिढ़ने के पश्चात् शान्ति पा जाता है। अरविन्द को भी थोड़ी शान्ति मिली। कदाचित् उसका बुखार भी कम होने लगा था। बकुल उसके ललाट पर हाथ फिराती होती तो कैसा अनुभव होता इसकी कल्पना करने से उसके मन को थोड़ा आराम मिला। सुख की कल्पना में खोये हुये मन को एकाएक बोध हुआ कि इस कल्पना का इस जीवन में फलीभूत होना संभव नहीं है। उसके हृदय में जैसे घाव की चीर पड़ गयी हो ऐसा दुःख हो उठा। करवट बदलने से दुःख कम हुआ हो इस प्रकार उसने करवट बदला। उसकी दृष्टि समक्ष उसके मित्रों की टोली खड़ी हो गई। बीमारी कल्पना को अधिक तीव्र बना देती है। मित्रों की उसे पुनः विवाह

करने को दी हुई सम्मतियां और बदले में उनके किये हुये तर्कों का पुनरावर्तन हुआ।

समूचा चित्र प्रत्यक्ष हुआ। मनमोहन राय की कन्या रम्भा के लिये उसके मित्रों का प्रयत्न था यह बात भी सुनायी दी। उसके साथ रंभा का चित्र भी दिखलायी देने लगा। उसे कब देखा था? एकबार........नहीं ......दो बार ....तीसरे बार घर आते हुये ....और बाद में ....भी .. ..। इस प्रकार रम्भा को जब जब देखा था तब तब वह कैसी दीख रही थी, वह क्या कर रही थी, कैसे चल रही थी, ये सभी बातें चलचित्र समान उसकी आँखों के सामने उपस्थित होने लगीं।

उसका रूप बहुत ही सुन्दर था। उसकी शिक्षा उच्चकोटि की थी। वह सुसंस्कृत और धनी पिता की पुत्री है। किस कारणवश वह अपने को सुखी न बनाये? ...... निःसन्देह यथार्थ सुख तो बकुल के साथ ही समाप्त हो गया था, परन्तु जब तक जीवन है तब तक श्मशान सरीखा एकान्त और उस एकान्त में व्यथित करती झीनी-झीनी पीड़ा सहज ही घट जाय तो क्या हानि है? उन मित्रों द्वारा किया हुआ तर्क भी क्यों झूठा हो? मानसिक निर्बलता........। इस विषय में तो अधिक विचार करना ही नहीं चाहिये। और बालकों का?

विमाता का सम्बन्ध इस प्रश्न को उपस्थित होने का कारण नहीं है। मन बलशाली हो, समभाव रखने का प्रयत्न हो तो फिर किसी को दुःख होने का ही नहीं है। मन शक्तिशाली रखने का कौन उपाय नहीं करता? समभाव पालन करने का कौन प्रयत्न नहीं करता? अरविन्द जैसे ममतापूर्ण और उदार मन वाले मनुष्य के प्रति ऐसी शंका निरर्थक है।

रंभा की उम्र और अपनी उम्र! उम्र की गणना सरीखा विकट और नाजुक प्रश्न दूसरा नहीं है। रंभा के उम्र की गणना हिन्दू परम्परानुसार उम्र में उनसे एक वर्ष की वृद्धि कर दी। अपने उम्र को अंग्रेजी कलेन्डर से गणना कर एक वर्ष घटा दिया। समक्ष समीप आते हुये चालीस की उम्र को उसने

कुछ पीछे की ओर हटाया और फिर इस चालीसा का बचाव भी उसने किया चालीस वर्ष की उम्र में तो यूरोप में पुरुष प्रथम बार विवाहित होता है। इस उम्र को क्या वृद्धावस्था कहा जा सकता है? उसका शरीर भरावदार और सुन्दर है। दर्पण ने उसके रूप में कभी भी न्यूनता का प्रदर्शन नहीं किया। उसके मुख पर बुढ़ापे की झुर्रियों का स्फुरण भी नहीं हुआ है। उसके सुन्दर घुंघराले बाल अभी भी वैसे के वैसे ही हैं....यद्यपि कानके ऊपर के भाग वाले बाल कुछ कुछ सफेद होने लगे थे। उनके लिये बकुल कितना हँसती! स्वयं इसी बहाने का सहारा ले वह वृद्ध हो गया है ऐसा मजाक में प्रगट करता। तब बकुल उल्टा उसे कितना हँसाती?....अरे ऐसा तो बीस बाईस वर्ष के युवकों का भी बाल सफेद होता है। इससे क्या कोई बूढ़ा हो जाता है। ऐसा कहने वाले उसके मित्रों में से एक दो का तो उसे स्वतः अनुभव था।

लेकिन हृदयनाथ ने बेचारी रम्भा के प्रति अन्याय किया है ऐसा सभी लोग कह रहे हैं। इस अन्याय की बदनामी को अपने कार्य द्वारा कम कर डालने के लिए मित्रों की बात मान लेना क्या अनुचित है? यदि वह स्वयं अस्वीकार न करती हो तो फिर विवाह कर लेने में हर्ज क्या है? बड़े बड़े महापुरुषों ने भी दूसरा विवाह किया है। रानाडे, फिरोजशाह ....यदि इनकी तालिका देखी जाय तो जितनी चाहे उतनी लम्बी हो सकती है।

तर्क द्वारा इच्छानुसार बात यथार्थतः साबित की जा सकती है।

अरविन्द एकाएक चौंक उठा। पास पड़ी हुई घंटी उसने बजायी। उसे सुनकर एक ओर से आते हुये मनुष्य की ओर बिना देखे ही कहा :—

'कागज और फाउन्टेनपेन ले आओ।"

दूर टेबुल पर पड़ा पैड और पेन लाकर उस आदमी ने अरविन्द के पास रख दिया। अरविन्द ने कागज पर कुछ लिखा और लिफाफा में रख उस पर पता लिख दिया और उस व्यक्ति की ओर बिना देखे ही उसने कहा :—

"इस पत्र को पहुँचा आओ।"

"अभी ही ?"

अरविन्द ने स्वर पहचाना यह नौकर नहीं था। उसने दृष्टि ऊपर उठाकर देखा—

"निरञ्जन तुम कहाँ से ?"

"मैं कबका बैठा हूँ ! आपको आवश्यकता होगी इसीलिये मैं तथा हृदयनाथ पारापारी बैठते रहे।"

"क्यों जागरण कर रहे हो ? मुझे कुछ जरूरत नहीं है !"

"इससे जागरण कैसा ? दस से एक बजे तक हृदय बैठा था। बाद से मैं बैठा हूँ !"

"कितना बजा है ?"

"अभी अभी तीन बजा है।"

"अब तुम्हें जागने की जरूरत नहीं है सो रहो !"

"परन्तु मुझे परेशानी क्या है ?"

"तुम लोग जागते रहो यह मुझसे सहन नहीं होगा बल्कि उल्टे बेचैनी बढ़ जाती है।" अरविन्द ने कहा। निरञ्जन अरविन्द का कोमल स्वभाव जानता था। उसने कहा :—

"मैं बुखार देखूँ ?"

"अब बुखार नहीं है।"

किन्तु निरञ्जन ने थर्मामीटर लगाया। बुखार बिलकुल नहीं चढ़ा। अरविन्द ने थर्मामीटर देखने का आग्रह किया। उसे देख उसने कहा :—

"मैं कहता था न ? बुखार है ही नहीं। अब तुम सो जाओ तो एकान्त में मुझे नींद आ जायेगी।"

निरञ्जन ने सोचा कि बीमार की इच्छानुसार करना चाहिये। आवश्यकता होगी तो फिर आया जा सकता है, ऐसा सोच उसने कमरे से जाना स्वीकार

कर लिया। जाते-जाते उसने पूछा :—

"पत्र अभी पहुँचाना है ?"

"कौनसा पत्र ?" थोड़ी सी निद्रा की झपकी लेते हुये अरविन्द ने पूछा। निरञ्जन को स्वभाविक आश्चर्य हुआ।

"क्यों ? आपने अभी ही लिखकर मुझे दिया है न ?"

मानो कोई भूला स्वप्न अरविन्द स्मरण कर रहा हो इस प्रकार उसकी खुली दृष्टि स्थिर हो गई, अन्तर में कुछ सोचने लगा। प्रयत्न पूर्वक वह बोल रहा हो इस प्रकार छुटपुट शब्द उसने भर्राये स्वर में कहा :—

"इस समय नहीं, सुबह पहुँचाना है। आवश्यक नहीं है........और मैं प्रातःकाल बात करूँगा।"

स्वप्न से जाग्रत हुये अरविन्द को फिर स्वप्न का आनन्द लेने के लिये छोड़कर निरञ्जन कमरे से बाहर निकला।

लिफाफा बन्द नहीं था। जिज्ञासा की तृप्ति को निरञ्जन पाप नहीं मानता था। उसने पत्र पढ़ा और फिर कुछ देर पश्चात् लिफाफे में रख दिया। उसके गम्भीरता रहित मुख पर थोड़ी गम्भीरता दिखलायी दी। हृदयनाथ के कमरे की ओर वह सावधान कदमों से बढ़ा। हृदयनाथ की निद्रा उसके जाने से भङ्ग न हो इसकी उसने सावधानी रक्खी।

परन्तु अधखुले द्वार को खोलने के साथ ही उसने जो दृश्य देखा उसे देखते ही वह खिलखिलाकर हँस पड़ा।

रात्रि के तीन बजे हृदयनाथ भारी बोझ उठाकर कोई अधिक थकावट उत्पन्न करने वाली कसरत कर रहा था।

निरञ्जन को हँसता देख हृदय रुका और उसकी ओर देखने लगा।

'हृदय ! तुम्हारे कुटुम्ब में किसी पागल की नींव सचमुच ही है क्या ?" निरञ्जन ने प्रश्न किया।

—::o::—

२२

सयन—कक्ष

हृदयनाथ और निरञ्जन जब घर आये तब रात हो चुकी थी। अरविन्द की तबियत अच्छी नहीं है यह सूचना उन्हें मिली। दोनों उन्हें देखने के लिए गये, उस समय अरविन्द की आँख लग गई थी। नौकर बैठा था इसलिए उन लोगों ने भोजन और बातचीत करने में कुछ समय बिता दिया। हृदय फिर भाई के पास जाकर बैठा। नौकर सो गया था। अरविन्द को भी निद्रा आ गई थी। बिछौने के समीप बैठा-बैठा हृदयनाथ अखाड़े की उन्नति के लिये अनेकों योजनायें बना रहा था।

कुछ समय पूर्व उसने अखाड़े के लिए एक मण्डल की स्थापना की थी। इस मण्डल का प्रत्येक सदस्य शारीरिक उन्नति की योजना में सहयोग देने के लिए वचनबद्ध था। सदस्यों का पृथक-पृथक वर्ग था। जीवन-पर्यन्त पन्द्रह वर्ष के लिए, दस वर्ष के लिए, पाँच वर्ष के लिए और दो वर्ष के लिए। जो जितने समय तक इस मण्डल में सम्मलित रहे उतने समय तक वह कोई दूसरा कार्य नहीं कर सकेगा इस प्रकार का बन्धन था। उन लोगों को उतने निश्चित समय तक की आजीविका देने का मण्डल पर उत्तरदायित्व था इन सदस्यों को व्यायामशाला में शिक्षा लेकर उसका गाँवों में प्रचार करना था। प्रत्येक सदस्य के लिये क्षेत्र निश्चित किया जाता था। गाँवों में व्यायामशाला स्थापन पश्चात् स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यक सभी कार्यों का यथा साध्य प्रबन्ध करना उनका कर्तव्य था।

गाँव की समस्याओं का विशेष शिक्षण इन सदस्यों को लेना होता था। आदर्श गाँव किस प्रकार बन सकें, ग्रामीणों का जीवन अधिक समय तक

किस प्रकार रहे और लोगों का स्वास्थ किस प्रकार सुरक्षित रक्खा जाय, इस प्रकार के सब विषयों की व्यवस्था भी उन्हें करनी होती थी। ये प्रश्न दूर से जितने सरल दिखलाई पड़ते हैं उतने सरल न थे, ग्रामीणों का अज्ञान तथा प्रवृत्तियों के प्रति अनादर यह साधारण में साधारण कठिनता थी। इस पर भी सरकार ऐसे प्रमाणिक प्रयत्नों को शंकित दृष्टि से देखती थी, इस कारण और भी अधिक कठिनता प्रतीत होती। "सरकार द्वार प्रचलित होती संस्था भी अन्तः मानवी संस्था ही है और मानव संस्था को छलनेवाली निर्बलताओं का स्पर्श उसमें भी हो तो इसमें कुछ नवीनता नहीं है। यह सत्ता का सर्व शक्तिमानपन उसमें सर्वज्ञता का गर्व उत्पन्न करता है और उसके लिए अपने सिवाय किसी दूसरे का कार्य उसमें अरुचि और ऊब उत्पन्न करता है।

किन्तु हृदयनाथ के मण्डल में निरञ्जन सरीखे बहुवाची और सर्वव्यापी विचार करनेवाले सदस्य भी थे। गाँव की उन्नति करने का सरकार का और. उसी प्रकार इस मण्डल का स्वाभाविक उद्देश्य था ही। परन्तु कितने विद्वान (अनुभवी) ग्रामों की उन्नति के बहाने सरकार की निर्बलताओं की ओर जन साधारण का ध्यान आकर्षित करने और थोड़ी भी टीका न सहन करने के आदी सरकारी अधिकारियों को दृष्टि से गिराने की चेष्टा करते। हृदयनाथ का विशेष आदेश था कि राजनीति के झंझट से उसका मण्डल मुक्त रहे, राजनीति के प्रतिद्वन्दिता से घबरा कर नहीं परन्तु उसके अनिष्ट और अल्पजीवन के स्वरूप को पहचान कर ही उसने यह आदेश दिया था।'

परन्तु इच्छा यह एक प्रकार के भोजन से तृप्त नहीं होती, यह पूरे ब्रह्माण्ड का स्पर्श कर रखना चाहती है, इसलिये इस मण्डल के कितने ही सदस्य राजनीतिक परिस्थित का उल्लेख किये बिना नहीं रह पाते थे। इससे सरकारी अधिकारियों के साथ मण्डल के सदस्यों के संघर्ष का प्रसङ्ग बारबार आया करता और उस संघर्ष से हृदयनाथ भी मुक्त नहीं रह पाता था।

अरविन्द ने करवट बदली। उसने ललाट पर हाथ रखकर दबाया, पैर

ऊँचे किये और फिर पहले के समान ही रख लिया। हृदयनाथ को लगा कि अरविन्द के माथे में पीड़ा है। कुर्सी घिसका कर वह अरविन्द का माथा दबाने लगा। अरविन्द ने उसका हाथ हटा दिया। हृदयनाथ की समझ में आया कि अरविन्द के माथे में नहीं पैरों में पीड़ा है। पैरों के पास जाकर वह पैर दबाने लगा। अरविन्द ने पैरों को खींच लिया। हृदयनाथ को नवीनता लगी। वह दूसरा पैर दबाने लगा। मानों उसके स्पर्श से वह ऊब रहा है इस प्रकार उसने कहा: --

"मुझे तङ्ग न करो।"

अरविन्द हृदयनाथ की बहुधा हँसी उड़ाता परन्तु उसने कभी उसके प्रति विरोध अथवा अपनी अप्रसन्नता प्रगट नहीं की थी। आज ऐसा बर्ताव कैसे हुआ? हृदयनाथ उसकी सुश्रुषा कर रहा था। किस कारण अरविन्द झुँझला रहा है? शारीरिक अशक्ति, शारीरिक अस्वस्थता यह सब अत्यधिक कठोरता का मूल है। भाई का बुखार उतर जाय फिर उन्हें उचित व्यायाम बतलाने की हृदयनाथ की इच्छा हो उठी। व्यायाम के विचार के साथ ही उसे मध्यम वर्ग में जीवन व्यतीत करते हुये पुरुषों के प्रति व्यायाम का एक पृथक प्रयोग बतलाने की इच्छा हुई। साधारण प्रकार के व्यायाम का ध्यान आते ही उसे स्त्रियों के व्यायाम सम्बन्धी मिस कोलिन्स के साथ हुई वार्तालाप स्मरण हो आई और मिस कोलिन्स की मूर्ति के साथ ही वृन्दा का मुँह भी उसके समक्ष प्रत्यक्ष दीखता सा मालूम हुआ।

उसने माथे को झटका दिया और इस विचार को दूर हटा दिया। कुछ क्षणों पश्चात् निरञ्जन आया। उसने बहुत मन्द स्वर में कहा:—

"एक बजा अब सो जाओ। मैं बैठता हूँ"

उत्तर बिना दिये हृदयनाथ धीरे से बाहर चला गया और अपने कमरे में आकर कम्बल पर सोगया। जागने के कारण उसे लेटते ही निद्रा आ गई।

नींद में मिस कोलिन्स ने उसे छोड़ा नहीं। उसने पूछना शुरू किया।

देखिये, मैं इस प्रकार का नृत्य स्त्रियों के व्यायाम के लिए उचित समझती हूँ। इतना कह उसने हाथ, पैर और शरीर को एक मुद्रा से संचालित किया। इच्छा रहित हृदयनाथ ने शून्य नेत्रों से उसे देखा। इतने में नृत्य पूरा कर मिस कोलिन्स उसके समीप हंसती हंसती आई और कहने लगी—

"इसके बारे में आपका क्या विचार है ?"

"मुझे तो कुछ नहीं कहना है।" मन की अनिच्छा को दबाते हुए उसने उत्तर दिया।

"तो मैं पुनः आपको दूसरे प्रकार का नृत्य दिखलाऊँ ?" इतना कह मिस कोलिन्स ने दूसरे प्रकार का नृत्य प्रारम्भ कर दिया। हृदयनाथ ने आँख मूँदने का प्रयत्न किया, उससे आँखें मूँदी नहीं गई। उसने वहाँ से भाग जाने का प्रयत्न किया, उसका पैर वहाँ का वहाँ ही चिपक गया हो ऐसा जान पड़ा, उसने मुख फेर लेने का निश्चय किया पर, गले के स्नायु शक्ति हीन हो गये। दिग्विजय का अभिलाषी वीर कैदी बन गया हो वैसा हृदयनाथ निर्बल बेजान खड़ा रहा। नृत्य का सम्पूर्ण आवर्तन उसे देखना पड़ा।

मिस कोलिन्स नाचती नाचती हृदयनाथ के समीप आई। उसने नृत्य रोक दिया और हृदयनाथ को देखा। हृदयनाथ ने आँखें नीची कर ली। ऊँची श्वाँस लेती हुई उसकी छाती हृदयनाथ की दृष्टि में पड़ी। मानो दोनों ओर संकट निहार रहा हो वैसा हृदयनाथ घबराया। फिर उसने मिस कोलिन्स की आँखों की ओर देखा। वह हँस रही थी उसने कहाः—

"ऐसा नाच क्या आपने कहीं देखा है ?"

"नहीं।"

इसमें अधिक मात्रा में भारतीय नृत्य का समावेश किया है। यह नृत्य बहुत ही उच्च श्रेणी का नियम बद्ध होते हुए भी सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य अर्पित

करे ऐसा है। आपके चित्रकला और शिल्पकला में नृत्य की ही मुद्रा और नृत्य की ही मरोड़ अंकित रहती है।"

कुमार स्वामी की भूले चूके पढ़ी हुई पुस्तक और उसके चित्र हृदयनाथ के ध्यान में आये। जिस प्राचीन काल को अभिमान के साथ आप समक्ष रखते हैं वह प्राचीन काल स्त्रियों को ऐसी ही नृत्य कला के शिक्षण की छूट देता था या नहीं?" मिस कोलिन्स ने अधिक निकट आकर पूछा। हृदयनाथ एक पग पीछे हठ गया।

"क्यों आप इन्हें नृत्य दिखला रही है? कुछ समझ में तो इनके आता नहीं। मुँह तो देखिये।" वृन्दा ने स्वभावतः ही मुख मुद्रा को गम्भीर बना कर कहा। अन्त के वाक्य के साथ ही उसने नीचेवाला ओठ लम्बा कर चौड़ा बनाया।

इस प्रकार मुँह बनाना हृदयनाथ को रुचा न हो इस प्रकार वह वृन्दा के मुख की ओर देखता हुआ खड़ा रहा। हृदय की आँखें वृन्दा के मुख पर ठहर गयीं और उसकी बुद्धि शक्ति आँखों को यथा स्थान लौटाने लगी। आँख और बुद्धि की खींच तान में ही वह जाग उठा।

मिस कोलिन्स कहाँ? कैसी वृन्दा? नृत्य कैसा? सब कहाँ गया? उसने क्या देखा? कठोर पृथ्वी ऊपर कम्बल का बिस्तर बिछा वह सोया हुआ था। अपने भयानक कमरे में शक्ति-प्रेता शस्त्रों के बीच उसने निद्रा ली थी। उसका अधखुला द्वार खोलकर अन्दर आने की किसी स्त्री ने हिम्मत नहीं की थी। रम्भा ने हिम्मत किया तो उसका फल उसे मिला। किस प्रकार ये दोनों अन्दर आईं?

उसको निश्चय हुआ कि यह स्वप्न था। स्वप्न इतना प्रबल और तादृश्य था कि उसे स्वप्न सरीखा स्वीकार करने के पूर्व उस पर बहुत विचार विमर्श करना पड़ा।

किन्तु ऐसा स्वप्न दिखलाई क्यों देता है? स्त्रियों को देखने के सिवाय वह उसे नहीं देख रहा था। स्त्रियों को वह देखता है, ऐसा साधारणसा भी

वहम उत्पन्न होते ही वह उसे भूल जाता था। जड़ से ही कोई किसी वृक्षको उखाड़ डाले उसी प्रकार वह शक्ति पूर्वक किसी भी स्त्री की छाप को हृदय में से उखाड़ डालता था फिर यह स्वप्न कहाँ से ? वह कभी ऐसा स्वप्न के अनुकूल विचार मन में लाकर सोया ही नहीं था। और केवल मात्र दिन में कुछ ही समय के लिये मिली ये दोनों स्त्रियाँ उसके विचार प्रदेश में किस प्रकार से प्रवेश पा गई ?

उसे स्वयं अपने ऊपर चिढ़ उत्पन्न हो उठी। अपनी असावधानता पर रोष हुआ वह समूचे दिन की प्रसङ्ग श्रेणी और स्वप्न का पुनः शोध करने लगा। मिस कोलिन्स और वृन्दा के साथ हुई वार्ता के प्रसङ्गों में ऐसा कोई क्षण था जो ऐसे स्वप्नों को प्रेरित कर सके इसकी वह खोज करने लगा। भेंट और स्वप्न की एक एक बात ब्योरेवार उसने शोध डाला। बहुत ही यत्नपूर्वक उसने उस समय की वार्ताओं का पृथक्करण किया। इस सचेष्ट अन्तरावलोकन में उसने अपने को निर्दोष पाया फिर ऐसा क्यों ? ऐसा विचारने लिये वह बैठा रह गया। स्वप्न के कारण की खोज में, अपने हृदय का परिक्षण करने में ही क्या वह मूल भूल नहीं कर रहा है ? दोष शोधने के प्रति ही इस समूचे प्रसङ्ग का आवर्तन क्या नहीं था ?

"यही भूल होती है।" यह कह वह उठ खड़ा हुआ। और कमरे में टहलने लगा। उसने विचार बदलने का बहुत प्रयत्न किया पर बीच बीच में यह विचार चमक ही उठता था—

"यह भूल हुई ही क्यों ?"

परन्तु अब वह असावधान रहना नहीं चाहता था। विचारों के निषेध का प्रयत्न ही उसे इन विचारों की ओर ढकेलता है ऐसा उसे निश्चय हुआ। विचारों को रोकने की एक कुञ्जी उसके पास थी "व्यायाम।" उसने आश्रय लिया।

रात कितनी व्यतीत हुई इसका उसने विचार नहीं किया। घड़ी पर दृष्टि डाली ही नहीं। उसे समय जानने की आवश्यकता न थी। दुराग्रह

पूर्वक वह हृदय में उमड़ते विचारों को मर्दन करना चाहता था। भले ही जो चाहे समय हुआ हो।

काफी वजनी व्यायाम-यन्त्र उठा उसने मन एकाग्र करना आरम्भ किया। अत्यन्त बल और एकाग्रता पूर्वक उसने शरीर को कसना जारी रक्खा। स्वप्न सम्बन्धी विचार अदृश्य हो गये। शरीर में तीव्र रक्त प्रवाहित होने लगा। उसका स्नायु स्फूर्तिमान बन गया। निर्बलता संहारक बिजली उसके शरीर और हृदय में प्रवाहित होने लगी। किसी भी विचार को रोकने में वह समर्थ है इतना उसे अपने पर भरोसा था। फिर स्वप्न के विचारों को रोकना इसमें है ही क्या!

ऐसा विचार करते ही उसे झटका लगा हो ऐसा प्रतीत हुआ। किसलिये ऐसा विचार आना चाहिये?

दरवाजा खुला। निरंजन अन्दर आया, हँसा और बोला—

"तुम्हारे कुटुम्ब का कोई उन्माद तुम्हारे में स्वयं तो प्रादुर्भाव नहीं हो आया है?"

"ऐसा कहने का कारण?"

—:o:—

२३

भविष्य की झलक

हृदयनाथ ने फिर कारण नहीं पूछा और निरंजन ने बतलाया भी नहीं, परन्तु निरंजन ने उसके हाथ में एक पत्र दिया। हृदयनाथ ने पत्र को देखा तो कहा—

"यह पत्र मेरा नहीं है।"

"चाहे जिसका हो। पढ़ो तो पढ़ने लायक है, इसलिये दे रहा हूँ।"

"तुमने पढ़ा है क्या ?"

"हाँ !"

"क्यों ?"

"इतनी अधिक पूछ-ताछ करने के बदले तुम पढ़ कर देख लो न !"

"मैं किसी दूसरे का पत्र नहीं पढ़ता।"

"तब मैं तुम्हें एक खुशखबरी सुनाता हूँ। तुम्हारे भाई साहब पुनः विवाह कर रहे हैं।"

"क्या ?" हृदयनाथ ने अचम्भित हो प्रश्न किया।

"रम्भा के साथ विवाह करने की स्वीकृति इस पत्र में उन्होंने दी है।"

"ऐसा नहीं हो सकता। तुम झूठ बोल रहे हो।"

"यदि सत्य समझ में न आता हो तो तुम पत्र पढ़ लो।"

"पत्र में यह बात लिखी है ? उनका स्वास्थ्य अच्छा है नहीं।"

"पत्र में लिखी न होती तो मैं कहाँ से जानता ? और स्वास्थ्य ठीक नहीं

है इस कारण ही पुनः विवाह करने का विचार निश्चित किया है।"

"तुम भाई साहब की बदनामी कर रहे हो। मैं इस बात को नहीं मान सकता।"

"तुम्हारी इच्छा।"

"भाभी से वह कितना प्रेम करते थे इसे तुम जानते हो?"

निरंजन ने कोई उत्तर नहीं दिया केवल हँसा।

"क्यों? कैसे हँस रहे हो?"

"प्रेम! उसे तुम किस प्रकार पहचानते हो?"

अब हृदय का उत्तर देना उचित नहीं था। यथार्थ प्रेम है क्या, इसका उसे स्वयं ज्ञान न था। वह ज्ञान करना भी नहीं चाहता था। फिर भी अरविन्द बकुल से अत्यधिक प्रेम करते थे इसका उसे अनुभव किस प्रकार हुआ? प्रेम की परछाईं के निकट भी न खड़ा होने वाला व्यक्ति दूसरे के प्रेम को किस प्रकार समझ सका? किन्हीं असावधानी के क्षणों में क्या वह अपने भाई-भाभी के प्रेम व्यवहार को परखता आ रहा था?

यदि निरञ्जन जो कह रहा है वह सत्य हो तो? तो फिर उसे सख्त कदम उठाना होगा वह स्वयं भाई के साथ नहीं रहेगा, भाई से वार्तालाप न करेगा। एक बार विवाह करने के पश्चात् भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ क्या जो दूसरी बार पुनः विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हुई है! उनके पास क्या नहीं है? धन, जायजाद, लड़के, सुख के साधन सभी कुछ उनको उपलब्ध हैं। फिर क्यों वे इस जंजाल में पड़ रहे हैं? उनके जैसा संस्कारी पुरुष संसार में दृष्टान्त रूप क्यों नहीं बनता?

परन्तु दूसरों को क्या करना, क्या नहीं करना इस विषय में हम क्यों सोचते हैं यह समझ में नहीं आता। अपने लिये अपनी चिन्ता स्वयं होती ही नहीं। दूसरे के व्यवहार के प्रति चिन्ता कर हम स्वयं अपना बाल सफेद करते हैं। मनुष्य के परोपकार का कहीं पार है?

"ठीक अब मैं सोता हूँ। यदि तुम सुबह पहले जगो तो इस पत्र को उपयुक्त समय से पहुँचा देना।" निरञ्जन कहकर सो गया।

हृदयनाथ को इस नवीन संवाद से बहुत क्लेश हुआ। उसका माथा भारी हो उठा। उसे सोने की इच्छा हुई। सोने के इच्छा के साथ ही उसे स्वप्न का भय भी उत्पन्न हुआ। जिस स्वप्न को वह भूल जाना चाहता है, जिसे वह आज तक भूला हुआ था, वह स्वप्न पीछा किये हुये है। अब अधिक व्यायाम हो सके ऐसा न था। निरञ्जन की नींद में भी बाधा पड़ती, कम्बल पर बैठ उसने रोशनी तेज किया और गीता सरीखी सद् विचारों की प्रेरक पुस्तक पढ़ने लगा। गीता का चाहे जो पृष्ठ खोलिये उसमें मन को उच्चश्रेणी में पहुँचानेवाले तेजस्वी सूत्र तुरन्त दीखेंगे। गीता के पाठ से मन की दृढ़ता में वृद्धि हुई और हृदयनाथ निर्भय हो सो गया।

उसे निःस्वप्न निद्रा आई। उसके शरीर और मन को शान्ति अर्पित कर निद्रा ने उसे नित्य से अधिक विलम्ब तक सुला रक्खा, जब वह जगा तब उसका मन हल्का और प्रफुल्लित था। महात्मा जी के चित्र का समक्ष दर्शन करते हुये उसने नेत्र खोले। उसे ज्ञान हुआ कि दिन अधिक चढ़ चुका है। सूर्य उदय होने के पूर्व जगने के अभ्यासी हृदय को विलम्ब होने का ज्ञान हुआ। शीघ्रता पूर्वक वह उसी प्रकार अरविन्द के समीप गया। सोकर उठा अरविन्द अपने चारो बालकों को सामने बैठा चाय पीता देख रहा था।

हृदयनाथ ने कमरे में आकर पूछा—"भैया! अब तबीयत कैसी है?"

"अब ठीक है। बुखार तो रात में उतर गया था।"

हृदयनाथ को देख बालक उसके साथ कुश्ती लड़ने का विचार कर उठ कर खड़े हो गये थे। बच्चों को जहाँ इच्छा हो और जब चाहें तब हृदय के साथ खिलवाड़ करने की छूट थी। वकुल की मृत्यु के पश्चात् यह छूट और बढ़ गयी थी। इसी बहाने बच्चे स्वस्थ बनेंगे इसी कारण हृदयनाथ इस प्रकार के खेल-कूद को प्रोत्साहन देता था। अरविन्द चाचा भतीजे की इस कुश्ती को देखकर प्रायः ऊब उठते थे। वे शान्ति के उपासक और आनन्दी व्यक्ति

थे। बालकों की दृष्टि में उपद्रव का संकेत देख उन्होंने कहा :—

"अभी थोड़ा ठहरो। मुझसे उपद्रव सहन न होगा।"

"नहीं पिता जी, हमें कुछ उपद्रव नहीं करना है!" उपद्रव करने के लिये ही उद्यत हो खड़े होते हुये शशिकान्त ने अश्वासन दिया।

"निरञ्जन नहीं दिखलायी पड़ा?" अरविन्द ने पूछा।

"मेरे कमरे में सोया था। मैं जगा तब वहाँ नहीं था।"

"उसने पत्र भेज दिया?"

"मुझे नहीं मालूम। परन्तु उसने जहाँ पत्र रक्खा था वहाँ पर नहीं था।"

चाय का प्याला लेने के लिये आनेवाले नौकर ने बताया कि निरञ्जन बाबू ने पत्र को विशेष व्यक्ति द्वारा भेज दिया था और स्वयं तड़के उठकर चले गये थे।

अरविन्द का सर नीचे की ओर झुक गया। उनके चेहरे पर अपराधी की लज्जा प्रकट हो रही थी। दुःखी स्वर में बोले—

"पत्र भेजना नहीं था।"

हृदयनाथ ने अब समझा कि अरविन्द ने निरञ्जन के कथनानुसार ही पत्र लिखा था।

"मैं उसे वापस मँगालूँ?" हृदय ने पूछा।

"हाँ! यदि सम्भव हो तो प्रयत्न करो।"

हृदयनाथ वहाँ से चला गया। तीव्र गति से अपने कमरे में आया। पैदल चलना वह पसन्द करता था, परन्तु इस समय उसने मोटर के लिये आज्ञा दी। मोटर में बैठने के लिये जैसे ही वह जा रहा था कि उसी समय तार पियन ने आकर उसे एक तार दिया। हृदयनाथ को उस समय तार का आना बुरा लगा। मगर तार एक ऐसी चीज है कि उसे खोले बिना आगे कदम बढ़ाया भी नहीं जा सकता। लिफाफा फाड़ा और तार खोल कर पढ़ा—

'साहब और मन्मथ पकड़ गये हैं। आप सावधान रहें।'

मन्मथ यह हृदयनाथ के व्यायामशाला का एक उत्साही तथा बहादुर सदस्य था। उसको विशेष रूप से चुन कर भील मण्डल को शिक्षित करने के लिये भेजा गया था। साहब भील मण्डल की आत्मा स्वरूप उसके नायक थे। उनके नेतृत्व में भील लोगों के उद्धार के लिये अनेकों प्रयत्न हो रहे थे। वे कुछ विशेष गौर वर्ण के न थे परन्तु भीलों के काले रंग की तुलना में उनके शरीर का रङ्ग अत्यधिक गोरा होने के कारण भील लोग उन्हें साहब के नाम से पुकारते थे। उनका यह नाम सभी के मुँह पर चढ़ गया था।

जब से भील मण्डल के संसर्ग में हृदयनाथ आया तब से साहब के प्रति उसे पूज्यभाव उत्पन्न हो गया था। व्यायाम शिक्षा और स्वयंसेवकों के नियम के विशेषज्ञ हृदयनाथ को साहब ने विशेष निमन्त्रण द्वारा भील मण्डल में सम्मति देने के लिये बुलाया था। जहाँ-जहाँ शारीरिक उन्नति के लिये प्रयत्न होता हो वहाँ-वहाँ जाकर मार्ग प्रदर्शित करने का कार्य हृदयनाथ सहर्ष स्वीकार करता था। इस कारण भील मण्डल का आमन्त्रण स्वीकार कर वहाँ गया, उनकी संस्था का निरीक्षण किया। व्यायाम और नियम बद्धता के शिक्षा का कार्यक्रम बनाया और अपने शिष्य मन्मथ को इस भील मण्डल के शिक्षण के लिये वहाँ नियुक्त कर दिया।

मन्मथ को वहाँ नियुक्त करने का एक दूसरा कारण भी था। वह अच्छा वक्ता तथा लेखक भी था। भील जैसी अज्ञान और पिछड़ी जाति के उद्धार के कार्य में उसका सहयोग बहुत उपयोगी था। वह निरंजन के समान वाचाल भी था और राजनीतिक वार्ता पर उच्छेदक विचार का पक्षपाती था। यह गुण अवगुणों की सुषुप्ति में से जागृति होती भील सरीखी कौम के लिये विशेष आवश्यक है ऐसी हृदयनाथ की धारणा थी। उसे संगीत का भी शौक था। हृदयनाथ को संगीत सरीखी स्त्रीत्वपूर्ण कला के प्रति थोड़ी भी रुचि नहीं थी। इस कारण भील जैसे जड़ लोगों के सहवास में मन्मथ का संगीत शौक मिट जायेगा, ऐसी भी उसकी धारणा थी।

और मन्मथ ने मण्डल में प्रवेश कर दो तीन वर्षों में नई जान डाल दी। भील लोगों का स्वमान बहुत अधिक बढ़ गया। वह यहाँ तक कि भील जाति को गिरी अवस्था में देखने के आदी अन्य लोगों को वे गर्वितकरने लगे। यथार्थतः भारत तो तुम्हारा ही है, इस प्रकार इतिहास आरम्भ किया, तुम्हारे पास से तुम्हारा भारत देश छीन लेने वाले आर्य, तुम्हें विजित करने वाले यवन और दोनों के मुख में लगाम लगा इच्छानुसार दौड़ाने वाले यूरोपियन। ये सभी तुम पर अत्याचार करने वाले लोग हैं, ऐसी उसने शिक्षा दी। भीलों के पराक्रमों का इतिहास उसने ढूँढ़-ढूँढ़कर निकाला और इतिहास तथा दंत कथाओं के आधार पर भील लोगों में अपना गर्व न समा सके ऐसा एक पक्षीय इतिहास उसने कहानी के रूप में रच डाला। भील नृत्य में उसने संगीत प्रधान भाव की जगह एक नये प्रकार के वीररस पूर्ण संगीत नृत्य का अभ्यास कराया। और उसे संस्कारी बनाने के लिये नृत्य और गति का स्वरूप भी दिया। बल्कि जहाँ-जहाँ भील कोलों की बस्ती थी वहाँ-वहाँ अपने मण्डल के शिक्षित भील युवकों को वह भेजने लगा। उसने गुजरात, मालवा, राजपुताने की सरहदों में जागृति उत्पन्न कर दी।

इन प्रयत्नों को राजनीतिक स्वरूप देने का विचार था, परन्तु साहब के अहिंसा-सिद्धान्त तथा हृदयनाथ की राजनीतिक उदासीनता राजनीतिक स्वरूप उग्र बनाने में बाधक थी। साहब ने भील मण्डल से हिंसा प्रवृत्ति मिटा डाली थी। शिकार और मांसाहार के वातावरण में पली हुई भील प्रजा एक चिड़िया का भी शिकार न करे ऐसी परिस्थिति साहब ने उत्पन्न कर दी थी। किसी भी प्राणी का वध होने से साहब के मन को जो दुःख होता था उस दुःख को भील जैसी क्रूर दीखनेवाली जाति भी सहननहीं करसकती थी। उनकी हिंसा द्वारा हुये आघात का यह उनको शिक्षा देने की अपेक्षा अधिक समर्थ था। हृदयनाथ राजनीतिक बातों में उदासीन था परन्तु वह राज्यभय के कारण नहीं। राजनीतिक आन्दोलन शारीरिक शक्ति बिना केवल गुब्बारा सरीखा है, ऐसी अपनी मान्यता के कारण, वह राजनीतिक प्रसङ्गों में रुचि नहीं लेता था। परन्तु उसके स्नेही अथवा शिष्य इस विषय में अग्रगणी हों तो

उन्हें वह निरुत्साह करने का कभी प्रयत्न नहीं करता था। कैद का भय उसके लिये निरर्थक था। मजबूत से मजबूत कैदखाने की दीवाल को वह मुक्के द्वारा ध्वन्स कर सकता है ऐसा उसे निश्चय था। भारतीय स्वराज्य की माँग कर क्या अपराध कर रहे हैं इसे वह समझ नहीं सका। और ब्रिटिश सल्तनत के साथ अनन्त काल तक सम्बन्धित रहने का अमरपट्ट लिख कर देने का इस युग को क्या अधिकार है यह भी वह समझ नहीं पाता था। ऐसी ही परिस्थिति में उसके अखाड़े के प्रति सरकार को यदि शंका उपस्थित हो तो उसमें आश्चर्य की कोई बात न थी।

तार पढ़ते ही उसने उसे पटक दिया। ऐसे समय तार और वह भी ऐसा समाचार सूचित करनेवाला तार आये, वह चाहे जैसा भी शान्त प्रकृति मनुष्य को उग्र बना दे सकता है।

"गिरफ्तार हुये हैं तो वह उन्हें छुड़ायेगा। और मुझे....... ? मुझे क्या सचेत रहना है ? राजनीति का बबूला तो फूक मारने से ही बैठ जाता है। यह समझना है यही जानकर तो मैं इसमें सम्मलित नहीं होता। यदि मेरे सरीखे दूसरे थोड़े से मनुष्य प्रस्तुत हो जाँय तो बिना भाषण किये हुये ही स्वराज्य न ले लूँगा ?"

ऐसे ही विचारों में निमग्न हृदयनाथ ने मोटर स्टार्ट करने का हुक्म दिया।

"कहाँ चलूँ ?" ड्राइवर ने पूछा।

"क्यों ? मैंने तुम्हें कहा नहीं निरंजन के यहाँ।"

ड्राइवर से हृदयनाथ ने कुछ कहा नहीं था। फिर भी उसने प्रतिवादकर वाद-विवाद नहीं किया। नौकरी करनेवाले का, वेतन देने वाले को सत्यवादी मानने से ही निर्वाह हो सकता है।

बात की बात में निरंजन का घर आ गया। अरविन्द का पत्र लौटा लेने की उसे विशेष उतावली थी। वह निरंजन के घर में गया। निरंजन एक छोटे से किन्तु सुन्दर मकान में अकेला ही रहता था। उसके पिता कभी कभी जब नगर

में आते थे तब वे निरञ्जन के साथ रहते। नहीं तो हमेशा निरंजन अकेला ही एक रसोंईदार व एक नौकर के साथ रहता था। हृदयनाथ ने दरवाजा खटखटाया।

"कौन ?" अन्दर से प्रश्न हुआ।

उसका उत्तर देते हुये हृदयनाथ ने पूछा :-- "निरंजन है ?"

उत्तर में द्वार खुल गया। बगलबंदी पहने हुये, रुद्राक्ष की माला से सुशोभित त्रिपुण्डधारी कोई महात्मा दिखलाई पड़े। धार्मिक अतिशयता अधिक क्रोधित होने का भाव अर्पित करती है, ऐसा पुराणों की वार्ताओं से भी प्रगट होता है। उन अधिकारों को उपयोग में ला रहे हों ऐसा दरवाजा खोलने वाले व्यक्ति की मुद्रा से प्रगट हो रहा था। वह निरंजन के पिता महेशाचन्द्र थे। उन्हें देख हृदयनाथ ने नमस्कार किया और पूछाः—"निरंजन कहाँ हैं ?"

"उसे घर की अथवा मेरी क्या परवाह है ?"

"यहाँ नहीं आये थे ?"

"कल से उसे मैंने देखा ही नहीं।"

"रात को तो मेरे यहाँ सोये थे।"

"तुम्हारे जैसे मित्र का सहारा हो तो फिर वह घर में क्यों सोयेगा ?"

"मैं उसे कुछ बहकाता तो नहीं।"

"बहकाये बिना ही वह मेरी सात पीढ़ियों को डुबाने को तैयार बैठा है ? यहाँ आकर देखो।"

हृदयनाथ घर के अन्दर गया। कोई भी वस्तु छू न जाय, पवित्रता की इतनी अधिक सावधानी रख महेशाचन्द्र एक मोटे आसन पर बैठे और हृदयनाथ को एक कुर्सी पर सामने बैठाया। महेशाचन्द्र का क्रोध रुक नहीं रहा था। क्रोध के आवेश के कारण उनसे बोला नहीं गया। हृदयनाथ को उनपर दया आई। निरंजन ने ऐसा क्या किया है जिससे उसके पिता इतने

अधिक रुष्ट हैं ? संसार में पिता और पुत्र का नाता भी क्या क्लेशपूर्ण होता है ? विवाह के विरुद्ध तर्क के लिये दृष्टान्त उसे मिलते ही जाते थे। उसने पूछा :—

"आपका कहा मेरी समझ में नहीं आया।"

"क्यों समझ में आयेगा ? किन्तु तुम्हें इतना मैं कहे देता हूँ कि निरंजन मेरी प्रतिष्ठा में बट्टा लगाने को तैयार हुआ है, इसलिये मैं उसे एक पाई भी देने को नहीं हूँ। वह अपनी इच्छानुसार चलेगा तो अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति फेंक दूँगा किन्तु उसे एक पाई भी नहीं दूँगा। इसी दिन के लिये इसे इतने लाड़ प्यार से पाला है, क्यों ?" महेशचन्द्र की श्वाँस तेज चल रही थी। रियासत की प्रतिकूल नौकरी न स्वीकारने से, इतने थोड़े के लिये, इतना अधिक क्रोध करने वाले पिता के प्रति उसकी सहानुभूति न्यून होने लगी। उसने मित्र पक्ष ग्रहण करने की स्वाभाविक हिम्मत दिखलाई—

"वह तो इस बात से विज्ञ है। परन्तु आप उससे नौकरी ही कराना चाहते हैं तो शिक्षक के बदले और कोई दूसरी नौकरी दिलवा दीजिये।"

थोड़ा आश्चर्य दिखलाते हुये महेशचन्द्र बोले :—

"नौकरी का कहाँ प्रश्न है ? एक के बदले अनेकों नौकरी मैं उसे दिलवा सकता हूँ। परन्तु उसे तो यह शहर ही छोड़ना पसन्द नहीं है!"

"व्यायामशाला का कार्य और मासिक-पत्र उसे बहुत रुच गया है। इस वर्ष मुनाफा होगा यह मुनाफा सब मैं उसे दे दूँगा।"

"वैसे मेरे पास क्या कमी है ? परन्तु मुझे तो उससे यह शहर ही छुड़वाना है।"

"कारण ?"

"वह तुम्हें मालूम नहीं है ? रात-दिन तो साथ रहते हो ?"

जैसे उसके पुत्र का जीवन नष्ट करने में हृदयनाथ कारण स्वरूप हो ऐसा आरोप लगाने का भाव प्रगट करते हुये महेशचन्द्र ने कहा।

"नहीं तो ! मुझे कुछ भी खबर नहीं है ! केवल मात्र इस समय हमारी संस्था पर सरकार को अविश्वास हुआ है और दूसरी झंझट तो मुझे नहीं दीख रही है ।"

"तुम सब जितना चाहो उतना छिपाओ किन्तु मैंने तो जमाना देखा है। उसका एक-एक कदम मैं परखता हूँ ।"

"मैं कभी कोई बात छिपाता नहीं। छिपाने जैसा एक भी कार्य हम नहीं करते यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ ।" थोड़ा कड़े होकर हृदयनाथ ने कहा ।

महेशचन्द्र इतनी कड़ाई से घबड़ा उठें ऐसा न था। उन्होंने कहाः—

"मेरे लड़के को तुमने होली का नारियल बनाया है। तुम्हारे छिपाने से क्या होगा ।"

"अपने पत्र और व्यायामशाले का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मैं सम्हाल लेता हूँ। निरंजन पर कोई जिम्मेदारी नहीं होगी ।"

"तुम्हारा पत्र और तुम्हारा व्यायामशाला। परन्तु निरञ्जन जो विधवा-विवाह करने को प्रस्तुत हुआ है इसका उत्तर ?"

"विधवा से विवाह निरञ्जन करनेवाला है ?" आश्चर्य चकित हो हृदयनाथ ने पूछा ।

"तुम्हें मालूम नहीं है ?" शंका प्रगट करते हुए महेशचन्द्र ने कहा ।

"नहीं ।"

"क्या कह रहे हो ?"

"मुझसे उसने कभी कहा ही नहीं ।"

"जहाँ मैं एक प्रयत्न करने जाता हूँ वहाँ यह दूसरा षडयन्त्र रच देता है।

मनमोहनराय की कन्या क्या खराब थी ?"

महेशचन्द्र भूल गये थे कि निरञ्जन के मित्र हृदयनाथ के साथ ही रम्भा के विवाह की वार्ता कई वर्षों तक चलती रही। सुन्दर और सुसंस्कृत के सिवाय प्रतिष्ठित घर की कन्यायें युवकों और उनके माता पिताओं को फतिङ्गों के समान आकर्षित करती हैं पर अरविन्द के लिए भी इसी प्रकार के हुए प्रयत्नों को रोकने हेतु ही इस समय वह प्रवृत्त हुआ है। महेशचन्द्र की वार्ता में वह अपना कार्य भूला जा रहा था। यह सब क्या हो रहा है, यह उसकी समझ में नहीं आया।

लोग किस प्रकार साधारणतया विवाहित होते जाते हैं ? उसने अपने मन से ही प्रश्न किया। इतने में महेशचन्द्र बोले:—

"निरञ्जन मिले तो कहना कि जिस दिन वह रमा के साथ विवाह कर लेगा उस दिन मैं उसके नाम मरण का स्नान कर डालूँगा।"

अपना पुत्र किसी विधवा के साथ विवाह कर लेने के बदले मर जाय तो अच्छा है, ऐसी इच्छा करनेवाले पिता महेशचन्द्र का विवाह के प्रति उदासीन भाव है।

"रमा ?" हृदयनाथ के मन में प्रश्न उपस्थित हुआ। यह तो वृन्दा की बहन है।

उसे बात बढ़ाने की इच्छा न थी। उसे आवश्यक कार्य था। इसलिए केवल इतना ही उसने पूछा:—

"मैं उससे कहूँगा। परन्तु इस समय वह कहाँ होगा ?"

"तुम्हारे यहाँ हो अथवा रमा के घर गया हो। दूसरा कहाँ ?" महेशचन्द्र ने कहा।

हृदयनाथ उठ खड़ा हुआ। जिस मित्र को अरविन्द ने पत्र लिखा था उस मित्र के ही घर जाना उसे उचित प्रतीत हुआ। तेज चाल से मोटर

चलवाकर वह वहाँ पहुँचा। भाई के एक मित्र चबूतरे पर चढ़ रहे थे कि हृदयनाथ को देख वे खड़े हो गये और पूछा:—

"क्यों हृदय ? तुम कहाँ से ?"

"भाई ने मुझे भेजा है। उस पत्र को उन्होंने वापस माँगा है।"

"क्यों ?"

"पत्र में लिखे अनुसार उनकी करने की इच्छा नहीं हो रही है।"

"वे पागल हैं क्या ? ऐसी बातों में एकबार हाँ फिर ना ऐसा होता है क्या ? मैं अभी ही मनमोहनराय के यहाँ से होकर आ रहा हूँ। उन्होंने और रम्भा ने स्वीकृति दे दी है। अब उसमें रदोबदल नहीं हो सकता।"

हृदयनाथ लौटने लगा। संसार चक्र में कोई भयङ्कर भूल हो गयी हो इस प्रकार हृदयनाथ खिन्न बन गया। मित्र ने कहा—

"हृदय मुझे भी साथ ले चलो। उन्हें ठिकाने लाना पड़ेगा।"

हृदयनाथ अपने बड़े भाई के मित्र को इन्कार कर दे ऐसा नहीं हो सका। उसने उन्हें साथ बैठा लिया। मितभाषी हृदय को कुछ बात करना नहीं था। परन्तु मित्र ने पूछा:—

"हृदय, अरविन्द की तबियत कैसी है ?"

"इस समय तो ठीक है।"

"ठीक भले ही मालूम दे परन्तु विवाह किये बिना उनका स्वास्थ्य ठीक होनेवाला नहीं है।" मित्र ने अपना अभिप्राय प्रगट किया।

इस अभिप्राय सरीखा भूल भरा दूसरा अभिप्राय नहीं है ऐसा प्रामाणित करने को हृदय उद्विग्न हुआ. परन्तु उसने कुछ कहा नहीं। उसे अरविन्द के साथ ही निरञ्जन की चिन्ता उत्पन्न हो उठी थी। रमा के साथ वह विवाह करेगा ? वह तो विधवा है। रमा की माँ स्वीकृति देगी ? कितनी छोटी

उम्र में वह बेचारी विधवा हुई ? वृन्दा के मुकाबले में वह क्या अधिक उम्र की लगती है ?

फिर वृन्दा कल्पना में आयी। क्यों ? उसने चिढ़ते हुए मन में ही प्रश्न उपस्थित किया। इतने में उसका घर आ गया। मित्र को वहाँ उतार दिया और ड्राइवर को आज्ञा दी कि शहर के बाहर ले चलो।

उसने खूब तेज चाल से मोटर को शहर के बाहरी भागों में दौड़ाया।

—::०::—

२४

आकस्मिक घटना

रोते रोते रमा की आँखें सूज गयीं। शशिरेखा की आँखों को तो रोने की आदत ही पड़ गयी थी। बृन्दा रोनेवाली न थी। बात बात में दुःखी होना, सीधे शब्दों में व्यङ्ग देखना, टपाटप आँसू टपकाना, यह सब बृन्दा को नहीं आता था। उसके मुख के सुन्दर भाव और उसकी आँखों में चमक उठनेवाला हास्य उसके सहपाठियों को भी आकर्षित करता। वह हँसती तो उसके गालों पर दो छोटे छोटे वर्तुल (गढ़े) पड़ते और नोकदार लगते चिबुक पर स्थिर बतुल को प्राण अर्पित करते। किसी की दृष्टि पड़ते ही लज्जावती की भाँति वह संकुचित नहीं हो जाती थी! वह स्थिरता पूर्वक स्वभाविकता से दूसरे की दृष्टि से दृष्टि मिला सकती थी और अपनी ओर दृष्टिपात करनेवाले को चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष उसे अपनी दृष्टि हटा लेने के लिए विवश कर देती।

मिस कोलिन्स को यह युवतीबाला अत्यधिक मन भा गई थी। बृन्दा की स्फूर्ति को देख उसे अपने देश की किशोरियों का स्मरण हो आता था। रङ्ग और परिधान की भिन्नता उसे मिस कोलिन्स की दृष्टि में अधिक आकर्षक बनाती थी और युग-युग के हिन्दू संसार में अंग्रेजी शिक्षा के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई झलक का विचार हो जाता, बृन्दा में स्त्रीत्व की कोई नवीन भावना स्फुरित हो रही हो ऐसा उसे प्रतीत हो रहा था। मिस कोलिन्स ने एक बार उससे कहा—

"बृन्दा तुम पूर्व जन्म में कोई यूरोपियन अथवा अमेरिकन कन्या रही होगी।"

"आप पूर्व जन्म के सिद्धान्त को मानती हैं ?" वृन्दा ने प्रश्न किया।

"तुम्हें देखते हुए इसे मानना ही पड़ेगा ऐसा मालूम होता है।"

"कारण ?"

"तुम अपने व्यवहारों से मुझे अपने देश का स्मरण करा देती हो।"

"स्त्रियाँ तो सभी समान ही हैं न ?"

"नहीं भिन्नता होती है। नृवंश विद्या (Anthropology) के विषय में तुम्हें कुछ ज्ञान है ? यूरोपियन विद्वान एक मार्गी नहीं होते। किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करने में वे पूर्ण अध्ययन किये बिना नहीं रहते।"

"थोड़ा पढ़ा है..........। मैं इतना ही समझती हूँ.......हम आत्मा को जन्म लेनेवाला मानती हैं और आप इस विद्या में शरीर और मनुष्य को जन्म लेनेवाला मानती हैं।" वृन्दा ने कहा।

जिसके लिए पक्षपात होता है, उसकी चर्चा अच्छी लगती ही है। मिस कोलिन्स को इस अनुभव में भारतवासियों के तत्वज्ञान के समझने की अपूर्व शक्ति का भास हुआ। भारत के विषय में लिखनेवाली पुस्तक में इस प्रकरण को लिखने का उसने निश्चय किया।

"निश्चय। परन्तु तुम हमलोगों में मिलती सी क्यों लगती हो ?" मिस कोलिन्स ने पूछा।

"कारण हजारों वर्षों के पूर्व हमारे और आपके पूर्वज एक थे।" समूची आर्य जाति का आज तक का स्वीकार किया इतिहास वृन्दा ने थोड़े में बतला दिया।

ऐसी ऐसी बातों के सम्बन्ध से मिस कोलिन्स और वृन्दा के बीच एक प्रकार की मित्रता हो गई। मिस कोलिन्स वृन्दा को अपने साथ ही रखती।

दूसरी युवतियों में उन्होंने व्यायाम और सौन्दर्य तथा नृत्य की भावना जागृत किया। नृत्यों का परिचय भी कराने का प्रयत्न किया करती थीं। किन्तु वृन्दा में जिस शक्ति को उन्होंने परखा उससे उन्होंने यही स्थिर किया कि उनके कार्य को वही सफल बनायेगी। ऐसी उनकी दृढ़ धारणा हो गयी थी। सौन्दर्य को मुख में अवलोकन करने का संसार को अभ्यास हो गया है, परन्तु यह तो समूचे शरीर की कान्ति है। कला की पुजारिन मिस कोलिन्स इसे अच्छी तरह समझती थी। वृन्दा के सम्पूर्ण शरीर की मरोड़ और स्फूर्ति उसे नृत्य की साक्षात् मूर्ति रूप बनाने के लिए ही है ऐसी वह धारणा करती थी। इसी से वह वृन्दा को अपने पास रखती, अपनी कला सीखने का आग्रह करती और व्यायाम तथा नृत्य में विलक्षणता प्राप्त करने के लिए वृन्दा को प्रेरित करती।

वृन्दा को व्यायाम और नृत्य के अनुभव ने अनेकों नवीनता दी, परन्तु अनुकूल प्रतीत हुए नृत्य का पहला पैतरा, पहला हस्त मरोड़ और प्रथम अवयव भङ्ग यह नवीन सृष्टि के प्रवेश सरीखा—नवीन जन्म सरीखा— आश्चर्यजनक, आह्लादक और भयजनक लगा। प्रथम वायुयान, प्रथम समुद्री जहाज और पहली योग सिद्धी के अनुभव के साथ ही प्रथम नृत्य के अनुभव की समानता की जा सकती है और उसे प्राप्त कर लेने पर यथार्थ मानते हैं। कितने हृदय रोमाञ्च नहीं सह सकते, ऐसे अकथ्य अनुभव का प्रथम आघात सहन नहीं हो सकता। वृन्दा को नृत्य का अनुभव रुचा और मिस कोलिन्स से उसने नृत्य की प्रारम्भिक शिक्षा लेना प्रारम्भ किया।

जिसके पैरों में नृत्यकी एक ठमक बैठ गयी उसके पैरों में बारम्बार थेई-थेई की गति उत्पन्न हुआ करती है। मिस कोलिन्स दूसरी युवतियों को व्यायाम का केवल प्रकार समझाती थीं; अकेली वृन्दा के लिये ही उन्होंने नृत्य में प्रविष्ट होना स्वीकार किया। रमा को मामूली तौर पर मालूम था, परन्तु उसके सिवाय दूसरा कोई वृन्दा के नृत्य शिक्षा ग्रहण करने की बात जानता नहीं था। एक दिन घर का कार्य करते समय वह एक कमरे में

कुछ लेने गयी। काम करने के समय में ही वह मंद स्वर में गा रही थी।

वृन्दावन में थनक था थेई-थेई, हाँ रे राधे कृष्ण बिना, हाँ रे राधे कृष्ण बिना ... ...। कोठरी में जाते-जाते उसकी गति में न रोका जा सके ऐसा ठेका आ गया। उस ठेका के साथ ही उसका पैर मुड़ गया और उसकी कमर में लचक आ गई।

"वृन्दा! क्या कर रही है पगली?" शशिरेखा ने उसका अभिनय देख लिया और हँसते हँसते पूछा। वृन्दा के हँसमुख और उपद्रवी स्वभाव को वह जानती थी। किसी को चिढ़ाने की तरकीब की योग्यता पर कई बार व्यङ्ग कर वह हँसा करतीं थीं।

"कुछ नहीं माँ! मैं तो गा रही थी।" उसने शरमाते शरमाते हँस कर उत्तर दिया।"

"तू गा रही है इसे मैं सुन रही हूँ। परन्तु साथ ही नाच भी रही है, क्या यह ठीक है?"

"यह तो उस मिस कोलिन्स से नाचना सीखती है।" रमा ने हँस कर संक्षेप में सूचना दी। रमा और वृन्दा को शशिरेखा ने कभी कड़ा शब्द सुनने का अभ्यास नहीं कराया था। संसार में बिना माता पिता की लड़कियों को परस्पर के सिवाय दूसरा कोई सगा नहीं होता, यदि ऐसा कहा जाय तो चल सकता है। शशिरेखा ने लड़कियों को भी दुखित नहीं किया था। लड़कियों ने भी उन्हें कभी असन्तोष का कारण उपस्थित होने नहीं दिया। शशिरेखा उस समय में सुधरी हुई गिनी जाती थी। उसने अपनी कन्याओं को पूरी शिक्षा दी, आर्थिक स्वतन्त्रता अर्पण करने का प्रयत्न किया था। शिक्षित होने से अन्य दूसरा लाभ होगा या नहीं, परन्तु उच्च शिक्षा स्त्रियों को आर्थिक साधन रूप में आवश्यक है ऐसी उनकी मान्यता हो गई थी।

स्त्रियों को सुशिक्षित बनाने का साहस करनेवाले, सुसभ्य होने का अभिमान करनेवाले माता-पिता इस उच्चकोटि की शिक्षा के अन्य परिणामों पर कदाचित

ही विचार करते हैं। परन्तु जिस उच्च शिक्षा ने पुरुषों में न्याय जाति के भेद की तीव्रता को क्षीण कर डाला है, प्राचीन धर्म-भावना को शिथिल बना उसमें नवीनता अर्पित की है, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता हेतु उनमें जागृति पैदा की है वही शिक्षा स्त्रियों की भावना में अधिक परिवर्तन करेगी और नवीन जागृति के अनुकूल उनका जीवन निर्माण करेगी ये बातें वे भूल जाते हैं ऐसा मालूम होता है। वे इतना ही सोचते हैं कि उनकी कन्यायें शिक्षा ग्रहण कर किसी धनवान और विद्वान् पति के घर को सुशोभित करेंगी। सुसंस्कृत माता बन सन्तानों की गृह शिक्षा की सुदृढ़ नीव डालेंगी और स्त्री जाति की उन्नति का उनका स्वीकार किया हुआ मार्ग अन्य स्त्रियों में ग्रहण कराने का कार्य करेंगी। उन्हें विचार भी नहीं आता कि यही शिक्षा कन्याओं को कुँआरी रहने की प्रेरणा भी देगा। अनजाने स्थान से पति को खोज निकालने की रुचि उत्पन्न करेगी और सन्तान की संख्या सीमित करनेवाली शर्तें पालन करेंगी। इतना ही नहीं, बल्कि यही शिक्षा कन्याओं को संगीत और नृत्य सीखने की रुचि उत्पन्न कर देगी, शृङ्गार के नवीन प्रयोगों के उपयोग के लिए लालायित करेगी और पिछले युग से आधुनिक बने माता-पिता भी स्तब्ध हो जाँय ऐसे आकस्मिक व्यवहार करने का साहस उन्हें अर्पित करेगी। शिक्षा यानी विकास यह विकास उन माता-पिता का नहीं, परन्तु शिक्षा ग्रहण करनेवालों का।

शशिरेखा ने स्वप्न में भी न सोचा था कि वृन्दा नृत्य सीखती है। वह अपने समय की पाठशाला के अनुभव की कल्पना करती थी। साधारण ताली के गरवा में हाथ पैर के भाव प्रदर्शन को अधिक उपयोग में लेती हुई गरवों की पद्धति सीखती है। परन्तु यह सब कहाँ और नृत्य कहाँ? वह भूल गयी थी कि पाठशाला का गरवा भी अधिक टीका का पात्र हो जाता था पाठशाले में जाती हुई लड़कियों को देखना और उन्हें कंकड़ मारना, इकट्ठे हुये लोगों की बात, उसके समय की कोई बात पुरानी नहीं हो गई थी। अतः अपनी पुत्री को नृत्य में रस लेती हुई जानकर शशिरेखा के मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई।

"नहीं माँ। नृत्य कैसा? यह तो व्यायाम के रूप में थोड़ा परिश्रम होता है इतना ही, रमा तो इसी प्रकार हँसी किया करती है।" वृन्दा ने सफाई दिया।

परन्तु माँ के मन को विश्वास नहीं हुआ। उसने रमा और वृन्दा की सहेलियों द्वारा बहुत सी बातें जान ली। उसके समझ में आ गया कि वह अमेरिकन स्त्री चंचल वृन्दा को अधिक प्रोत्साहन देती है और व्यायाम के बहाने उसे थोड़ा-थोड़ा नृत्य भी सिखलाती है। भाग्य ने एक कन्या को विधवा बना दिया दूसरी कन्या नाचना सीखेगी और वह बिगड़ जायेगी तब? माता ने निःश्वास छोड़ा। उसने निश्चय किया कि मिस कोलिन्स का संसर्ग वृन्दा से कम होने देना चाहिए। मिस कोलिन्स के लिए सरकार ने विशेष व्यवस्था कर दी थी और शिक्षाविभाग की संस्थाओं को उसकी सहायता करने की सूचना प्रसारित कर दी थी। इसलिए युवतियों को मिस कोलिन्स के संसर्ग में आने की पूरी सुविधा थी। शिक्षित स्त्रियों द्वारा ही वह अपने स्त्री-व्यायाम के आदर्शों का प्रचार कर सकती थी, इसे वह स्वयं अच्छी तरह जानती थी. इसीलिए वह अपने व्यवहार से सबको अपने वश में कर लेती थी अपनी कार्य दक्षता से सबको सहयोगी बना, शिक्षित युवतियों को अपनी ओर आकर्षित करती रहती थी।

उसके फन्दे से वृन्दा छूट निकले यह बहुत मुश्किल काम था। वृन्दा का स्वभाव रमा सरीखा मृदु नहीं है इसे शशिरेखा जानती थी और उसमें उच्च शिक्षा के स्वतंत्र वातावरण के प्रभाव से आज्ञा पालन के घटते जाते गुण के प्रति शशिरेखा को भय लगा। एक दिन शशिरेखा ने हिम्मत कर वृन्दा से बातें की।

"देखो वृन्दा, मैं कितना दुख उठा कर तुम्हें शिक्षा दिला रही हूँ इसे तुम जानती हो न?"

"हाँ, माँ! यह कैसे भूला जा सकता है?"

"तब तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध चलती हो इसका क्या मतलब समझा जाय ?"

"आपकी इच्छा विरुद्ध मैंने कुछ किया ही नहीं ! आपको ऐसा क्यों जान पड़ा ?"

"तुम उस मिस कोलिन्स से नाचना सीखती हो इससे लोगों में कितने प्रकार की चर्चा होती है ? मैं अपने और रमा के दुःख से तो मरी जा रही हूँ उस पर तुम्हारी निन्दा हो तो मेरे लिये तो जमीन में कहीं खड़ी रहने की जगह भी न रह जायेगी ।"

वृन्दा ने लापरवाही प्रदर्शित करते हुये अपने कन्धों को उचका कर कहा—

"लोग भले ही जो इच्छा हो कहें। आप भी तो कहती थीं कि आपके समय में जो लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण करती थीं उनकी लोग निन्दा करते थे। मैं कुछ नया सीखूँगी इसलिये लोग जैसा भावेगा बोलेंगे ।"

"परन्तु बेटी, पढ़ना और नाचना इन दोनों में बड़ा अन्तर है। अपने में कौन नाचता है उसे तुम समझती हो ?"

माँ बाप की धारणा उपरान्त सन्तान अधिक समझती है यह सब कोई भूल जाता है। नर्तकी यह कला की उपासिका नहीं बल्कि पतित और भ्रष्ट है, ऐसा हिन्दू समाज की धारणा है यह बात वृन्दा से अनजान न थी। परन्तु शिक्षित और अशिक्षित नर्तकी का नृत्य देख उसमें तल्लीन होने के पश्चात् उसकी ओर जो तिरस्कार दृष्टि परम्परा से संजोता रहा है उस तिरस्कार की दृष्टि का अभी वृन्दा में प्रादुर्भाव न हुआ था, उसके कौतुकी स्वभाव को पापी भी तिरस्कार योग्य नहीं लगता था। उसने कौतुकता पूर्वक उत्तर दिया—

"पूर्व समय में तो राज कन्याएँ भी नाचना सीखती थीं।"

"वह राज कन्याओं को शोभा देता था, अपने लोगों को नहीं। फिर वह पहले का समय भी गया ।"

"देखो माँ ! यदि तुम चिढ़ो नहीं तो मैं कुछ कहूँ ।"

"क्या ?"

वृन्दा ने तुरन्त मन्द स्वर में गाना शुरू किया—

"मैं तो रघुबर आगे नाचूँगी............।

"अरे पगली !" शशिरेखा ने कहा।

"थोड़ा सुनो तो माँ........। गीत, नृत्य, साज, यन्त्र, ताल और तान माने माँ ?"

"अरे वल्लभ का गरवा याद कर, यानी........

नाचे नंदलाल, नचावे वाकी मैया।

"इसमें तो यशोदा मैया ही कृष्ण भगवान् को नाचना सिखा रही हैं।"

"तुझे वाद-विवाद करना हो तो तू जाने। परन्तु मुझे यह अच्छा नहीं लगता।" शशिरेखा के मुख पर अत्यन्त दुःख का भाव प्रगट हो गया। वृन्दा से यह सहन नहीं हुआ उसने माँ का हाथ पकड़ लिया और कहा—

"अरे, अरे। इसमें इतना दुःख किसलिए कर रही हो? तुमको अच्छा नहीं लगता तो जाने दो। मैं नाचना नहीं सीखूँगी। बस !"

माता ने अनुभव किया लड़की नम्रता दिखला रही है। उसने उसका अधिक लाभ उठाना चाहा। मिस कोलिन्स की संगत ही छूट जाय ऐसा करने की उसने सोचा।

"मैं तो यही कहती हूँ कि ऐसी परदेसी स्त्री की संगत तू छोड़ दे तो कैसा हो ?"

वृन्दा की पलकें पाँच छः बार झपकी और खुली। इतने ही क्षणों में उसके मन में अनेकों विचार आये। मिस कोलिन्स की संगति वह छोड़ दे तो बहुत बातें जानने से रह जायेगी। इस स्त्री में जरा भी दरिद्रता न थी। उसे पुरुषों को एकत्रित करने का भी शौक नहीं था। पुरुषों में उसने केवल

हृदयनाथ की संगति की थी और वह विचित्र मनुष्य उससे भागता फिरता है। मिस कोलिन्स का साथ यदि वह छोड़ दे तो हृदयनाथ के संकोचपन के देखने का आनन्द भी जाता रहेगा। कैसी विचित्र बात है इतना सुन्दर मुँह है परन्तु अपनी विचित्रता के कारण कैसा दीखता है..........?

"आपकी यदि ऐसी ही इच्छा हो तो मैं आज से ही उससे मिलना बन्द कर दूँगी ? फिर........... फिर तो ठीक !" वृन्दा ने उन्हीं कुछ क्षणों में निश्चय कर माता को सन्तोष दिला दिया।

इस प्रकार अपनी धारणा के विपरीत नम्र बनती जाती हुई कन्या के प्रति माता को अत्यन्त गर्व हुआ। वृन्दा साधारणतः आनन्दमयी स्वभाव-वाली दिखाई पड़ती थी, परन्तु जब जब शशिरेखा ने उससे कुछ कहा है तब तब उसने उसकी आज्ञा न मानी हो ऐसा एक भी प्रसङ्ग उसे स्मरण न आया। वृन्दा की आज्ञा परायणता देख शशिरेखा का मन एकदम द्रवित हो उठा। उसने कहा—

"देखो बेटी ! मैं तुम्हें मिलने के लिए मना नहीं कर रही हूँ ऐसा मत सोचना। मैं तो इतना ही कहती हूँ कि उनकी और अपनी रहन-सहन में अन्तर है, इसलिए उनकी नकल अपने को अनुकूल न होगी। कभी-कभी मिलने की मेरी कुछ मनाही नहीं है।"

परन्तु उस दिन से वृन्दा ने नृत्य सीखना बन्द कर दिया। इतना ही नहीं, मिस कोलिन्स के पास जाना भी कम कर डाला मिस कोलिन्स को उसने अपनी परिस्थिति समझाई। अभ्यास और प्रचार के कार्य में प्रवृत्त यह सुशिक्षिता नारी एक हिन्दू माता के दृष्टि विन्दु को समझ गयी, यद्यपि वह वृन्दा सरीखी शिष्या को खोने से दुखी हुई, तथापि उसने अपने कार्य को उसी प्रकार चालू रक्खा।

बढ़ा हुआ सम्बन्ध घटाने में भी समय लगता है। वृन्दा मिस कोलिन्स के पास कभी-कभी जाती। एक दिन कालेज में छुट्टी थी। वृन्दा को दो घंटा

उसके निकट बिताने की इच्छा हुई। मिस कोलिन्स ने समीप आती हुई बृन्दा को आदर पूर्वक बुलाया और कहा—

"बृन्दा तुम्हारी ही आवश्यकता पड़ी है। यदि तुम न आई होती तो मैं तुम्हारे घर आती।"

कभी-कभी मिस कोलिन्स बृन्दा के घर भी जाती थीं, इतना सद्भाव दोनों के बीच था।

"ऐसा क्या काम आ पड़ा?" बृन्दा ने आश्चर्य से पूछा।

"मेरे इस लेख का हिन्दी अनुवाद करना है। आज ही तैयार कर हृदयनाथ को दे देना है। उन्होंने अपने पत्र में स्थान देना स्वीकार कर लिया है।"

"कितना बड़ा है। देखूँ?" बृन्दा लेख देखने लगी।

"छोटा ही है। कला, शरीर के सौन्दर्य और व्यायाम इन तीनों के अनिवार्य सम्बन्ध के विषय में थोड़ा विचार लिखा है।" इतना कह मिस-कोलिन्स ने लेख बृन्दा को दे दिया। बृन्दा को वह लेख बहुत ही रुचा। उसने शीघ्रता पूर्वक उसका अनुवाद कर दिया।

"मेरे साथ चलोगी? मैं तुम्हें घर छोड़ दूँगी।" लेख, अनुवाद और चित्रों का संग्रह लेकर खड़ी होते हुए मिस कोलिन्स ने पूछा।

'हाँ चलिये" बृन्दा भी साथ जाने को तत्पर हुई। उसकी इच्छा उन चित्रों के अलबम को देखने की थी। मोटर में बैठकर उसने पूछा—

"यह चित्र कैसा है?"

"तुम देखना चाहती हो? दिखलाऊँ?"

"यदि आपको आपत्ति न हो तो दिखलाइए।"

'आपत्ति तो मुझे कुछ भी नहीं है। तुम्हें कदाचित् हो। तुम्हारा सुधरा

समाज बहुत पिछड़ा हुआ है।"

"मुझे कुछ दिक्कत नहीं है। देखूँ।"

सहज ही मिस कोलिन्स ने चित्रसंग्रह बृन्दा के हाथों में दे दिया और बृन्दा के मुख पर पड़नेवाले प्रभावों को ध्यानपूर्वक देखने लगी। दो अथवा तीन चित्रों को देखते देखते बृन्दा के मुख पर लज्जा की परछाईं प्रगट होने लगी। संग्रह की ओर ही मुख किए हुए उसने शीघ्रतापूर्वक आँख ऊपर उठाईं और पुनः देखने लगी। उसने देखा कि मिस कोलिन्स की दृष्टि उसके मुख पर गड़ी है। उसने चित्रों का देखना अधूरा छोड़ दिया और आवाज के साथ अलबम बन्द कर उसे मिस कोलिन्स के हाथों में दे दिया।

'ऐसे चित्र देखते ही लज्जा आये। इतने असभ्य ?" बृन्दा ने टीका की।

"असभ्य ? तुम लोगों ने अभी वैज्ञानिक निष्पक्षपात की शिक्षा नहीं प्राप्त की है।"

"हमें उसे प्राप्त भी नहीं करना है। हमसे तो चित्र देखे भी नहीं जा सकते।" बृन्दा ने अर्ध सत्य कहा। वह इस प्रकार कहना चाहती थी कि मुझसे ऐसे चित्र किसी के देखते हुये देखे नहीं जा सकते और किसी दूसरे से देखने के लिए कहा भी नहीं जा सकता।

"शरीर असभ्य है ही नहीं, अपनी दृष्टि में सभ्य असभ्य का भेद रहता है।"

"ठीक। यह चित्र आप कहाँ से लायीं ?" बृन्दा ने पूछा।

"यह मेरे अभ्यास का परिणाम है। कलाकारों के कल्पना का शरीर सौष्ठव और यथार्थ जीवन में दीखता शरीर सौष्ठव का नमूना मैंने एकत्रित किया है। कला और जीवन परस्पर अनुसरित हैं। इतना ही तो मैंने अभ्यास में अनुभव प्राप्त किया है। अङ्ग अङ्ग का सौन्दर्य विशिष्ट मैंने इस संग्रह में एकत्रित कर रक्खा है। तुम्हारे पैरों की सुन्दरता... ...।"

"धन्यवाद धन्यवाद ! उसे इस संग्रह में रक्खा क्या है ?"

"इन चित्रों का ब्लाक भी मेरे पास तैयार है। यदि हृदयनाथ इसमें से चित्र पसन्द करें तो मैं उसे उनकी पत्रिका में छपवाऊँगी। सौन्दर्य की भावना का इतिहास नामक मेरी पुस्तक से शरीर पूजा के प्रकरण को निरञ्जन ने पत्र में स्थान देने का निश्चय किया है, उसमें इन चित्रों का उपयोग हो सकता है।"

वृन्दा हंसी। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसको केवल एक ही शंका उत्पन्न हुई।

मिस कॉलिन्स हृदयनाथ से कैसे मिला करती हैं। वह तो स्त्रियों से भागता फिरता है।

स्त्री हृदय की बनावट ही कुछ ऐसी होती है कि उसमें ईर्षा और शंका शीघ्रतापूर्वक प्रवेश पा जाती है।

——::०::——

२५

बहन

हृदयनाथ और निरञ्जन एक अधेड़ वय के अनुभवी गृहस्थ के निकट बैठे वार्तालाप कर रहे थे।

"साहब ! आपका बयान कम विचित्र न था ?" निरञ्जन ने कहा।

"मेरी समझ में न आया। आपको झूठ बोलने का क्या कारण था ?" हृदयनाथ ने पूछा।

"मैं झूठ बोला हूँ ऐसा आप समझ रहे हैं ? हाँ मेरा बयान सभी को विचित्र लगा होगा। किन्तु जो सत्य बात थी वही मैंने बतलाया है।"

साहब के नाम से सम्बोधित होता भील मण्डल की आत्मास्वरूप उस व्यक्ति ने कहा। आज ही मन्मथ और उनको हृदयनाथ ने अपनी जमानत पर छुड़ाया था। साहब का बयान सुन सारी अदालत विचारयुक्त हो उठी थी। उनसे पूछा गया था—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मुझे नहीं मालूम। परन्तु मेरे स्नेही मुझे 'साहब' कहकर सम्बोधित करते हैं।"

"तुम्हें अपना नाम नहीं मालूम ? बड़ी विचित्र बात है ? तुम्हारा बयान ही तुम्हें जमानत पर छुड़ाने का आधार होगा। खैर........तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?"

"हजूर ! मेरी बातों में असत्य का अंश मात्र भी नहीं है इसे आप विश्वास मानिये। मैं अपने पिता का भी नाम नहीं जानता।"

न्यायाधीश ऊब उठा। वह थोड़ा क्रोधित होते हुए बोला—

"यों, ऐसे अपराधी को उसका नाम-पता बिना जाने जमानत पर मैं क्यों कर छोड़ सकूँगा ?"

"जिस नाम से आपने पकड़ा है उसी नाम से आपको छोड़ना है। इसमें कोई कठिन बात नहीं है।" साहब के केस के लिए विशेष नियुक्त वकील मनमोहनराय ने कहा। इस विषय पर दोनों पक्षों के बीच यथेष्ठ विवाद हुआ। परन्तु व्यक्ति विशेष का निश्चय हो जाने के कारण नाम का अनजानपन स्वीकृत हो गया और कार्यवाही आगे बढ़ी। पुलिस का विवरण अस्पष्ट होने और हृदयनाथ जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति की जमानत पर दोनों अपराधियों को मुक्त कर देने की न्यायाधीश ने आज्ञा दी।

ऐसे बयान से सभी अचम्भित हों तो इसमें कुछ नवीनता नहीं है। साहब का नाम जानने और पूछने की किसी को आज तक आवश्यकता हुई हो ऐसा भी नहीं था। परन्तु अब निरञ्जन और हृदयनाथ दोनों को ही नाम सम्बन्धी स्पष्टता कर लेने की इच्छा हुई।

"इन भील लोगों का काम हाथ में लिए हुए आपको कितने वर्ष हुए होंगे ?" दूसरी रीत से नाम जानने के लिए हृदयनाथ ने प्रश्न किया। हृदयनाथ झूठ सहन नहीं कर सकता था।

"बारह वर्ष हुआ होगा।" साहब ने उत्तर दिया।

"इसके पहले आप क्या करते थे ?"

साहब ने निःश्वास लिया और कुछ स्मरण कर रहे हों इस प्रकार आँखें स्थिर कीं। एकाएक उनकी मुख आकृति कठोर हो उठी। स्थिर हुई आँखों से चपलता चली गई और हाथ की मुट्ठियाँ बँध गईं। निरञ्जन चिल्ला उठा।

"साहब !"

किन्तु साहब की श्रवण शक्ति लोप हो गयी थी। हृदयनाथ ने उन्हें पकड़ लिया। निरञ्जन ने पानी लाकर मुख पर छिड़का। अभी वैसी ही स्थिति थी, इतने में किसी ने सूचना दी :—मिस कोलिन्स आयी हैं।

"यह पाप इस नगर से क्यों नहीं टलता ?" ऊबे हुये हृदयनाथ ने कहा। निरंजन यह सुनकर हँसा और साहब की परिचर्या में हृदयनाथ को छोड़ स्वयं मिस कोलिन्स की अभ्यर्थना को चला गया।

इतने में साहब की आँखें खुल गयीं। उनमें चैतन्यता आई। उन्होंने हाथ ऊँचा नीचा किया और हृदयनाथ से पूछा—

"आप लोग घबड़ा तो नहीं गए ?"

"मैं तो अभी डाक्टर को बुलाने के लिये आदमी भेजने वाला था।"

"अच्छा हुआ जो किसी को नहीं भेजा। मैं कौन था इसका जब मैं स्मरण करने का प्रयत्न करता हूँ तभी मुझे ऐसा हो जाता है। होश में आने पर मस्तिष्क में कचट सी होने लगती है और अर्थहीन स्वप्न सा दिखाया करता है।

निरंजन, मिस कोलिन्स और वृन्दा वहाँ आयीं, कैसा स्वप्न दीखता है ? ऐसा प्रश्न करने के लिये प्रस्तुत हुये हृदयनाथ को यह प्रश्न करने में उन लोगों ने बाधा डाली। निरंजन ने मिस कोलिन्स का और उसी प्रकार वृन्दा का साहब से परिचय कराया।

मिस कोलिन्स को व्यायाम और नृत्य विशेष की जानकारी कराने के लिये एक योग मिला।

"भील यह शूरवीर और लड़ाकू जाति है इसलिये उनके नृत्य में वीर रस की छाया अधिक दिखलायी पड़ती है।" साहब ने कहा।

"संस्कार की प्राथमिक भूमिका में रही सभी जातियों में युद्ध नृत्य प्रचलित हैं। संस्कार की वृद्धि के साथ ये युद्ध नृत्य लुप्त होते जा रहे

हैं। इसका कारण क्या है ?'' मिस कोलिन्स ने विद्वत्तापूर्ण बात आरम्भ की।

"असंस्कृत जाति में युद्ध प्रत्येक व्यक्ति का निजी धर्म होता है। संस्कार वृद्धि के साथ युद्ध कुछ लोगों के लिये व्यवस्थित कार्य होने लगा। युद्ध यह मान का प्रश्न मिटकर प्रधान विषय बन जाता है और बिना रसिकता नृत्य हो ही नहीं सकता।"

"आपका कहना ठीक है, परन्तु भील लोगों के नृत्य में तो स्त्री पुरुष एक साथ मिलकर नाचते हैं। क्यों सत्य है न, हृदयनाथ जी ?" हृदयनाथ ने किसी समय भील नृत्य की बात की थी। इसलिये उसकी अनिच्छा होने पर भी मिस कोलिन्स ने उसे बात में घसीट ही लिया।

"जी।" कह हृदय कुछ दूर पर पड़ी हुई कुर्सी पर जा बैठा।

बात कुछ समय के लिए रुक गई। इस कारण मिस कोलिन्स चट हृदयनाथ के निकट कुर्सी पर बैठ उससे बातें करने लगीं। साहब की दृष्टि वृन्दा को खोजा करती थी। मिस कोलिन्स की बातें बन्द हुई इसलिए साहब को वृन्दा के साथ बात करने की सुविधा मिली।

"आपने क्या नाम बतलाया वृन्दा ? वृन्दा ! क्यों ?"

"जी। जी हाँ।"

"नाम तो नया है, परन्तु जैसे मैंने कभी सुना हो।" साहब ने कहा। परन्तु वृन्दा को इन बातों में कोई रस न था। उसकी दृष्टि बारम्बार हृदयनाथ और मिस कोलिन्स जहाँ बैठे थे उसी ओर जाती थी। वह दो अवधान का प्रयत्न करती थी। साहब के साथ बात चालू रखती थी और दृष्टि मिस कोलिन्स जहाँ बैठी थी उसी ओर जाती रहती थी। वह दो अवधान का प्रयत्न करती थी साहब के साथ बात चालू रखती थी और मिस कोलिन्स तथा हृदयनाथ के बीच होती बातों को थोड़ा अधिक सुनने की कोशिश भी कर रही थी।

"वृन्दा के पिता दीवान थे।" निरञ्जन ने परिचय को अधिक स्पष्ट करने के लिए कहा।

"ऐसा......? इसी कारण यह उच्च योग्यता की शिक्षा प्राप्त कर सकी और मिस कोलिन्स जैसी विदुषी महिला की संगति भी हो सकी।" साहब ने मामूली ढंग से कहा।

परन्तु वृन्दा को अपनी विशिष्टता का ध्यान इस समय आ ही नहीं रहा था। उसके कानों से तो एक नवीन वाक्य टकराया।

"तब तो आप मुझसे केवल चार वर्ष ही छोटे हैं, क्यों?" मिस कोलिन्स ने यह वाक्य उच्चारण किया था। किसलिये इस विदेशी स्त्री को हृदयनाथ की उम्र से अपने उम्र की तुलना करनी पड़ी?

"इस कुटुम्ब की कहानी बहुत ही शो जनक है। वृन्दा की बड़ी बहन बेचारी विधवा है।" निरञ्जन ने कहा। वृन्दा क्यों अधिक बातें नहीं कर रही है इसका विचार भी उसे हो आया, इस कारण बात चीत को चालू रखते जाने का निरञ्जन प्रयत्न करता जा रहा था।

"ईश्वर!" साहब ने कहा।

अपने कुटुम्ब के दुःख पूर्ण इतिहास में इस समय वृन्दा का ध्यान था ही नहीं। उसने मिस कोलिन्स को उस चित्र संग्रह को हृदयनाथ के संकुचित हुए जाते हाथों में देते हुये देखा।

"बेशर्म!" मन ही मन वृन्दा कह उठी। उसकी स्वभावतः वक्र हुई आँखें देख कर निरञ्जन ने समझा कि चपल वृन्दा को अपना दुखःमय इतिहास लम्बे समय तक सुनना रुच नहीं रहा है। उसने बात बदल दी।

"मन्मथ अभी तक क्यों नहीं आया?"

"आयेगा। मन्मथ उस भील गीत को गाता है। उसे वृन्दा को सीखना है? बच्ची का कण्ठ बहुत ही मीठ है।" साहब ने कहा। वे वृन्दा

की बातों में अधिक रस ले रहे थे।

परन्तु वृन्दा किसी दूसरी ही बात में रस ले रही थी। हृदयनाथ ने चित्र संग्रह का एक पृष्ठ डरते डरते खोला और लगा कि उसे इस संग्रह में भूत अथवा प्रेत दिखलायी पड़ गया हो ऐसे भयभीत बन गये हृदयनाथ के हाथों से वह अलबम धब्ब की आवाज के साथ जमीन पर गिर पड़ा।

सभी उस ओर देखने लगे। वृन्दा खिलखिला कर हँस पड़े। थोड़ी सकुचानी सी दीखती मिस कोलिन्स वृन्दा को हँसती देख स्वयं भी हँसने लगी और हृदयनाथ से कहने लगी—

"कोई हर्ज नहीं। लाइये मैं उठाये देती हूँ।"

सभ्यता में प्रति पालित कोई युवक युवती को इस प्रकार कार्य करने दे यह सम्भव नहीं। परन्तु अलबम को उठाने के लिये उद्यत हुई मिस कोलिन्स को हृदयनाथ ने जरा सा भी नहीं रोका। इतना ही नहीं स्वयं उसे उठा लेने का थोड़ा सा भी शिष्टाचार उसने प्रदर्शित नहीं किया।

"बड़ा बुद्धू है।"

"कौन?" वृन्दा ने पूछा।

"यही हृदय। इसे यदि किसी स्त्री के साथ वार्ता करने का प्रसङ्ग आ उपस्थित हुआ तो बस हो गया, मानों उसे हलाल करने के लिये ही वहाँ उपस्थित किया गया हो ऐसा हो जाता है।" निरञ्जन बोला।

"हाँ।" साहब मुस्कराये। "वहाँ मैंने भील नृत्य की व्यवस्था की थी और हृदयनाथ को देखने का प्रसङ्ग भी भाग्य वश उपस्थित हो गया था। मुझे उस समय की उनकी मुखाकृति याद है। मन्मथ को उन्होंने विशेष तौर से आज्ञा दी कि स्त्री-पुरुष का सम्मलित नृत्य एक दम बन्द कर दिया जाय।"

वृन्दा ने इतनी बात सुनी। फिर हृदयनाथ के सिवा दूसरे विषयों पर चर्चा होने लगी। इसलिये सहज ही वृन्दा का ध्यान मिस कोलिन्स और हृदयनाथ की वार्ता की ओर गया। अधिक बातें मिस कोलिन्स ही कर रही थीं।

हृदयनाथ तो केवल एकाक्षरी न कार अथवा ह कार से ही उत्तर की पूर्ति कर रहा है, इससे वृन्दा को सन्तोष हो गया। निरञ्जन और साहब राष्ट्रीय शिक्षा की रसभरी चर्चा जोरों में कर रहे थे, उसमें से होकर वृन्दा के कानों में कुछ हवा से शब्द सुनाई पड़ गये।

"एक ही विषय में रस लेते स्त्री पुरुष हमारे देश में क्या करते हैं, सो आप जानते हैं?" मिस कोलिन्स के कण्ठ से उपरोक्त शब्द निकलते हुए वृन्दा को प्रतीत हुए।

"नहीं।" भारी स्वर का शब्द सुनाई पड़ा। हृदयनाथ के कण्ठ को वृन्दा ने परखा।

"वे विवाह कर लेते हैं।"

"ऐसा क्यों?"

वृन्दा एकाग्र दृष्टि से इन दोनों को देखती हुई पकड़ गई।

"क्या देख रही हो? हृदयनाथ पर दया आ रही है, क्यों? लो मैं उसे इस आफत से छुड़ाये देता हूँ।" निरञ्जन वृन्दा से कह हृदयनाथ के पास गया। उसने ऊँचे स्वर से कहा:—

"मिस कोलिन्स! मैं आपको मुबारक बाद देता हूँ। हृदयनाथ को बातों में यदि किसी स्त्री ने अधिक से अधिक विलम्ब तक अटकाया है तो वह आप ही हैं।"

"विषय अत्यधिक रस-युक्त था। हमलोग विजातीय तथा अन्तर-राष्ट्रीय विवाह औचित्य पर चर्चा कर रहे थे।" मिस कोलिन्स ने कहा।

"सब नया जैसा है। विवाह सम्बन्ध की बात चलाते ही हृदयनाथ तो घबरा जाता है।"

"आपने क्या धारणा की?"

"मेरी तो धारणा है कि ऐसा विवाह होना ही चाहिए। ऐसा हो तो अन्तरराष्ट्रीय प्रश्नों का हल सरलतापूर्वक हो जाया करे।"

"वर्तमान में तो अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्ध हो ही नहीं सकता और आप अन्य देश की प्रजा में विवाह सम्बन्ध की बात कह रही हैं।" हृदयनाथ इतना लम्बा वाक्य पहली बार बोला।

पुलिस की एक छोटी टुकड़ी ने यह बात यहीं से रोक दी। दरवाजे के सामने पाँच सिपाही खड़े थे, उनके अफसर ने कमरे में प्रवेश कर पूछा:—

"हृदयनाथ किसका नाम है?"

"मेरा।" कुर्सी से खड़े होते हुये हृदयनाथ ने कहा।

"आपके अखाड़े की तलाशी लेने की आज्ञा है।" पुलिस अफसर ने आज्ञा-पत्र सामने रक्खा।

मिस कोलिन्स के साथ बात चीत करते समय संकुचित हुए हृदयनाथ का शरीर एक दम विस्तृत और प्रशस्त बन गया सा लगा। उसकी आँखों में स्थिर तेज चमत्कृत होने लगा। समूचे कमरे में मानों समा न रहा हो ऐसा कोई पौरुष उसमें प्रवाहित होने लगा। मिस कोलिन्स उसकी ओर निहार रही थीं। उसकी छायामें आ कर खड़ी हुई वृन्दा से वह कह पड़ीं—"देखो, इसका नाम है पुरुष।"

वृन्दा भी हृदयनाथ की ओर देख रही थी।

पुलिस अधिकारी को भय हुआ कि हृदयनाथ उपद्रव करेगा। उसने कहा—"आपको उपद्रव करना है?"

"मुझे?" तिरस्कार पूर्वक हृदयनाथ ने पूछा।

"यह तो आप जानें। मेरे साथ बाहर भी सशस्त्र पुलिस है।"

"ह........ह........। मैं उपद्रव करूँगा तो आपका शस्त्र भी निरर्थक बन जायेगा।"

पुलिस अधिकारी को लगा कि हृदयनाथ ने उपद्रव करने का निश्चय कर लिया है। उसने सीटी बजाई। दरवाजे पर खड़े सिपाही कमरे में चले आये और कुछ ही क्षणों में पुलिसों से अखाड़ा भर गया। अखाड़े में कसरत करते तथा बाचनालय में व्यायाम पर अध्ययन करते हुये कसरती लोग लाठी लेके ऊपर कमरे में घुस आये। उन्हें केवल आज्ञा की आवश्यकता थी। वे मरने और मारने को प्रस्तुत थे।

"यहाँ किसी की आवश्यकता नहीं है। आप लोग जो कर रहे हों उसे करें।" हृदयनाथ ने अखाड़े के विद्यार्थियों को आज्ञा दी।

विद्यार्थियों के आज्ञापालन में शिथिलता दीखी। हृदयनाथ ने कड़े शब्दों में कहा:—

"क्यों ? मैंने क्या आज्ञा दी ? किसलिये यहाँ रुके हैं ?"

"आपको गिरफ्तार करने के लिये पुलिस आयी है ?" विद्यार्थियों के एक नायक ने पूछा। हृदयनाथ को यदि गिरफ्तार किया गया तो एक को भी जीवित न जाने दिया जायेगा ऐसा निश्चय किये हुये विद्यार्थियों की इच्छा वह समझ गया।

"नहीं तो !" उसने उत्तर दिया।

"हमें तो केवल तलाशी लेनी है।" पुलिस अधिकारी ने कहा और सारे शिष्य हट गये।

"कहिये ? आपको क्या तलाश करना है ?" हृदयनाथ ने अफसर से पूछा।

"आपके यहाँ राजद्रोही साहित्य छिपा हुआ है उसे ही मुझे खोजना है।"

"यदि सरकार ने प्रजाद्रोही साहित्य छिपाया हो तो आप खोज करेंगे की नहीं ?" हृदयनाथ ने शान्ति पूर्वक पूछा।

"यह हम कुछ नहीं जानते। आप के यहाँ शस्त्रों का संग्रह भी छिपी रीति से है, ऐसी भी शंका है !"

"छिपी रीत से ? मैं कुछ भी छिपा कर नहीं करता। सुनिये प्रजा के हाथ में जब शक्ति आ जायेगी तो आपकी अनेकों तलाशियों के होते हुये भी वह शस्त्र धारण करेगी। अभी शक्ति नहीं आयी है। इसलिये मैंने शस्त्र संग्रह किया ही नहीं। मैं तो केवल प्रजा के कलाइयों में बल लाना चाहता हूँ।" हृदयनाथ ने कहा।

"परन्तु मुझे तो सभी कुछ देखना पड़ेगा।"

"खुशी से देखिये।"

"आप साथ नहीं चलेंगे ?"

"चलिये मैं साथ चल रहा हूँ। आप निश्चय रक्खें कि मैं और मेरा व्यायाम-शाला अहिंसक है।" निरञ्जन जाने को तैयार हुआ उसे वहाँ ही बैठा कर हृदयनाथ पुलिस अफसर के साथ अखाड़े में गया। साहब ने मन्द स्वर में निरञ्जन से पूछा—

"वृन्दा का विवाह हुआ है ?"

"नहीं। क्यों ?"

"होने वाला है ?"

"मुझे मालूम नहीं। आप किस कारण पूछ रहे हैं ?"

"ऐसे ही। और हृदय तो अभी अपने पूर्व निश्चय पर ही है न ?"

"मैं तो ऐसा समझता हूँ हृदय विवाह करने वाला नहीं है ?" निरञ्जन ने उत्तर दिया—"आपने देखा न कि वह मिस कोलिन्स के साथ किस प्रकार बातें कर रहा था !"

—::o::—

२६

सेवा की प्रतिष्ठा

भारत वीर भील एकत्रित हुये। व्यायामशाला में पुलिस-प्रवेश यह सब को असह्य हुआ। इसी व्यायामशाले से भारतियों की सोना सरीखी शरीर की दुर्बलता मिटाने के लिए अनेक युवक चारो ओर निकल पड़े थे। कितने केवल मात्र व्यायाम-शाला चला रहे थे, कितने ही गाँवों गाँवों में घूम कर प्रत्येक गाँव में कुछ समय रह कर, शारीरिक उन्नति में लोगों की जिज्ञासा जागृत कर रहे थे, कितने शारीरिक उन्नति के साथ ग्राम सुधार की शिक्षा दे रहे थे। कितने साथ ही साथ दूसरे देशों का उत्सर्ग समझा लोगों को उस मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहे थे और कितने ग्रामीणों के जीवन में आनन्द उत्पन्न हो ऐसे उपाय बतलाते, चाँदनी रात्रि में मेला लगाते, छाया चित्र और व्यायाम आदि द्वारा नवीन विचार फैलाते थे। सब का ध्येय एक ही था शारीरिक उन्नति। परन्तु इन उन्नतियों का आधार इतनी अधिक बातों पर निर्भर लगता था कि शारीरिक उन्नति के नाम से संगीत शाला स्थापित करना या साहित्य परिषद संगठित करना भी कोई हानि नहीं थी। संगीत से फेफड़ा बलवान बनता है और स्वर की भरावट से आनन्द प्राप्त होने के साथ रक्त शुद्ध होता है ऐसा कहने वाले को कोई गलत कहे ऐसा नहीं था! फिर शक्तिशाली प्रजा उत्पन्न करने के लिये जैसा साहित्य चाहिये, वैसे तेजस्वी साहित्य की रचना के लिये कंगाल, लकलक शरीर वाले लेखकों को क्लोरोफार्म देना की नहीं उसकी चर्चा करने के लिये साहित्य परिषद किसी को निमन्त्रित करे तो उसे कोई बुरा नहीं कहेगा।

इसलिये शारीरिक उन्नति के मुख्य ध्येय को साध्य करने के लिये निकले हुये युवक जहाँ भी जाते वहाँ दूसरी प्रवृत्तियों को गति मान कर देते थे। राजकीय

प्रवृत्ति यह 'काफी' सरीखी मोहक और व्यसनसरीखी गले पड़ने वाली वस्तु है, वह शारीरिक उन्नति के मुख्य ध्येय को एक ओर हटा देगी, इस विचार से हृदयनाथ ने सबको उससे दूर रहने के लिये सूचित कर दिया था। परन्तु श्वाँस लेने सरीखी स्वभाविक बन गयी राजकीय प्रवृति इस अखाड़े के युवकों को भी एक तथा अन्य रूप में घेर लेती। इस मण्डल की प्रवृत्ति विचित्र और शंका उत्पन्न करने वाली तो लगती ही थी, उसमें मण्डल में कितने सदस्यों के उद्‌गार राजकीय विरोध के इतने स्पष्ट थे कि सरकार का ध्यान इस मण्डल की ओर आकर्षित हुये बिना नहीं रह सकता था। लेकिन भील जाति की जागृति देशी रियासतों को अत्यधिक भयप्रद लगी। भील मण्डल और हृदयनाथ की संस्था के सम्बन्ध ने देशी और उसी प्रकार विदेशी दोनों ही सत्ताओं को सतर्क होने को बाध्य किया। यह भील मण्डल शस्त्र उपयोग करने का अपराध भी करता है, ऐसी किसी घटना के सुनने पर इस मण्डल के नेता साहब तथा सहायता के लिये भेजे गये व्यायाम विशारद मन्मथ पकड़े गये। उन लोगों को जमानत पर छोड़ते ही हृदयनाथ के अखाड़े को शस्त्रा-गार होने की सूचना मिली और षड़यन्त्र रचा गया हो ऐसे कितने ही भाषणों से निर्मित साहित्य भी इस व्यायाम-शाले के कार्यालय से पकड़ा जा सकेगा ऐसी अधिकारियों की धारणा हुई।

इस कारण व्यायामशालेपर पुलिस वर्तमान-पत्रों द्वारा परिचित होने के कारण दौड़ती चली आयीं। व्यायाम-व्यसनी युवकों का रक्त उबल उठा। जहाँ तहाँ वे बिखर गये थे, वहाँ वहाँ से आकर सब एकत्रित हो गये और अखाड़े के अपमान का बदला लेने के लिये वे सब एक मत हो गये।

कार्यकर्ताओं ने सभा की, सभा गुप्त थी। तथापि बादलों में बिजली छिपी रहती है, ऐसी लोग धारणा करने लगे। यह बिजली कब चमक उठेगी, यदि चमक उठेगी तो वह बादलों में ही समाई रहेगी अथवा वज्रपात सरीखा घोर गर्जन कर पृथ्वी पर टूट पड़ेगी, इसकी शंका में सभी गंभीर बन गये। अधिकारियों ने अधिक संख्या में पुलिस एकत्रित की और फौजी संकेत मिलते

ही सब उपस्थित हो पड़ें ऐसी योजना स्थिर हुई।

हृदयनाथ ने अपने मित्रों को उलाहना दिया:—

"आपलोग सब काम छोड़ कर बिना बुलाये यहाँ क्यों इकट्ठे हो गए ?"

"संस्था की प्रतिष्ठा हमारी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा से महान है।" एक युवक ने उत्तर दिया।

"और संस्था में प्राण सञ्चारित करनेवाले व्यक्ति की प्रतिष्ठा हमारे प्राणों के बलिदान के साथ संरक्षित है।" दूसरे ने अपने भाव प्रकट किये।

"इतना आप सबका प्रेम देखकर मैं संस्था की ओर से और स्वयं अपनी ओर से आभार प्रदर्शित किए बिना कैसे रह सकता हूँ? मैं आप सबका ऋणी हूँ परन्तु अभी तक किसी ने संस्था का अथवा मेरा अपमान नहीं किया है।" हृदयनाथ ने कहा।

"पुलिस आये और तलाशी ले यह अपमान नहीं है ?"

"अब हम सब तो इस निश्चय पर आ गये कि अहिंसा का बाना उतारकर एक ओर रख दिया जाय।"

"जिस दिन अहिंसा को अनावश्यक मान उसे सर्वसम्मति से आपलोग छोड़ देंगे उसी दिन से हृदयनाथ का सम्बन्ध संस्था से टूट गया होगा।" हृदयनाथ ने थोड़ा हँसकर कहा। वह अहिंसा की मर्यादा जानता था, मनुष्य स्वभाव और उसकी हिंसक आदत को पहचानता था, परन्तु भारत के लिए वर्तमान काल में अहिंसा के सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं है ऐसी उसकी मान्यता थी। मूर्खतापूर्ण हिंसा के प्रयोग की निष्फलता और भारत को शारीरिक उन्नति में अग्रसर होने से उससे होता मार्ग अवरोधन ये दोनों महत्त्व की बातों का विचार कर वह अहिंसा में दृढ़ विश्वास करनेवाला था।

"अहिंसा की बात को भले ही कोई ढोंग माने परन्तु आप सब ग्रामीणों

के शिक्षण के लिए निकल पड़े हैं। आपको अपने अनुभव से क्या ऐसा नहीं मालूम होता कि अहिंसा के सिवाय कोई दूसरा मार्ग अपने लिए नहीं है ?" निरञ्जन ने प्रश्न किया।

"ध्यान दीजिये ! ध्यान दीजिये !" जवानी में प्रवेश करते हुए एक किशोर ने थोड़ी हँसी की। बड़ों की मर्यादा रखना यह इस संस्था का प्रथम अलिखित नियम था। उस सदस्य को इस समय विनोद की इच्छा हुई। निरञ्जन की युवावस्था अभी समाप्त नहीं हो गई थी, लेकिन अखाड़े के आद्य चालकों में उसका अग्र स्थान था, इसलिए बड़ों सरीखा ही उसे स्थान मिलता था। बोलने और वाद विवाद में वह बेजोड़ गिना जाता था। उसने विनोदी किशोर को लक्षकर कहा:—

"सभी प्रसङ्गों को हँसकर टाल देने जैसी तात्विक दृष्टि जिसे प्राप्त हो जाती है इससे उसे विशेष घमंड हो जाता है। परन्तु मैं ही आपको अभी कहूँ कि अहिंसा का सिद्धान्त का बन्धन हमने उठा लिया है फिर आप सब क्या करेंगे ?"

"बहुत कुछ हो सकता है।" एक ने उत्तर दिया।

"मैं कहता हूँ कि उससे कुछ न हो सकेगा। पाँच, पच्चीस अथवा सौ यूरोपियनों का खून हो सकता है। खूनीयों को पकड़कर फांसी होना चाहिये अथवा देश निकाला हो जाना चाहिए अथवा अदालत में जब तक मुकदमा चले उस दिन तक बहादुरी पूर्ण उद्‌गारों द्वारा वाहवाही मिल जा सकती है और न्यायाधीश तथा वकीलों को मूर्ख बनानेवाले आडम्बर का दिखावा कर वर्तमान समाचार पत्रों के पाठकों द्वारा उस दिन पूर्ण तारीफ अथवा शाबाशी मिल जा सकती है।" निरञ्जन ने कहा।

निरञ्जन जिस पक्ष को ग्रहण करता उस पक्ष का तर्क पूर्णरूपेण कर सकता था। हृदयनाथ को लगा कि निरञ्जन को यदि और आगे बोलने दिया गया तो संस्था के अनेकों सदस्यों को अरुचि कर लगेगा।

"हिंसक प्रयत्नों की प्रामाणिकता स्वीकार कर मैं आप सबसे पूछता हूँ कि आपलोगों ने क्या करने का निश्चय किया है ? मैं योजना जानना चाहता हूँ।"

सिद्धान्त और सिद्धान्त को व्यवहार के रूप में परिणत करना ये दोनों पृथक बातें हैं। समाजवाद, विप्लववाद, अतन्त्रवाद (Anarchism) ये सब सिद्धान्त अपनी वर्तमान स्थिति से ही विकसित होनेवाले हैं और अपनी बुद्धि से इन सिद्धान्तों का प्रचार किया है। तथापि इन सिद्धान्तों के अनुसार समाज की रचना करते अनेक निष्फल प्रयोग की परम्परा दृष्टिगोचर होती है। अपना भूतकाल इस तीव्रगति से ओझल करने से ओझल नहीं होगा। सरकार का बन्धन तुरन्त छूट जाय ऐसा नहीं है। मनुष्य यह कोई कोरा कागज नहीं है कि उसमें इच्छानुसार अक्षर लिखे जा सकें संस्कार वेष्ठनों के साथ अवतरित मनुष्य इन वेष्ठनों को एकदम साँप के केंचुल समान पृथक नहीं कर सकता। इन वेष्ठनों के साथ ही वह विकास करने का प्रयत्न करता है, इसलिए सिद्धान्त को व्यवहार बनने में देर लगती है। सिद्धान्ती और व्यावहारिक ऐसा मनुष्य द्वारा कहलाते हुए भेद में कोई तथ्य तो है ही। इसलिए सिद्धान्त को आचार में बदलना यह व्यक्ति के लिए और उसी प्रकार समाज के लिए भी अत्यधिक विकट कार्य होता है। इस प्रयत्न में ही मनुष्य की महान विजय और पराजय रही है।

संसार पर विचारों की लहरें बहा करती हैं। कला तत्त्वज्ञान, धर्मभावना और समाज शास्त्र की सूक्ष्म और कोमल विचार श्रेणियों ने मानव को हिंसा से विरत रहने की आवश्यकता बतलाई है और स्वतन्त्र महा-राष्ट्र तो इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। सिद्धान्त और व्यवहार के बीच सामञ्जस्य पर विचार करने लगे हैं। भारत में तो एक जगत् वन्द्य महात्मा ने अहिंसात्मक असहयोग का मन्त्र देकर राजनीति के शास्त्र में अहिंसा का एक ज्वलन्त प्रकरण उपस्थित किया है। भारत का भूत और भविष्य किसी बुद्धि द्वारा अहिंसा से संलग्न हुआ मालूम देता है।

चर्चा अधिक लम्बी हुई। अहिंसक ढङ्ग की देशोद्धार की योजनाएँ एक के पश्चात् एक उपस्थित होने लगीं, परन्तु सबको प्रत्येक योजनाओं में कुछ न कुछ कमी दिखलाई देती थी। हिंसात्मक योजना की निष्फलता निरञ्जन और हृदयनाथ की ओर से पूर्ण रूप से दर्शायी जा रही थी। साहब दूर बैठे बैठे इन भारतीय युवकों के उच्च और मनोहर भावुकता पूर्ण कार्यों को देख रहे थे। इतने में मन्मथ ने सूचित किया कि सरकार ने साहब और हम पर से मुकदमा उठा लिया है।

"तुमसे किसने कहा ?" निरञ्जन ने पूछा।

"वकील साहब ने।"

"तुमने पता लगा लिया ?"

"जी हाँ, मैं अभी वहाँ से ही आ रहा हूँ।"

"किस कारण से ?"

"हमारे विपक्ष में प्रमाण पूरा नहीं हो रहा है।"

सभी सदस्यों में एक प्रकार का आनन्द फैल गया। इस आनन्द में गर्व की भावना विद्यमान थी। सरकार की मानो इसमें पराजय हुई हो और पराजय का यश इस व्यायामशाला के सदस्यों की बहादुरी से ही मिला हो इस प्रकार के अहं भाव उनके मुख पर दिखलायी दिए। सत्कार्य भी गर्व को प्रेरित करता है, इस बात को सत्कार्य करनेवालों को अपनी दृष्टि समक्ष लिखकर रखना चाहिए। सबने साहब और मन्मथ को बधाई दी। कितनों ने साहब से दो शब्द सुनाने की प्रार्थना की। साहब ने कहा:—

"भाइयों आप सब संस्कारी और प्रतिभावना युवकों के समक्ष मेरे जैसे पुराने विचारवाले मनुष्य को कुछ कहना नहीं है। राजनीति यह हमारा विषय नहीं है। मैं तो एक दुर्बल, नष्ट होती दलित कौम को अपना मानकर बैठ गया हूँ। आप लोगों की ओर से मुझे यथेष्ट सहायता प्राप्त हुई है और

यहाँ आने के पश्चात् आप सब ने हृदयनाथ और निरञ्जन जी के नेतृत्व में जो भावामृत का पान कराया है वह कभी भूला नहीं जा सकता। आप-लोगों के विचार सुनकर मुझे अपने प्रति यथेष्ट सम्मान उत्पन्न हुआ है। मैं कुछ कहनेवाला न था किन्तु आपकी आज्ञा के कारण इस चर्चा के विषय में एक बात कहने की मेरी इच्छा है, अंग्रेजी राज्य भूल नहीं करता ऐसा मत मानियेगा वह सभी ठीक करता है ऐसी भी धारणा मत बनाइयेगा, आपको उचित न मालूम होता हो तो सम्बन्ध विच्छेद कर दें। परन्तु अंग्रेजी राज्य के जाल में फंसकर विरोध करते समय एक ही बात स्मरण रक्खें, अंग्रेजों ने भारत पर अधिकार किया है। उसी प्रकार यदि आप बृटिश टापुओं पर अधिकार कर लेते तो आप भी अंग्रेजों सरीखा ही बर्ताव रखते। अंग्रेजों की कड़ी से कड़ी टीका भले ही करिये, परन्तु भारत की उन्नति में उन्होंने जो योग दिया है उसका सम्मान करना भूलेंगे तो भारत के लिए आज प्राण विसर्जन के लिए प्रस्तुत आपलोगों सरीखे वीरों का आनेवाला भविष्य स्मरण भी नहीं करेगा।"

भाव पूर्वक बोले हुए इन शब्दों से सबकी पूर्व धारणा में तो परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु बृटिश सम्बन्ध ने भारत का लाभ किया है इसे प्रमाणिक मानने वाले विचार-शील व्यक्ति भी हैं इसका तो सभी को निश्चय हो गया।

साहब और मन्मथ के सम्मान हेतु जलूस की व्यवस्था कर समूचे नगर में घुमाये जाने का प्रस्ताव गिर गया। साहब ने ऐसे जलूस को अस्वीकार किया। अतः हृदयनाथ ने व्यायाम-शाले में उत्सव मनाने और वहाँ ही अभिनन्दन करने की सूचना दी। साहब ने उसके लिये भी इन्कार किया।

"इन सब तमाशों के करने की आवश्यकता क्या है? सरकार ने मुझे छोड़ा इसमें मैंने क्या विशेषता की? छोड़ने वाली सरकार है और छुड़ाने वाले गण तो आप सब हैं। छोड़ने वाले और छुड़ाने वालों को बधाई दें। मेरा क्या है?" ऐसा साहब ने तर्क उपस्थित किया। परन्तु सबको नाराज करना यह उचित नहीं ऐसा उन्होंने सोचा। उन्होंने उत्सव की बात बड़ी कठिनाई से

स्वीकार किया । सब ने मिल कर दिन निश्चय किया ।

साहब ने कहा—

हम लोग अपने नायकों को सरकारी अधिकारियों वाला रोब दाब शान अभिमान यदि न सिखलायें तो अधिक उचित होगा । नहीं तो उन्हीं के समान फूल माला और सभा इत्यादि बिना अपने नेताओं को भी नहीं बनेगा ।

२७

समाज की भट्ठी

रमा और शशिरेखा दोनों रो रो कर थक गईं। रमा ने सम्पूर्ण सृष्टि का भारी अपराध किया था। वह विधवा थी। अच्छे सम्बन्ध के मिलने की खुशी में माता ने एक आशान्वित युवक के साथ उसका विवाह कर दिया था। वह युवक जीवित न रहा। काल ने उसे छीन लिया। रमा उस समय बालिका न थी। बालकोंवाली निर्दोष अनुत्तरदायी आनन्द की भूमिका छोड़ वह आगे की ओर अग्रसर हो रही थी। परन्तु उसने यौवन में प्रवेश नहीं किया था। विवाह का गाम्भीर्य, उसका उत्तरदायित्व वह समझ सके इतना उसका शरीर अथवा मन विकसित नहीं हुआ था। प्रत्येक बालिकाओं के लिए खेल कूद का नाम ही विवाह है ऐसा कोई ध्यान उसके मन में था। सास ससुर नन्द इत्यादि लाड़ प्यार करनेवाली, भयानक होने पर भी देखने लायक सम्बन्धियों की नई सृष्टि उपस्थित कर देनेवाले नाटक के खुले हुए पर्दे जैसा यह विवाह। कौतूहल पूर्वक छिप छिप कर देखने लायक पात्र, अतिशय लज्जा से सखियों के दुराग्रह की आधीनता में नाम देने योग्य, दिन प्रतिदिन अधिक रुचिकर होता जाता, अनचिन्तित रीत से अपने को मिला बालक उसका नाम पति। ऐसी ऐसी पूर्ण न समझानेवाली मान्यताओं के सहयोग में रमा का विवाह हो गया। विवाह हो गया और कुछ समय में इस विवाह के खेल का केन्द्र अदृश्य हो गया। उसका पति काल-कवलित हो गया।

कुछ हानि हुई, अत्यधिक हानि हुई, न पूर्ण हो सके ऐसी हानि हुई, ऐसी भावना उसके हृदय में जगी। परन्तु प्रकृति जिस समय तरङ्गित जीवन उसमें परिपूर्ण करती जारही थी, उस समय इस भावना का स्वरूप उसे पूरे रूप में

समझ में नहीं आया। दु:खी माता ने बलिका का शरीर विकृत बना उसे अधिक दु:खित नहीं किया। रमा का अध्ययन चालू रक्खा, उसके पहिरावे में थोड़ा सा भी परिवर्तन नहीं हुआ और जिस प्रकार बने उसी प्रकार इस दुःख मय प्रसङ्ग की स्मृति रमा के हृदय में न्यून होती जाय वैसा करने का प्रयत्न किया। पुत्री के भारी दुःख को भी हल्का करने का क्या माता प्रयत्न नहीं करती?

परन्तु हिन्दू संसार विधवा की ओर बहुत अधिक ध्यान रखता है। विधवा को वह विधवा है यह बात क्षणमात्र के लिये भी हिन्दू संसार भूलने नहीं देता। सगे सम्बन्धी और उसके सिवाय अन्य भी स्त्री पुरुष स्वयं सेवकों की परोपकार वृत्ति से विधवा पर अपना चौकी बैठा देते हैं।

"अरे बहन उसने कड़ा पहना है क्या?"

"सोने का है या काँच का?"

"तुम्हें तुम्हारीं माँ बाल सँवारने देती हैं क्या?"

"माथे में तेल लगाती हो?"

ऐसे ऐसे प्रश्न कर विधवा को क्या करना चाहिये, इसका उसे स्वत: ध्यान आया करे ऐसे वातावरण लोग अपने आप ही रच दिया करते हैं किसी और से नहीं केवल उसी से ऐसे प्रश्न क्यों होते हैं इसका विचार कर रमा को आश्चर्य होता। स्त्री को और उसमें भी दुःखी स्त्री को प्रत्येक बातों का सार जल्दी ही समझ में आ जाता है। दोषी मनुष्य को भी उसके दोष बारम्बार बतलाते रहने से उसे बुरा लगता है। परन्तु रमा ने क्या अपराध किया था?

किसी दूर के सम्बन्धी के यहाँ विवाह कार्य पड़ा। रमा और वृन्दा को विशेष आग्रह पूर्वक उन रिश्तेदारों ने बुलाता। बाहरी हिस्से में दोनों बैठी हुई थीं। पृथ्वी का भार उठाये शेषनाग से भी अधिक महत्व का कार्य कर रही हो ऐसा दिखाव करते हुए विवाह कार्य का प्रबन्ध करती हुई एक

अधेड़ उम्र की स्त्री ने रमा से कहा 'रमा थोड़ी देर के लिए अन्दर बैठो न।"

"क्यों ?" रमा को विवाह का सारा कार्य-क्रम देखने की प्रबल इच्छा थी, इस कारण उसने प्रश्न किया।

"तुम अन्दर बैठो। पीछे बताउँगी। मुझे काम है।" उस स्त्री ने उत्तर दिया। वह अत्यन्त निडर थी। किसी की भी शरम बिना रक्खे वह मन चाही बात बिना हिचक जिसे चाहे कह सकती थी। धनवन्तरी के साले की भी परवाह करूँ मैं ऐसी नहीं हूँ। इस प्रकार का उसकी ओर से बारम्बार ढिंढोरा पिटता रहता था। समूचा वर्ग उससे बचता था। जीवन में कितने ही ऐसे प्रसङ्ग उपस्थित होते हैं जब कि कठोरता का उपयोग किये बिना कार्य नहीं होता। ऐसे कहाकही के प्रसङ्गों में इस महिला की सहायता लेने के लिए सभी व्याकुल रहते और उसके उदार स्वभाव के प्रमाण स्वरूप उसकी कटुवाणी का उपयोग उसे बड़ी प्रसन्नता के साथ करने देते।

अन्दर जाकर रमा ने पूछा—"मुझे यहाँ क्यों बुलाया है ?"

"तुझे वहाँ नहीं बैठना चाहिए। क्या इसे तू नहीं जानती ?"

"क्यों नहीं बैठना चाहिये ?"

उस स्त्री ने रमा को समझाया। शकुन के अवसर पर विधवाओं को हट जाना चाहिए। विधवा के इस कर्तव्य के प्रति वह कभी भूल न करे ऐसे शब्दों में उसे समझाया। रमा के हृदय में कभी न लगी हो ऐसी चोट लगी। उसे सारा संसार अंधेरा लगा। घर आकर खूब रोई। फिर कभी भी किसी के यहाँ शुभ कार्य में न जाने का उसने निश्चय किया।

परन्तु विधवाओं की ऐसी प्रतिज्ञा के कारण मंगल-कार्य के प्रसङ्गों को आनन्दपूर्वक मनाना नहीं रुका। मंगल-कार्यों में विधवा की आवश्यकता नहीं है, इस अमंगलीय नारी का दर्शन भी संसार का आनन्द कम कर

डालेगा ऐसी भयपूर्ण धारणा सबकी होती है परन्तु जहाँ मंगल कार्य न हो वहाँ भले ही विधवा स्त्री आये। उपवास करती समय, शारीरिक कष्ट के प्रसङ्गों में, बीमार की परिचर्या के लिए, रसोई की कठिनाइयों को हटाने के लिए, दूसरों के बच्चों को खिलौने के और सम्हालने के लिए ऐसे ऐसे संयोग में विधवा सभी को एकदम स्मरण हो जाती हैं।

केवल धर्म कार्य और धार्मिक पुस्तकों का पाठ मानों विधवाओं के लिए ही सर्जित हुआ है ऐसी सबकी मान्यता है। भोग विलास का हर क्षण उपभोग करती सधवाओं की अपेक्षा, उसका स्वप्न भी न देखनेवाली विधवाओं को किस कारण धर्मपुस्तकों को पढ़ने की आवश्यकता है, यह समझना थोड़ा मुश्किल है। चालीस वर्षों की उम्रमें छठवीं बार मातृत्व का महत्व प्राप्त की हुई एक स्त्री ने पूछा—

'रमा तुम गीता पढ़ती हो क्या ?"

जीभ को कड़वी बनाने में पारांगत न हुई रमा से नहीं कहा गया कि गीता पढ़ने की खास आवश्यकता तो उस पूछनेवाली स्त्री को होना चाहिए। बिना अपराध के बध करने के लिए पृथक किए गए बध-पशु सरीखी निराधारता और अन्याय का दुःख रमा अनुभव करने लगी। सहानुभूति, दया, करुणा यह सब उसके लिए निरर्थक था। अपने दुःख की अनिवार्यता का विचार करते समय सबकी दया उसे घातक दिखलाई पड़ती थी।

संसार के अन्याय को गूँगे मुँह सहती रमा शरीर रहित न थी। उसका सुख हरण कर लेने की योजनाओं को गढ़नेवाली हिन्दू रूढ़ियों का उसने भयङ्कर परिणाम देखा है, अतः विधवा के लिए कोमल भाव अभी पैदा हुआ हो ऐसा ज्ञात नहीं होता है। सिद्धान्त के लिए विधवा विवाह को स्वीकार कर लेनेवाले विचारकों को भी अभी विधवा विवाह को स्वाभाविक नहीं बना सके, इसलिये अभी तक कभी कदात् हुआ विधवा-विवाह का प्रसङ्ग समाज को धूमकेतु के आगमन सरीखा विचित्र और भय प्रेरक लगा करता है।

सुशील, आज्ञाकारिणी रमा बुरे रास्ते पर नहीं जायेगी इस विश्वास पर शशिरेखा उसे कालेज भेजतीं थीं। प्रत्येक लग्नों में कुँआरे पुरुषों को सहन नहीं करता असन्तुष्ट समाज अच्छे और बुरे मार्गों का स्मरण कर उन्हें छोड़ देता है। स्त्रियों के सहनशील स्वभाव को पहचान, उनका आध्यात्मिक विकास और उन्नति हो इस अर्थ पुरुषों और स्त्रियों का भ्रष्ट मार्ग निर्णीत करने में बहुत से भेद रक्खे गये हैं। जो मार्ग स्त्रियों के लिये बुरे हैं, वह पुरुषों को बुरा नहीं हो सकता। इसलिये जब शशिरेखा ने सुना कि रमा निरञ्जन के साथ बात करती है हँसती भी है तब उन्हें रमाका यह कृत्य बहुत अनुचित प्रतीत हुआ। महेशचन्द्र से पुराने परिचय के कारण उनका पुत्र निरञ्जन इस कुटुम्ब का परिचित था और युवतियोंके सहवासमें आनन्द मानता मौजी युवक शशिरेखा की कन्याओं के साथ सम्पर्क बढ़ाये था। धनवान पिता का यह पुत्र सुखमें पला था और दुख तथा परिश्रम पिता के हिस्से में छोड़ कालेज में भी मौजी जीवन बिताता। निरञ्जन में अतिशय स्फूर्ति थी। अंग्रेजी साहित्य और उसके उपन्यासों के पढ़नेके परिणामस्वरूप उसकी वाचाल जिह्वामें अधिक रङ्गीनी उत्पन्न हो गई थी और सबको परेशान कर डालनेवाले उसके स्वभाव को अच्छी पुष्टि मिली। प्रोफेसरों से लड़ने में, संस्था की स्थापना कर भाषण देने में और जलसा कर विद्यार्थी वर्ग में प्रिय बन जाने में उसका प्रथम स्थान था।

हृदयनाथ और निरञ्जन का कुछ अलौकिक मिलन हो गया। दोनों का स्वभाव-विरोध मानों परस्पर पूर्ति करता हो ऐसा था। अनेक बातों में विरोध होते हुये भी दोनों मित्र बन सके। दोनों को नौकरी करने से ह भोजन मिल सकेगा ऐसा न होने के कारण देशोद्धारकी योजनायें बना उसमें अपनी बुद्धि और शक्ति का उपयोग करने लगे।

निरञ्जन ने युवतियों से अधिक मित्रता की थी। पारसी, यूरोपियन और हिन्दू सभी से उसका परिचय था। प्रसन्न मुख किशोरियों का साथ अनुकूल भी पड़ता। परन्तु इन सब में सब के पीछे रह कर चलने वाली, कम से कम बोलनेवाली और नीचे की ओर से ऊपर दृष्टि कर न देख सकने वाली रमा

के मुख में निरञ्जन को कौन जाने ऐसा क्या लगा कि वह स्वयं भी उसे समझ नहीं सका। विवाह सम्बन्धी उसका विचार शिथिल था, पाश्चात् साहित्यके अध्ययन ने उसे नीति अनीति के प्रश्नों में उदारता अर्पित की थी, परन्तु इन सभी शिथिलताओं के अनियंत्रित-पन को मर्यादित करती कोई सभ्यता जिस प्रकार एक ओर उसे हृदयनाथ की ओर आकर्षित करती उसी प्रकार दूसरी ओर इन चंचल छोकरियों की विस्मृति करा उसे रमा की ओर आकर्षित करती।

इस आकर्षण को समझने, उसका नियम समझने का अनेक प्रयत्न हुआ है और होता रहता है, किन्तु यह आकर्षण आज तक तो प्रचलित ही है। नया जैसा तो यह है कि रमा का हृदय भी निरंजन की ओर खींचता रहना। सभी बातें गुप्त रह सकती हैं परन्तु युवक युवती का आकर्षण गुप्त नहीं रह सकता।

शशिरेखा ने इसका अनुभव किया। उसके दुःख का पार न रहा। उसने रमा को काफी समझाया, रूढ़ि की मर्यादा समझाया, स्त्री तथा उसके कुटुम्बियों की प्रतिष्ठा ऐसे प्रश्नों के ऊपर ही किस प्रकार अवलम्बित रहती है इसका विवे न किया और निरञ्जन की संगति उसी समय से छोड़ देने का आग्रह किया।

माता के आँसूओं से कन्या पिघली। उसने निरञ्जन से मिलना कम कर दिया। निश्चय ही, दोनों में किसी ने भी दूसरे से अपना-अपना प्रेम प्रकट नहीं किया था। परस्पर की आकर्षणता अभी तक स्फुटित नहीं हुई थी।

महेशचन्द्र को अपने पुत्र की ओर से बहुत असन्तोष था। लड़के ने शिक्षा अवश्य प्राप्त की किन्तु ज्ञान नहीं हुआ। मनुष्य को सभी कुछ करना चाहिये, सब कुछ देखना चाहिये, सभी का भोग करना चाहिये, परन्तु किसी में पकड़ जानेवाली बुद्धि हीनता नहीं करना चाहिये। राजनीतिज्ञता के अवतार महेशचन्द्र ने मुसलमान तथा यूरोपियनों के साथ बैठ कर कदाचित भोजन किया भी हो, परन्तु उनके स्वच्छ आचार के विरुद्ध कोई उँगली क्यों नहीं

उठा सकता था ? अनेक राज्यों को उन्होंने उधेड़ डाला था, किन्तु उधेड़े-जानेवाले राजा भी उनकी मित्रता के इच्छुक हो खोज करते हुए उनके पास क्यों आते हैं ? अपना अनुशरण करे, अपने से सवाया उसका सम्मान हो ऐसी पुत्र के प्रति उनकी अभिलाषा थी। परन्तु यह छोकरा तो उच्छृङ्खल, अविवेकी और अन्ततः राजद्रोही गिना जा रहा है। इज्जतके जीवित आकार सरीखे महेशचन्द्र को पुत्र का व्यवहार असह्य हो उठा ।

राजाओं को अँगुलियों पर नचाने वाला महेशचन्द्र स्वयं अपने पुत्र को न सुधार सकेगा, इसकी उसे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी। सुधार में दूसरा कुछ करना नहीं था। वह जो करता है उसे वह भले ही करता रहे परन्तु वह कभी पकड़ा जा सके ऐसी भूल न करे। यही चाहते थे वे, सुधार का केवल इतना ही अर्थ था। भले ही वह पारसी के यहां भोजन करे, किन्तु पीताम्बर बिना उसने भोजन किया था ऐसा उसे देखने और कहनेवाला कोई न हो। स्त्रियों के साथ हेल मेल बढ़ाना... इस अनादि और अनन्त के विषय में बोलना बिना अर्थ का है परन्तु वह इस प्रकार से होना चाहिये कि चरित्र की निर्बलता कोई निकाल न सके। निरञ्जन का सुधार नहीं हुआ। वह खुल्लम-खुल्ला सुधारक बन गया और बहुत ही कुशलता से सम्हाल कर आज तक की महेशचन्द्र की उपार्जित धार्मिक कीर्ति पर पानी फिराने के लिये प्रस्तुत हो गया।

निरञ्जन ने जब विवाह करने से इन्कार किया तब महेशचन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उत्तम कुटुम्ब की कन्यायें निरञ्जन को मिल रहीं थीं किन्तु उसने सभी को अस्वीकार कर दिया। महेशचन्द्र के एक मित्र निरञ्जन को समझाने के लिये आये, उन्होंने निरञ्जन का माथा खा डाला, विवाह का लाभ समझाया, उक्त कुटुम्ब के साथ सम्बन्ध होने के लाभ की बात समझाया अन्त में उसकी इच्छा के विपरीत विवाह कर डाला जायेगा यह धमकी भी उन्होंने दी। निरञ्जन ने सब कुछ सुना, उत्तर देने के लिये उसके पास अनेकों तर्क थे, फिर भी मर्य्यादा पालन कर कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु जब इच्छा प्रतिकूल विवाह कर देने की धमकी दी गई तब उसके

आँखों की कोर में हास्य चमक पड़ा और पिता के मित्र को जीवन में कभी न हुए अनुभव को उसने कराया। धमकी सुन निरञ्जन ने शान्ति पूर्वक पिता के मित्र साहब को सम्बोधित करते हुए कहा—यह सब जाने दीजिये। जैसा है ठीक है। मैं जहाँ रहूँगा वहाँ गोकुल तथा वृन्दावन बना लूँगा। इसलिये पिताजी से कहियेगा कि हमारी इस विषय की चिन्ता से मुक्त रहें।

पिता के मित्र ने लड़के के मुँह से गोकुल तथा वृन्दावन सुना। वह आश्चर्य चकित हो उठे। खोये से दाँतों तले उँगली दबाई और शाम की बिजली का प्रकाश होते ही अपना रास्ता नापा।

परन्तु महेशचन्द्र इस प्रकार से झुक जाँय ऐसे न थे। पुत्र का मासिक खर्च घटा दिया और स्वयं उसके पास आकर रहने लगे तथा उसकी देख-रेख करने लगे। उन्हें भी सूचना मिली कि निरञ्जन रमा के प्रति आकर्षित है इसीलिये वह विवाह के लिये इन्कार करता है।

महेशचन्द्र को कलियुग आ गया दीखा। सूर्य पश्चिम में उगता सा लगा। विधवाओं के गर्भपात का मुकदमा ठण्डे हृदय से दिलचस्तगी की वस्तु सा सुननेवाले पिता का पुत्र विधवा-विवाह करे यह मृत्यु सरीखा कष्टदायक लगा। उन्होंने पुत्र को शहर से हटाने का भरसक प्रयत्न किया, रमा से दूर करने का सब प्रयत्न कर डाला। अधिकार से वंचित कर देने का डर दिखलाया, रियासत में नौकरी दिलवाने की लालच दिखलायी, घर बाहर सभी से अपमानित करा घर से बाहर कर देने की धमकी दी और अन्त में शशिरेखा को चेतावनी दी। अकाल में विधवा हुई कन्या के पुनर्विवाह सरीखा पाप कृत्य को वह रोके, दोनों कुटुम्बों की, पुराने मित्रों के कुटुम्बों की इज्जत बनी रहे ऐसा प्रयत्न करने का आग्रह पूर्वक प्रार्थना किया।

रमा की बात आते ही आँसू ढाल शशिरेखा पुनः रो पड़ी। उसने स्वयं भी यह बात सुनी थी, उस स्थिति से बचने के लिये उसने पुत्री को जितनी आवश्यकता थी शिक्षा भी दे चुकी थी और निरञ्जन का सम्पर्क भी कम करा दिया था। पुत्री पर अधिक कड़ाई कि आवश्यकता है, ऐसी महेशचन्द्र

की सलाह को कार्य रूप में परिणत करने की चेष्टा करने लगी।

दोनों बहनें एक दिन कपड़ा इत्यादि बदलकर तैयार हुईं।

माँ ने पूछा—"आज कहाँ जाना है ?"

"एक बड़ा जलसा है। वह साहब छूटे हैं न, उन्हीं के सम्मान में एक बड़ी सभा का अयोजन है और उसमें मिस कोलिन्स भाषण देने-वाली हैं।"

"तुम दोनों घूमना कम कर दो तो कैसा हो।" माँ ने कहा।

"परन्तु हमलोग अधिक जाते ही कहाँ हैं ? देखिए मैंने अब व्यायाम सीखना भी छोड़ दिया। रमा और मैं जहाँ तक हो सकता है घर से बाहर नहीं जाती।" वृन्दा ने उत्तर दिया।

"फिर आज क्यों जाने का विचार किया ?"

'मिस कोलिन्स और निरञ्जन बाबू ने विशेष आग्रह किया है। किसी से एक दम बेरुखी अपना लिया जाय यह कैसे हो सकता है ? फिर यह तो एक बड़ा जलसा है। स्त्रियाँ भी बहुत अधिक संख्या में सम्मिलित होंगी।" वृन्दा ने समझाया।

"मिस कोलिन्स हमलोग को साथ लिवा ले जाने के लिए आनेवाली हैं।" अभी तक चुप रही रमा ने जाने के लिए केवल इतना सा तर्क उपस्थित किया।

परन्तु आज ही महेशचन्द्र ने आकर सूचना दी थी कि किसी समय भी रमा को लेकर निरञ्जन भाग जायेगा। रमा को फिर कैसे जाने दिया जाय ?

शशिरेखा ने कहा—"तब वृन्दा को अकेली जाने दो। तुम्हें सब जगह जाकर करना क्या है ?"

इन शब्दों के उच्चारण के साथ माता को मार्मिक पीड़ा हुई। उसके

मुख पर दुःख की वेदना प्रगट हो उठी। एक भी मार्ग दिखलाई न देने के कारण ही उसने ऐसा कहा था।

"यदि आप मना करेंगी तो मुझे कहीं नहीं जाना है।" रमा ने मुख पर उत्पन्न हो आनेवाली कष्ट की रेखाओं को छिपाते हुए कहा।

"बहन नहीं जायँगी तो मुझे भी नहीं जाना है।" वृन्दा बोली।

शशिरेखा ने कोई उत्तर नहीं दिया। इतने में मिस कोलिन्स की मोटर का हार्न बजा। वृन्दा शीघ्रतापूर्वक नीचे द्वार पर जाकर साथ जाने में असमर्थता प्रकट की। नाखुश हो मिस कोलिन्स अकेली ही गयीं। लौटती हुई वृन्दा से शशिरेखा ने पूछा—

"तू क्यों नहीं गई?"

"मैंने कहा न कि बहन को छोड़कर नहीं जाऊँगी।"

"तू बहन बहन किया करती है, मगर बहन का तो भाग्य फूट गया है। ईश्वर ने यह सब देखने के लिए मुझे क्यों जीवित रखा?"

वृन्दा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। शशिरेखा सिसक सिसक कर रोने लगीं। उन्हें रोती देख रमा भी रोने लगी। वृन्दा दोनों की ओर कुछ क्षणों तक देखती रही। उसे लगा कि उसका हृदय भी इस करुण प्रभाव में तरङ्गित हो उठेगा। निकट की दूसरी कोठरी में जा एक पुस्तक निकालकर वह पढ़ने लगी।

एकाध घन्टे बाद वह कोठरी से बाहर आयी। रमा का सिर गोद में लिए शशिरेखा उसे देखती हुई बैठी रो रही थीं। रमा के कपाल और उसके बालों पर उनका हल्का हल्का हाथ फिर रहा था। वृन्दा बाहर आयी इसे शशिरेखा ने नहीं देखा। अधिक आक्रान्त पश्चात् आड़ी पड़ी रमा को निद्रा आ गयी थी। माता कब से लिये उसे बैठी थीं। गोद में उसका मस्तक रक्खे निर्दय समाज का भोग बनी हुई रमा की निर्दोषिता पर विचार कर रही थीं।

कितना अन्याय ? उन्हें विचार हुआ। इतने वर्षों पश्चात् भी मुझे पति स्वप्न में दर्शन देते रहते हैं। इस बालिका को क्या न ह चाहिए ?

एकाएक शशिरेखा चिहुँकीं, रमा ने झपकी हुई आँखों को खोला, वृन्दा दौड़कर खिड़की देखने गयी। कोई भयानक ज्वालामुखी फटा हो ऐसी भयङ्कर आवाज सुनायी पड़ी।

—:o:—

२८

दुर्घटना

"माँ ! मोटर उलट गयी !" वृन्दा खिड़की से चीख पड़ी और सदर दरवाजे की ओर दौड़ पड़ी। बाहर पहुँच कर उसने हृदयनाथ और निरञ्जन को देखा, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वृन्दा का हृदय धक धक कर तीव्र गति से धड़कने लगा। उसने समीप जाकर पूछा:—

"आप लोगों को चोट तो नहीं लगी?"

"नहीं।" हृदयनाथ मोटर को बल पूर्वक सीधा करता हुआ दीखा। मोटर की एक ओर एक पुरुष अचेत अवस्था में पड़ा हुआ था। हृदयनाथ और निरञ्जन उसके पास जा बैठे। उसमें प्राण है इसका निश्चय किया और उसे उठाकर मोटर में रखने लगे।

शशिरेखा और रमा भी दरवाजे पर आ गयीं थीं। शशिरेखा एकदम चिल्ला उठीं—

"यहीं लाइये मैं इन्तजाम करती हूँ, इनको इस प्रकार आप न ले जाँय।" शशिरेखा के पैरों में मानों बिजली प्रगट हो गयी हो इस तेज चाल से जाकर उसने बिछौना वगैरह बिछाया।

"साहब!" निरंजन ने अचेत मनुष्य को पुकारा। साहब ने उत्तर नहीं दिया।

"अधिक चोट लगी है? मैंने अपने भरसक चेष्टा तो की थी।" हृदयनाथ बोला।

"साला! मदकची गाड़ी वाला, जानबूझ कर गाड़ी बीच में लाया। देखो न गाड़ी छोड़ छाड़ कर भाग गया।"

शशिरेखा ने घायल को मकान में लाने का हट किया।

"साहब को अधिक चोट है मैं मोटर में लिटा कर अस्पताल ले जा रहा हूँ।" हृदयनाथ ने कहा।

"मैं कहती हूँ वैसा कीजिये। अभी घायल अचेत है मोटर में हवा लगेगी। अभी आप यहाँ अन्दर सुलाकर डाक्टर को यहीं बुला लायें।" शशिरेखा ने आग्रह किया।

हृदयनाथ को बात ठीक जँची। उसने निरञ्जन ने साहब को उठाकर घर के अन्दर सुला दिया। वृन्दा और रमा ने भी यथा शक्ति सहायता दी। शशिरेखा चारपाई के निकट हिचकी लेती बैठी हुई साहब के माथे पर कभी कभी हाथ फिराती हुई लगातार रो रहीं थीं। निरञ्जन और हृदयनाथ थोड़े विस्मित हुए।

"आप इस प्रकार रो क्यों हो रही हैं?" निरञ्जन ने शशिरेखा से पूछा।

"कुछ नहीं।" रोने के कारण शशिरेखा कुछ बोल भी न सकीं।

"आज तो यह समूचे दिन रोती ही रही हैं।" वृन्दा ने कहा।

हृदयनाथ और निरञ्जन डाक्टर को बुलाने गये। इन दोनों को भी मोटर की दुर्घटना में थोड़ी चोट लग गयी थी।

साहब को धन्यवाद देने के लिये जिस उत्सव का आयोजन किया गया था वह बहुत ही सुन्दर रूप में सफल रहा। अनुमान से भी अधिक स्त्री पुरुष सभा में उपस्थित थे। हृदयनाथ के बड़े भाई अरविन्द ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। असह्य दुःख में अचानक पड़ गये अरविन्द के जीवन में कुछ रस अथवा उत्साह रह ही नहीं गया था। वकुल की मृत्यु पश्चात अरविन्द की जिन्दगी में नीरसता आ गयी थी। छोटी छोटी झंझट, मामूली मामूली बातें उसे घबड़ा देतीं थीं। उसका एकान्तवास बढ़ गया था। संसार उसे खाने दौड़ता हो ऐसा उसे लगा करता। पुनः विवाह करने का मित्रों और शुभेच्छुकों

का टाला हुआ आग्रह, ज्वर के भोग में उन्हें मानने योग्य समझ में आया। और उन्होंने पुनः विवाह की सम्मति भी उतावलेपन से दे दिया था।

दूसरे ही दिन प्रातः उन्हें ध्यान हुआ कि उन्होंने जो अपनी सम्मति विवाह के लिये भेज दी है वह भूल हुई है। उसमें वे असफल रहे। उनके तैयार होते ही उनके मित्रों ने बहुत ही शीघ्रता से उनका सम्बन्ध ठीक कर दिया। उदासीका एक दूसरा उभार उसे हो आया।

इसी बीच साहब गिरफ्तार हुए, हृदयनाथ के व्यायामशाले की तलाशी हुई और हृदयनाथ के गिरफ्तारी की चर्चा भी हुई। वर्तमान पत्रों ने इस विषय को अधिक महत्व दिया। शिकार की तलाश में फिरते हुए शेर के समान टिप्पणी-पात्र बनाने की शोध में ताकते रहनेवाले पत्रकार रज को गज बनाने की यथेष्ट क्षमता रखते हैं। उन्होंने इस प्रसङ्ग को रचा और समूचे भारत में जानकार और अनजान देश-भक्त लोगों के मस्तिष्क में जितनी थी उससे अधिक गर्मी फूँक दिया। अरविन्द की मानसिक शिथिलता इस प्रसङ्ग से कम हुई। भाई की चिन्ता उन्हें होने लगी। भाई की रक्षा के लिये शक्ति भर प्रयास उन्होंने प्रारम्भ किया, मनमोहनराय की प्रतिभा असली खूनी को भी फांसी के तख्ते से उतार लाये ऐसी थी, इसलिये उन्होंने उस मुकदमें का सम्पूर्ण भार उन्हें सौंप नवीन विवाह-बन्धन को और दृढ़ कर दिया। उनके जीवन में आयी हुई नीरसता कम होती नहीं लगी। एकान्त में उन्हें यह विचार बराबर उत्पन्न होता। साहब के विरुद्ध का मुकदमा उठ जाने का समाचार सुनने पर भी उन्होंने हृदयनाथ के कार्यों में रस लेना चालू रक्खा।

व्यायामशाले में साहब के धन्यवाद आदि का कार्य-क्रम तथा सभा इत्यादि के आयोजन का निश्चय करने के लिये निरञ्जन तथा दूसरे मित्र हृदयनाथ के यहां एकत्रित हुए थे। अरविन्द भी टहलते-टहलते हृदयनाथ के कमरे में आये और दूसरा कोई कार्य उनके करने के लिये न होने के कारण वे उन युवकों की चर्चा सुनने बैठ गये। कुछ क्षणों पश्चात् उन्होंने पूछा :—

"मुझे बुलाओगे या नहीं?"

"क्यों नहीं ? आप आयेंगे तो हम लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।" निरञ्जन ने उत्तर दिया।

सभापति के लिये विचार होने लगा। सरकारी अधिकारियों अथवा उनकी छत्रछाया में पलकर वृद्धि पाते हुए सज्जनों के प्रति विचार भी नहीं हो सकता। तीखा और उत्तेजक भाषण देने मात्र का कार्य ही जिसने अपने माथे लिया हो उसके भूत तथा वर्तमान के कार्यों और भाषणों को गुजारे के साधन रूप में उपयोग में लेनेवालों पर विचार करने से उन्हें प्रमुख होना स्वीकार नहीं हुआ। कितने ही व्यक्तियों का प्रमुख होने के लिये ही सर्जन होता है, दूसरे किसी स्थान के लिये नहीं। प्रमुख पद के लिये ही बराबर उनकी माँग होती ही रहती है। अंत्यजों की सभा हो अथवा असहाय उद्धारक मण्डल हो, साहित्य सभा हो अथवा किसी तलाक आदि प्रसङ्ग की सभा हो। परन्तु इन सबमें वे एक सरीखे ही महत्व से प्रमुख स्थान पर विराजमान होने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर, संचालकों के ऊपर भारी उपकार करते हैं। उसमें से दो चार सज्जनों के नाम लिये गये और जिसमें से एक के पसन्द होने का प्रसङ्ग आया। इतने में निरंजन ने कहा :—

"अरविन्द भैया स्वीकार न करेंगे ?"

अरविन्द हँसे। उन्होंने कहा :—

"तुम्हारी सभा को कोई दूसरा सभापति मिलेगा ऐसा नहीं लगता क्यों ? गाँववालों की एक कहावत है—जिसका कोई विवाह न करे उसका क्षेत्रपाल विवाहिता है। उसी प्रमाण अनुसार तुम्हारी दृष्टि हमारे ऊपर पड़ी है। है न ?"

हृदयनाथ को निरञ्जन का प्रस्ताव रुचा। यह पसन्दगी नवीनता भरी होगी। मात्र कला की भक्ति में अनुरक्त रहे एक शौकीन गृहस्थ को राज्य द्वार के संग्राम में प्रवेश भी कराया जा सकता है और व्यायामशाले को प्रतिष्ठा और पैसा भी अधिक प्रमाण में मिल सकता है, ऐसी धारणा बना उसने आग्रह किया। सर्व सम्मति से निश्चय हुआ। अरविन्द को थोड़ा सकुचाहट हुई।

उन्होंने कहा :—

"ऐसे नहीं। आप लोगों को स्वीकृति लेने के लिये नियमानुसार आना चाहिये।"

सभापति पद के लिये अस्वीकार कर अरविन्द चले गये। किन्तु कुछ देर बाद मण्डल की ओर से नियमानुसार तीन सदस्य प्रतिनिधि रूप में प्रार्थना हेतु अरविन्द के पास पहुँचे और उनसे निवेदन किया कि सभा के सभापतित्व के लिये स्वीकृति दें।

अरविन्द के राजनैतिक विषय में इस प्रथम प्रवेश को स्थानीय समाचार-पत्रों ने बहुत अधिक महत्व दिया। दूसरी सभाओं के भी सभापति होने के लिए मन आकर्षित हो इतनी अधिक गुण-गाथा गायी गयी। सभा के दिन यह मौजी युवक उदासीन बन उस बात को भूल गया। हृदयनाथ अपने भाई की कमजोरी की जानकारी रखने के कारण सभा के ठीक समय पर उन्हें तैयार कर अपने साथ ही लिवा ले आया।

सभा का कार्य उत्तम रीति से पूर्ण हुआ। साहब और मन्मथ का अभिनन्दन किया गया। उपरान्त सरकार की भूलों की खूब टीका की गयी। मजदूरी कम की गई, वर्षा नहीं हुई, उस पर प्लेग का कोप, धर्म नष्ट हो गया इन सभी दुःखों का भार सरकार के माथे सरलतापूर्वक और कुशलतापूर्वक डाल देने में आया। ऐसे मण्डल की उपयोगिता के विषय में भी विवेचन हुआ। मिस कोलिन्स ने "व्यायाम शाला और प्रजा की नींव" पर विद्वतापूर्ण भाषण दिया। हृदयनाथ की प्रवृत्ति और लगन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा हुई। साहब ने उसका उत्तर दिया, मन्मथ ने भी आभार प्रदर्शित किया और अन्त में सभापति ने भी सभी का मनोरञ्जन हो ऐसा दो शब्दों में कह व्यायामशाला के ध्रौव्य कोष में अपनी ओर से अच्छी रकम देने का वचन दिया। सभापति का विशेष धन्यवाद किया गया। उनमें जो गुण थे वे और जो नहीं थे वे भी, सभी गुणों की चर्चा करने में आयी। प्रत्येक सभा के सभापति को अर्पित प्रमाण-पत्र यदि यथार्थ

ही हों तो फिर संसार में किसी भी प्रवृति को करने की जरूत नहीं रहेगी ऐसी वर्तमान में प्रगति हो गई है कहा जाय तो ठीक होगा। सभा समाप्त हुई। अरविन्द मिस कोलिन्स के साथ संगीत के विषय में चर्चा हो सके इस हेतु उनके साथ मोटर में बैठ घूमने चले गये।

हृदयनाथ और निरंजन तथा साहब तीनों व्यक्ति अरविन्द की मोटर में बैठ घर लौटे।

सभा समाप्ति के साथ हृदयनाथ के मन में एक विचार उत्पन्न हुआ—

मिस कोलिन्स के साथ वृन्दा क्यों नहीं आयी?

इस विचार के करने की उसे कुछ जरूरत न थी। उसे किस कारणवश यह विचार उत्पन्न हुआ इसे भी वह समझ न सका। मिस कोलिन्स के साथ उसे बराबर देखने के कारण ही ऐसे विचार उत्पन्न हों यह स्वाभाविक सा उसे लगा। उसने विचार परवर्तित किया। किन्तु बीच में एक बार तो सभा में होते कार्य-क्रम से विस्मृत वृन्दा का स्मरण करते हुए उसके सावधान मनने उसे पकड़ा।

"यह क्या? कभी ऐसा नहीं हुआ। मेरा मन दुर्बल होता जा रहा है क्या?"

रास्ते में ही निरञ्जन ने कहा—"यदि इस रास्ते से चला जाय तो?"

"क्यों?"

"मुझे जानना है कि वृन्दा और रमा आज उत्सव में क्यों नहीं आयीं? मैंने विशेष तौर पर आग्रहपूर्वक आमन्त्रित किया था।"

हृदयनाथ मित्र की इच्छा के वशीभूत हुआ। वह स्वयं मोटर चला रहा था। वृन्दा सम्बन्धी विचार मोटर चलाने के कार्य से मन से दूर हो जाय यह भी एक गुप्त कारण था। वह मोटर को दूसरे रास्ते से ले गया। यह रास्ता दूर का न था। एक छोटा सा मार्ग बीच में आता था। जब से उसे मालूम हुआ कि वृन्दा इधर ही रहती है तब से उसने उधर जाना छोड़

दिया था नहीं तो इसी मार्ग से पहले आया जाया करता था, कारण उस ओर से आने जाने में सहज ही समय का बचाव हो जाता था।

आज उसने इच्छा और अनिच्छा के खींच तान बीच वृन्दा के घर की ओर का रास्ता पकड़ा। घर के पास का रास्ता थोड़ा छोटा था। यह महाल धनिकों का निवास-स्थान न था। कम भाड़े के मकान को रोज खो.नेवाले मध्यम वर्ग के परदेशी कुटुम्ब इधर रहा करते थे।

कौन जाने वह किस विचार में डूबा है यह वह स्वयं समझ नहीं रहा था। मोटर उस ओर घुमाने के साथ ही मानों वह कोई स्वप्न में निमग्न हो गया। एक घर के आगे गली पड़ती थी इस गली में दूर से एक गाड़ी जाती हुई उसने देखा।

हार्न बजाया। गाड़ी गली में चली गयी। उसने मोटर की चाल एक दम बढ़ा दी। जिस तेजी से गाड़ी अन्दर गई थी उसी तेजी से गाड़ी का पिछला भाग बाहर आ गया।

मोटर घुमाने का मार्ग न था, उसे रोक लेने का समय भी नहीं था। गाड़ी छिपा लेने के बाद जान बूझ कर मानों गाड़ी वाला मोटर के साथ भिड़ाने के लिये उसे बाहर ढकेल लाया हो ऐसा लगा। ऐसे विकट समय में गाड़ी बाहर आयी। हृदयनाथ ने मोटर रोका, उसने बगल की ओर जितना भी हो सका ले जाने की कोशिश की, परन्तु कुछ क्षणों का विलम्ब हो गया। गाड़ी से मोटर जोर से टकराई इतना ही नहीं उसे किनारे की ओर हटना भी कठिन हो गया। गाड़ी से टक्कर खाकर वह समीप वाली दीवाल से भी लड़ गई। मोटर आधी उपर की ओर उलट गयी और उसके एक ओर से साहब बाहर गिर पड़े।

———

२६

नयी उलझन

डाक्टर ने आकर साहब का निरीक्षण किया। अधिक चोट लगी हो ऐसा समझ में नहीं आया। किन्तु अचानक आघात लगने के कारण बेहोशी आ गयी है ऐसा उन्होंने अपना मत प्रगट किया। सिरमें कहीं चोट लगी दिखलायी नहीं देती, परन्तु खोपड़ी के अन्दर जो भयङ्कर विकार हो गया है उसकी खुशखबरी एक दो दिन में मिल जायेगी ऐसा आशा जनक समाचार उन्होंने सुनाया। डाक्टर वैद्य भी ज्योतिषियों के समान ही सम्भव-शास्त्र के प्रचारक हैं। अपने फली फूली प्रजा की विस्तृत संख्या दिखा कर जिस प्रकार पितामह प्रसन्न होता है उसी प्रकार रोगों के नवीन नवीन नामों और उनके कारणों की नयी नयी उत्पत्ति की व्याख्या निश्चय कर अपनी मानसिक बुद्धि के विकास पर न्योछावर हो जाने वाले डाक्टर साहब, रात्रि भर जागरण कर रात्रि में प्रकट हुए भावों को ध्यान पूर्वक देख कर सूचना देने का आदेश देकर चले गये।

हृदयनाथ ने साहब को अस्पताल में भरती करने के लिये कहा परन्तु शशिरेखा ने कहा इस प्रकार की कमजोरी में अपने आश्रय में आये घायल को वह जाने नहीं दे सकती। अच्छी से अच्छी परिचर्या करने की बात कहकर उन्होंने उन्हें संतोष कराया।

रात्रि हो गयी थी। साहब को छोड़ कर जाने की हृदयनाथ की थोड़ी भी इच्छा न थी। निरञ्जन ने सोचा कि इस प्रकार एक साथ सभी को परिचर्या तथा रात्रि जागरण की आवश्यकता नहीं है। उसे थोड़ी भूख भी लगने लगी थी। वह लौटने के लिये सूचित करने का बहाना ढूँढ़ रहा था, बिना आव-

श्यकता ही परिचर्या का श्रम उठाने की शशिरेखा की भूल भरी उदारता की मन में वह टीका कर रहा था और रमा घर में क्यों नहीं मालूम देती इसकी चिन्ता भी करता जा रहा था। इतने में वृन्दा ने आ कर कहाः—

"माँ, भोजन का समय हो गया।"

माता को उद्देश्य कर कहे गये इस आमन्त्रण को सुन दूसरे अन्य उपस्थित लोगों का वहाँ से चले जाना चाहिये। हृदयनाथ उठ कर खड़ा हो गया।

"आप दोनों जने भोजन कर लें।" शशिरेखा ने कहा।

"मैं तो घर जाने के लिये खड़ा हुआ था।" हृदयनाथ ने उत्तर दिया।

उसे लगा कि भोजन के लिये कहे जाने पर वह भोजन करने की तैयारी में उठ खड़ा हुआ है ऐसा प्रतीत होने के कारण शशिरेखा उससे इस प्रकार कह रही हैं।

"भोजन किये बिना इतनी रात्रि में नहीं जाने दिया जा सकता।" सरल दृढ़ता से शशिरेखा ने कहा। मेहमान आग्रह स्वीकार न करे तो अधिक अच्छा है, ऐसी इच्छा से हुआ साधारण आग्रह का उसमें अंश भी न था। हृदयनाथ ने निरञ्जन की ओर देखा निरञ्जन ने हँसते हुये कहाः—

"तुम अच्छे गले पड़े ! मुझे तो भूख लगी है।"

"किन्तु मुझे तो जरा भी भूख नहीं है। मैं भोजन नहीं करूँगा।" अपने सिर आये आरोप का प्रतिकार करते हुये हृदयनाथ ने कहा। परन्तु शशिरेखा अपने आग्रह से हटीं नहीं। अचेत व्यक्ति की पलंग के पास अधिक बात करने का मौका न था।

वृन्दा वहाँ खड़ी ही थी। हृदयनाथ का हृदय थोड़ा धड़का। निरंजन के पीछे पीछे भारी पैरों से वह भी बाहर आया। कमरे के बाहर निकलते हुये उसे दरवाजे के पीछे कोई छिपा खड़ा मालूम हुआ। निरञ्जन की दृष्टि रमा को खोजती खोजती उस छिपे मनुष्य पर रुकी। दबे पंजों वह व्यक्ति घरके बाहर

जाने वाले दरवाजे की ओर लपका। दीये की रोशनी में निरञ्जन ने उसे पहचाना और दो छलांग में उसके समीप पहुँच कर कान पकड़ कर उसे एक तमाचा लगाया।

"हरामखोर तू ही गाड़ी बीच में लाया था, क्यों? मैंने तुझे भागते हुए अच्छी तरह देखा था। अब मैं तुझे जेलखाने भेजूँगा।" निरञ्जन ने उस व्यक्ति को धमकाया।

"बाबूजी, मैं क्या करूँ? भूल तो हुई, परन्तु मैंने जान बूझ कर कुछ नहीं किया।" गिड़गिड़ाते हुए उस व्यक्ति ने कहा।

"इस समय भी पीये हो न?"

"नहीं साहेब! नहीं!!"

हृदयनाथ ने भी उसे तरन्त पहचान लिया। उस दिन दारू पी अचेतावस्था में लड़खड़ाता हुआ जो गाड़ीवाला मिला था वही आदमी यह था।

"यहाँ क्यों आया था?" हृदयनाथ ने पूछा।

"मोटर उलट गयी और उसमें कोई घायल हुआ है ऐसा सुनकर उसे देखने आया था। साहेब मैंने जान बूझकर गाड़ी पीछे नहीं की थी।"

"यह तो अपने परिचय का है। कभी कभी आता भी है।" वृन्दा ने कहा।

"ठीक कहती हो बिटिया। इस घर में दूध मैं ही देता हूँ साहेब!" उस गाड़ी वाले ने कहा। वृन्दा का उस घर की ओर उस रात्रि में कोई बर्तन लिये हुए जाते दिखलायी देना हृदयनाथ को स्मरण हो आया।

गाड़ी वाले को वहीं का वहीं छोड़ तीनों व्यक्ति रसोई घर में गये। थोड़ा सा घूँघट निकाले हुए रमा एक कोने में बैठी हुई थी। भोजन और वह भी किसी युवती के देखते हुए यह बहुत विकट कार्य है। ऐसे प्रसंगों पर यह कार्य सूक्ष्म और नाजुक कला सरीखा बन जाता है। हृदयनाथ को दूसरे के घर भोजन करने की आदत न थी और उसमें भी स्त्रियों की उपस्थिति में उसने शायद ही कभी भोजन किया होगा। कभी कभी बकुलने उसके पास बैठकर उसे भोजन कराया था, परन्तु वह बात भी पुरानी हो गयी। बकुल की निकटता और यहाँ पराये वातावरण में काफी अन्तर था।

हृदयनाथ को बहुत अधिक व्याकुलता हुई। दो पीढ़े चौके में लगे हुए थे। किस पीढ़े पर बैठा जाय इसकी चिन्ता निरञ्जन ने एक पीढ़े पर बैठ कर दूर कर दिया किन्तु हृदयनाथ की असमन्जसता का आज पार न था। खाली पड़ा दूसरा पीढ़ा निश्चय ही उसके लिये है क्या, ऐसी पागलपन की शंका में तल्लीन हो उसने दूसरे खाली पीढ़े पर बैठने की हिम्मत की। परन्तु पैर तथा हाथ किस प्रकार रक्खा जाय इसकी उसे फिकर हुई। उसके हाथ और पैरों का मानों बोझ बढ़ गया हो इस प्रकार वह थोड़ी थोड़ी देर में हाथ तथा पैर की स्थिति बदल डालता था। किस ओर देखना चाहिये यह भी उसके समझ में नहीं आया।

"अरे! यह तुम क्या कर रहे हो? हाथ पैर में चाभी तो नहीं भरी है?" निरञ्जन ने डाँटा। हृदयनाथ ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु नीची दृष्टिको ऊपर उठाया। वृन्दा सरल स्मितको रोके हुए दोनों को परोसती हुई दिखलायी पड़ी।

जड़ कठोर पुरुष रसोइये द्वारा भोजन परोसाने का आदी हृदयनाथ वृन्दा सरीखी सुन्दर युवती को परोसते देख कोई नवीन जैसा रुचिकर किन्तु बोझिल वातावरण मालूम हुआ। स्त्रियाँ परोसती हों तो भोजन रोचक क्यों न बना रहे? रसोईयाँ में महत्त्व मानने की लोगों को टेव क्यों पड़ जाती है? एकाएक उसे अनेकों बार का सुना हुआ तर्क स्मरण हो आया। 'स्त्रियाँ क्या पुरुषों की रसोईदारिन हैं? किस कारण से उनसे यह कार्य लिया जाय?'

परन्तु आज के इस सुन्दर दृश्य को देखकर वह स्त्रियों के ओर की दलील को स्वीकार कर ले ऐसा न था। संसार की वृन्दायें बैठी न रहें और उनके द्वारा परोसने का कार्य कलापूर्ण बने तो क्या हानि है? अन्नपूर्णा की भावना इन स्त्रियों की भावना है। स्त्री के मातृत्व की भावना का विस्तार है। स्त्रियाँ संसार की अन्नपूर्णा क्यों न बनें?

धनवानों की पत्नियों का—रसोइयों तथा नौकरों पर आज्ञाओं की रिवाल्वर

आर्थिक दृष्टि से क्या उपयोगी नहीं है ? रसोई सरीखा उपयोगी कार्य कर जीवन संग्राम में अपनी आर्थिक नींव को अर्पण करती मध्यम वर्ग और निर्धन-वर्ग की स्त्रियों ने किस हेतु इस रसोई के कार्य को मानहानि की मान्यता दी है ?

"क्या दूँ ?" वृन्दा ने निकट आकर पूछा ।

स्त्रियों में अन्नपूर्णा की कल्पना कर उस विषय पर मानसिक तर्क करता हृदयनाथ चौंक उठा । उसकी विचारधारा रुकी ।

"कुछ नहीं ।" उतावली पूर्वक हृदयनाथ ने उत्तर दिया ।

"आप तो कुछ भी नहीं खा रहे हैं ।" नीचे की ओर दृष्टि किये हृदयनाथ ने वृन्दा का कण्ठ पहचाना । भाई सितार बजाते थे उसका उसे स्मरण हो आया । वींणा सरीखा झंकार, मिठास का एक स्वर से दूसरे तक प्रसार, यह आवाज वृन्दा की है इसका उसे निश्चय हुआ ।

"मुझे भूख नहीं है ।" कोई उत्तर न सूझने से हृदयनाथ ने यह उत्तर दे दिया । जो थोड़ा बहुत वह खा रहा था वह भी अब उससे खाया नहीं गया । कौन वस्तु लेना, किस प्रकार लेना, कैसे छोड़ दिया जाय, किस प्रकार मुँह में रक्खा जाय कि वह कुरूप न दिखलायी दे—ऐसी ऐसी कठिनाइयाँ एक साथ उपस्थित हो गयीं ।

"इसे तो जंगल में छोड़ देना चाहिये । लाइये मुझे दो रोटियाँ दीजिये ।" निरञ्जन बोला ।

"नहीं । कुछ तो लेना ही पड़ेगा । मेरा हाथ खाली नहीं लौटता । आप तो खूब व्यायाम करते हैं न ?"

इस आग्रह और इस प्रकार की बातों में हँसी के बीच उससे उत्तर नहीं दिया जा सका कि अधिक कसरत करने वाले को अधिक भोजन करना पड़े ऐसा नियम नहीं है ।

अन्तिम समय में शशिरेखा ने आकर जो उसकी मुश्किल थी उसको पहले

की अपेक्षा और अधिक बढ़ा दिया। कन्या अतिथियों को ठीक से भोजन करा रही है अथवा नहीं इसे देखने का अपना उत्तरदायित्व निभाने हेतु शशिरेखा आयीं और सभी को कुछ न कुछ लेने का आग्रह किया। आग्रह का सम्बन्ध वर्तमान में दोनों पक्षों में पड़ जाता है ऐसा मालूम होता है। एक मत अनुसार आग्रह करने की पुरानी रूढ़ि पालने योग्य मानता है, दूसरा मत अतिथि की स्वतन्त्रता का अपहरण न करते हुए उसकी इच्छानुसार भोजन करने देने की छूट दे आग्रह की शिलाओं को अपने कण्ठ में बांधने को वह तुरन्त अस्वीकार करता है। स्वतन्त्रता की बढ़ती जाती बाहुल्यता में वह दूसरी स्वातन्त्रय वर्द्धक मत प्रसारित करता जाता है। परन्तु जब तक निश्चित माहवारी पर होटल और बासा सर्वव्यापी बन घर घर की रसोईं न बन्द कर दें तब तक आगे आने वाली दो तीन पीढ़ी तक तो इस दुश्काल पीड़ित देश में आग्रह की आवश्यकता रहती है ऐसी बहुतों की सम्मति होगी। शशिरेखा भी इसी मत की थीं।

हृदयनाथ को दूसरी झंझट भी उत्पन्न हो गयी थी। साहब को छोड़कर शशिरेखा क्यों चली आयीं? भोजन करते हुए उसने पूछने की हिम्मत कर डाली—

"साहब के पास कोई नहीं है क्या?"

शशिरेखा साहब को नहीं पहचानती थीं। उन्होंने पूछा:—

"कौन साहब?"

"क्यों? आप उनके पास बैठी थीं न?"

"जी, जी। उनके पास ठाकुर को बैठा मैं पाँच मिनट के लिए आप लोगों के पास चली आयी।" शशिरेखा को नवीनता लगी कि यह हृदयनाथ धनाढ्य और समाजिक उच्चकुल का युवक साहब से इतना अधिक मोहित क्यों?

चौके से बाहर निकलते हुए निरञ्जन ने सभी कोई सुन सके इस प्रकार कहा:—

"हृदय ! वृन्दा बहन के हाथ से एक मास पर्यन्त तुम्हे खिलाकर तुम्हारी फोटो उतरवायी जाय तो मारवाड़ अथवा उड़ीसा के दुश्काल पीड़ित की कोई फोटो लानी न पड़ेगी।"

वृन्दा इसे सुन रही थी। हृदय ने इस हँसी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसका ध्यान तो बाहर के कमरे में सोये हुए साहब की ओर था। शशिरेखा के पीछे वह तेजी से आया। दरवाजे के निकट पंजो को दबाये हुए आकर शशिरेखा रुक गई। पीछे आते हुए हृदयनाथ को भी रुक कर खड़े होना पड़ा। उसने साहब की आवाज पहचानी।

"रूपाजी, शेर मरा ?"

वह मनुष्य शीघ्रतापूर्वक उठा हो ऐसी आवाज हृदयनाथ के कानों में पड़ी। वह थोड़ा आगे बढ़ शशिरेखा के कन्धों के ऊपर से कमरे में देखने लगा। फिर साहब को बोलते हुए उसने सुनाः—

"न मरा हो तो जाने दो सुग्रीव को जो मारा था वह आज तक नहीं भूल रहा है।

"अरे माँ!" यह चीख निकाल शशिरेखा आँखे बन्द कर वहीं धम्म से बैठ गई।

धीमे धीमे वृन्दा के साथ बातें कर रहे निरञ्जन ने यह चीख सुना और दौड़ पड़ा। वृन्दा उसके पीछे पीछे चौका और रसोई खुली छोड़ चली आयी। आज किसी के साथ बात न करने का निश्चय किये छिपी बैठी रमा भी अपना दुःख भूल उतावली बन दौड़ी आयी।

कमरे के निकट आते ही सबने देखा कि खून करने के लिए उठा छूरे सहित हाथ को शक्ति पूर्वक पकडे हुए हृदयनाथ खड़ा है।

—:०:—

३०

चीख

"हरामखोर ! छूरा छोड़ नहीं तो हाथ तोड़ डालूँगा। हृदयनाथ उस गाड़ीवान का हाथ मुड़ेरने लगे। हृदयनाथ ही जितना कद्दावर वह गाड़ीवान तुरन्त छूरा छोड़ देगा ऐसा नहीं लगा। उसके मुख पर यमराज की छाया छा गई हो ऐसा भयङ्कर वह दीख रहा था दारूका पूरा नशा उसकी आँखों में समा गया था। आँख झपकते ही चूकने वाले शत्रु को जिस प्रकार हिंसक जीव फाड़ फाड़ खाने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार हृदयनाथ को जख्मी करने, उसका किसी भी प्रकार खून कर डालने की ताक में वह था। किन्तु यदि वह जरा भी स्थान से हिले तो उसकी कलाई सरई की सींक समान टूट जाय इस प्रकार से हृदयनाथ उसे पकड़े हुए था।

हृदयनाथ ने अनुभव किया कि खून करने के लिये उद्यत यह नरपिशाच क्षण क्षण अधिक भयङ्कर बनता जा रहा है। जमीन पर गिरती हुई शशिरेखा को पकड़ कर खड़े हुए निरञ्जन को भी उस कब्जे में परवश बने खूनी की भयङ्करता दिखाई पड़ी। वह छूटने और हृदयनाथको घायल करनेके लिए अन्तिम बार महान प्रयत्न कर रहा है ऐसा समझ उसने शशिरेखा को रमा के हाथों में सम्हला हृदयनाथ की सहायता को दो कदम आगे बढ़ा, इतने में तो बिजली की सी चमक करता हुआ छूरा चमका मामूली सी आवाज हुई और झन-झन करता हुआ छूरा जमीन पर गिर पड़ा। गाड़ीवान के एक हाथ की हड्डी टूट गई सी जान पड़ी; परन्तु चोट खाते ही और दूने जोर से उछलते शेर के समान दूसरे हाथ में पुनः छूरा उठा लेने के लिए वह टूट पड़ा। छूरा लेने के लिए वह झुका ही था कि वह फलैया खा गया। हृदयनाथ ने

उसकी वृत्ति परख ली थी। हाथ की हड्डी के टूटने की महान व्यथा सहन करके भी छूरे को न छोड़नेवाला खूनी अभी दूसरा प्रयत्न करेगा इसका उसे निश्चय था, इस कारण नीचे झुके हुए खूनी को ऐसी गहरी लात मारी कि छूरा उठाना तो एक ओर रहा उल्टे वह दो कलैया खा गया।

हृदयनाथ अब अपना क्रोध रोक नहीं सका। उसे लगा कि खूनी जनून को मिटाने के लिये उसके शरीर की अधिक मरम्मत करने की आवश्यकता है। जमीन पर चारो खाने चित्त पड़ा हुआ खूनी उठने का प्रयत्न कर रहा है, उसे आधा खड़े होते ही पुनः हृदयनाथ ने लात मारी। खूनी फिर फैल गया। जमीन पर गिरते हुए उसने हृदयनाथ को देखा। परवश पड़ा हिंसक शेर चाबुक खाता हुआ निराधार खिसियाना सा मुँह बनाता है वैसा ही मुँह उसने बनाया। हृदयनाथ ने सोचा कि यह जब तक मुझसे निर्बल नहीं हो जाता तब तक इसे छोड़ना खतरे से खाली नहीं है। हृदयनाथ ने शक्ति भर घूँसा ताना, खूनी ने समझ लिया कि इस घूंसे के प्रहार से उसका जबड़ा टूट जायेगा और साथ ही उसकी खोपड़ी भी चूर-चूर हो जायेगी। उसने एक हाथ माथे के ऊपर ऊँचा कर रक्षा के लिये मुँह छाती के आगे झुका लिया।

"रूपाजी..... ! इसे कौन मार रहा है ? क्यों मार रहा है ? इसने मुझे जख्मी नहीं किया, शेर ने चोट पहुँचायी है ......इसका कुछ कसूर नहीं है। इसने धक्का मारकर शेर के पास गिरा दिया था ऐसा मैंने कहा ही नहीं.... "

साहब की आवाज सुनायी पड़ी। बिछौने में पड़े, साहब ने आँख खोली। रूपाजी को देखने की उनकी इच्छुक आँखों ने रूपाजी को गिरते, घसीटते, मार खाते देखा। पूर्ण बलपूर्वक, उन्होंने उपरोक्त वाक्य कहा और पुनः आँखें बन्द कर लीं। अत्यधिक व्यथा का चिन्ह उनके मुख पर प्रगट था।

शशिरेखा कबकी उनके निकट जाकर बैठी थीं। उन्हें बोलने से रोकने के लिए शशिरेखा ने उनकी आँखों पर हाथ रख दिया। निरञ्जन ने कभी का छूरा उठा लिया था। साहब को विचित्र रीत से बोलते हुए सुन हृदयनाथ ने चोट करने के लिए उठाया हुआ हाथ नीचे गिरा दिया। प्रत्येक क्षण इस प्रहार की धारणा किये खूनी ने चोट न पड़ने से साहब की धीमी बोली सुन ऊपर की ओर आँख उठाकर देखा। हृदयनाथ ने पूछाः—

"तुम्हारा नाम रूपाजी है ?"

"मेरा नाम रूपाजी है ? आपके उम्र का जब मैं जवान था तब शेर का कान पकड़ कर उसे खड़ा रखता था।"

"अब इस समय तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"मुझे दुःख होता है। मेरी जवानी में आप मुझे मिले होते और इस प्रकार मुझे लात मारते तो...... " रूपाजी को अपमान भरी लात प्राण-घातक सी लग रही थी। इस लात से शारीरिक दुःख तो था ही परन्तु उसमें असह्य अपमान भरा था। रूपाजी के हाथ में एकाएक दर्द की टीस उठी। शारीरिक दुःख मनुष्यको कितना निर्बल बना देता है इसका ध्यान करते हुए हृदयनाथ ने रूपाजी के मुख से "ओह..... " ऐसा उद्गार सुना। उसे सहज दया आयी। उसने कहाः—

"ठीक कहते हो। मैंने भी तुम्हारे सरीखे बहुत थोड़े आदमी देखे हैं। देखूँ तुम्हारा हाथ—कहकर हृदयनाथ जमीन पर बैठ उसका टूटा हुआ हाथ बहुत ही सावधानी पूर्वक देखने लगा हाथ टूट गया था। उसे बाँधने के लिए जेब से रूमाल निकालने के लिए हृदयनाथ ने जेब में हाथ डाला कि उसी क्षण रूपाजी ने छलांग मारी, क्या हुआ इसका लोग ठीक से विचार कर सकें कि उसके पहले ही रूपाजी उस घर के बाहर निकल कर अदृश्य हो गया। हृदयनाथ कह उठा—

"कितने जीवट का आदमी है। इतनी चोट दूसरे को लगी होती

तो वह बोल भी न सकता। यह तो सभी के देखते हुए भागा जा रहा है।

ऐसा भयङ्कर मनुष्य फिर आकर क्या न करेगा इस डर से घर का दरवाजा बन्द कर दिया गया। पुलिस को सूचना देने के लिये निरञ्जन ने सम्मति दी, परन्तु शशिरेखा ने स्वीकार नहीं किया। डाक्टर को हाल देने जाने को भी उसने मना कर दिया।

"इस समय जो किया जायेगा वह सुबह भी हो सकता है।"

ऐसा कहकर घायल साहब सम्बन्धी पूर्ण उत्तरदायित्व मानो अपने सिर ले रक्खा हो इस प्रकार का व्यवहार करने लगीं।

साहब का परिचय इन्हें है? इतना अधिक परिश्रम क्यों कर रही हैं? इस प्रकार के विचार बार बार हृदयनाथ के मन में उठने लगा। परन्तु विचारानुसार वह कह नहीं सका। साहब को निद्रा आ गई थी। शशिरेखा उनके निकट से एक क्षण के लिये हट नहीं रही थीं। वह जरा सा आँख भी झपकने नहीं देती थीं। जिस लगन से वे साहब की परिचर्या कर रही थीं वह रीति हृदय को थोड़ी नयी सी दीखी। अपनी आवश्यकता न होने के कारण निरञ्जन इधर-उधर टहलने लगा। टहलते-टहलते अन्दर चला गया। परन्तु आज रमा अकेली मिलेगी ही नहीं ऐसा उसे लगा।

शशिरेखा ने अधिक रात जाते देखकर हृदयनाथ से कहा:—

"अब आप सो रहें।"

"मुझसे साहब को छोड़कर सोया नहीं जायेगा।"

"परन्तु मैं तो जाग रही हूँ। मुझे जब नींद आयेगी तब आपको जगा दूँगी।"

"परेशानी क्या है। मैं बैठा हूँ।"

"अरी वृन्दा! आरामकुर्सी तो दे जाओ।" शशिरेखा ने थोड़े उच्च स्वर में पुकार कर कहा।

वृन्दा न जाने कहाँ से एक आराम कुर्सी उठाकर लायी और उसे एक खिड़की के पास रख दिया।

घर में कोई नौकर न था। शिक्षित लड़कियाँ कुर्सी देते हुए कुरूप दीखती हैं ऐसा हृदयनाथ को नहीं लगा। बल्कि यह देखकर स्वभावतः नवीनता लगी कि इतनी शिक्षित युवती इतनी सरलता और सफाई से घर का कार्य कर सकती है।

"आप थोड़ा विश्राम करें। बहुत थक गये होंगे।" शशिरेखा ने आग्रह कर हृदयनाथ को कुर्सी पर सुलाया। वह बड़े सोच में पड़ गया। रूपाजी नाम का सम्बोधन करते हुए उस शराबी गाड़ीवान को साहब ने किस प्रकार पहचाना? उनका और रूपाजी का क्या सम्बन्ध है? शेर कहाँ? सुर्खाब कैसा? साहब को चोट लगने के कारण मस्तिष्क भ्रमित तो नहीं हो उठा है? ऐसे ऐसे प्रश्न वह अपने मन ही मन करने लगा। विचारविनमय में उसने साहब की ओर देखा। शशिरेखा साहब के कपाल पर हाथ रख उनके मुख की ओर देखती रहती थीं। रोशनी का मन्द प्रकाश शशिरेखा के मुख पर पड़ रहा था। स्त्रियों के मुँह पर यथासम्भव दृष्टि न डालना ऐसा हृदय-नाथ का निश्चय था, परन्तु शशिरेखा के मुख पर उसने किसी विचित्र भाव को परखा—उसे किसी नवीन विचित्र भाव का अनुभव हुआ।

मध्यम वय में माधुर्य चला नहीं जाता। यह सौन्दर्य निश्चय ही मध्यम वय की आँखों से ही पूर्ण जाना जा सकता है, युवक उसे पहचानने में कदाचित् ही समर्थ होते हैं। परन्तु मुग्धा, मध्या, और प्रगल्भा का नायिका भेद डालकर अपने प्राचीन रस मीमांसकों ने स्त्री पुरुष के प्रेम विकास का बहुत ही यथार्थ पृथक्करण किया है। इस भेद में समूचे रस जीवन का इतिहास परिचय में आ जाता है। मुग्धा को भाग्य से ही खबर होती है कि प्रौढ़ा भी नायिका हो सकती है। सन्ध्या में सौन्दर्य नहीं है ऐसा ऊषा क्या निश्चित रूप से कह सकती है?

शशिरेखा के मुख पर क्या दिखलाई पड़ता था? प्रेम? नहीं। प्रेम

का उन्माद छिपा नहीं रहता। तब वात्सल्य? नहीं। अकेला वात्सल्य भी नहीं और अकेला प्रेम भी नहीं। दोनों का अंश पकड़ आए ऐसा कोई विचित्र भाव मिश्रण उनमें दिखलाता था। उन्होंने साहब के मस्तक पर हाथ छोड़ ही रक्खा। हाथ रखना छोड़ रखना उसे रुचता था और यह रुचने का भाव बहुत ही मर्यादित है। स्पर्श सुख उसमें है, स्पर्श का उन्माद उसमें नहीं है। आँख में स्नेह की शीलता थी, स्नेह का धधकता अंगार नहीं था!

"शशिरेखा मैं कहाँ हूँ?"—साहब का स्वर हृदयनाथ के कान में पड़ा और वह एक दम खड़ा हो गया

"मेरे पास।" शशिरेखा ने उत्तर दिया। सरल शब्दों में। प्रेमियों के योग्य अलंकार नहीं होता, उसी प्रकार आवेश का अस्फुट आचरण भी नहीं होता। और तब भी ये शब्द कितने भाव पूर्ण! "मेरे पास।" प्रेमी इसके अतिरिक्त दूसरे किन शब्दों की, वांछा करता है?

साहब के पास जा पहुँचे हृदयनाथ की तरफ साहबने देखा। आँखों में परिचय न था। उन्होंने अपनी आँखे पुनः बन्द करली। हृदयनाथ को साहब का यह व्यवहार विचित्र लगा। स्नेह प्रत्येक अर्थ में—अदेखा तो है ही। उससे रहा नहीं गया। कुछ क्षण पश्चात् मन्द स्वर में शशिरेखा से पूछाः -

"साहब आपको पहचानते हैं?"

शशिरेखा का मध्यवयी सौन्दर्य मन्द स्मित में प्रफुल्लित हो प्रगट हो गया गया। उन्होंने कहाः—"जा।"

"आपको कैसे पहचानते हैं?"

साहब के इस नये मित्र का कौतूहल शशिरेखा के मुस्कान से और बढ़ा। उन्होंने उत्तर दिया—

"बाद में बतलाऊँगी। मेरा बहुत पुराना परिचय है।"

हृदयनाथ कुर्सी पर आ कर लेट गया। उसने मन को रोका फिर भी अनेक तर्क वितर्क मन में उठे।

"पुराना परिचय ? कैसे ? किस तरह ? शशिरेखा पतिहीन, साहेब का भूत काल गुप्त ? यह सब क्या है ? मानव हृदयकी दुर्बलता ? पूज्य अग्रगणी गिनेजाने वाले व्यक्तियों में भी किसी समय यह रही होंगी ? सम्पूर्ण स्वच्छ कोई भी मनुष्य नहीं होगा ?

उसका अपना आदर्श था। आज तक उसी आदर्श अनुरूप क्या उसने अपना जीवन नहीं गढ़ा ? प्रेम भावना के नाम से पहचान में आने वाली बासना को उसने एक क्षण भी हृदय में स्थान कब दिया था ? स्त्री आकर्षण से पूर्ण मुक्त-जीवन बिताने के अभ्यास पर उसने अधिकार प्राप्त किया था। उस आदर्श सिद्धि का एक ज्वलंत दृष्टान्त वह स्वयं क्यों न बने ?

"आप अभी तक सोये नहीं ?"

अपनी मानसिक स्वच्छता का अखंड आदर्श सिद्ध होने के गर्व से शान्ति पा वह आँख मीचने जा रहा था कि इतने में वह परिचित सितार के झंकार सरीखा स्वर, मन्द, मधुर, पास की एक अधखुली खिड़की से आया। चौंक कर वह कुर्सी पर उठ कर बैठ गया। वृन्दा का मुख खिड़की के पीछे अदृश्य होता दीखा—धक, धक, धक, ! हृदयनाथ का हृदय धड़क उठा।

उसका शरीर लोह खण्ड का बना हुआ था। तलवार का घाव सरलता से उसके स्नायु में प्रवेश पा सके ऐसा न था। कौन सी वस्तु ने इस वज्रमयी शरीर की दिवाल को तोड़ कर हृदयनाथ के हृदय को हिला डाला।

केवल मात्र एक संगीत पूर्ण निर्बल फूँक सरीखा मधुर स्वर !

अभी तक उसका हृदय धड़कता जा रहा था। मध्यम रात्रि की नींद उड़ गयी थी। घड़ीका लङ्गर हिल हिल कर सम्पूर्ण शान्ति भंग कर डालता है, उसी प्रकार उसके हृदय की धड़कन ने उसके मन की शान्ति को छिन्न भिन्न कर डाला था। उसने इस धड़कन को रोकने का जबरदस्त प्रयत्न किया। धड़कन रुकी नहीं बहुत स्पष्टता से, अधिक तीक्ष्णता से उसने आवर्तन किया .... धक ... .धक ....धक . ... !

३१

पूर्व का सम्बन्ध

विद्यालय में शिक्षक की छड़ी की एक मार पर क्रोधित हो उठने वाले विद्यार्थी अथवा विद्यार्थी के माता पिता को अपनी कोमल चमड़ी के मार सहन करने का कदाचित ही स्मरण रहता है। भील कोल अथवा कैदियों को सहन करते हुए उन्हें आप देखें तो मनुष्य की सहन-शक्ति के प्रति अवश्य ही आपको यथेष्ठ मान उपजेगा। रूपाजी का हाथ टूट गया था, पच्चीस छब्बीस वर्ष के पहलवान के क्रोधयुक्त पग-प्रहार ने उसे दो चार परग जमीन पर ढंगला दिया था, शरीर को शिथिल बना देने के लिए यह पर्याप्त था। साधारण मनुष्य से तो छः महीने तक शायद ही इस मार के पश्चात् उठा जा सकता।

परन्तु रूपाजी कोई साधारण मनुष्य नहीं था। मानव यदि हिंसक बन जाता है तब वह क्रूर से क्रूर जानवरों की शक्ति को मात कर देता है। रूपाजी को हृदयनाथ में असाधारण बल मालूम हुआ। घात के लिए उठा उसका हाथ पीछे लौटा देने की शक्ति किसी में नहीं है, एसी उसकी धारणा थी। आज उसका हाथ रोका जा सका, रूपाजी मात हुआ। उसे अपनी भरी जवानी के दिन स्मरण हो आये, नशा सेवन से पूर्व का दिन स्मरण हुआ, बल के इस गर्विष्ठ युवा को अभी भी अपने बलका परिचय देने की वृत्ति जगी। रूपाजी को स्थिर रूप से यहाँ नहीं रहना था। पुलिस की कैद में पड़ना नहीं था। सिपाहियों के घेरे के बीच से भाग जाने वाली अपनी पुरानी आदत उसे अपने आप याद हो आयी। पुरानी स्फूर्ति धारा उसमें प्रवाहित होने लगी। एकाएक किस तेजी से सभी को देखता छोड़ रूपाजी वहाँ से भाग निकला।

इस प्रकार से निकल भागने वाले अभ्यासी अपराधियों को किवाड़ अथवा दीवाल बाधक नहीं होती। अनेकों बार यह आश्रय अथवा सहायक रूप में हो पड़ती है। धनुष से छूटे तीर की गति से वह गली में गिरा, और वहाँ से दीवाल के सहारे छिपे छिपे जिस पर किसी का ध्यान न जाये ऐसे रास्ते को पकड़ा। उसे निश्चय था कि वह युवक उसका पीछा अवश्य करेगा। दो तीन बार किसी का पद-चाप सुन वह चौंका भी परन्तु निशाचर की प्रेरणा के कारण क्षण मात्र में उसे समझ में आ गया कि उसके पीछे कोई नहीं आ रहा है। वह जरा रुका, उसने अपने दुखते हुए हाथ को दूसरे हाथ से पकड़ा। व्यथा के भाव उसके मुख पर झलक पड़े। कोई उसे यदि देखता होता तो वह इस प्रकार से कदाचित ही करता। तत्काल ही शीघ्रता पूर्वक वह आगे बढ़ा।

वह शहर के बाहर नहीं बल्कि शहर के भीतरी भाग में ही बढ़ा जा था। थोड़ी थोड़ी देर में आगे-पीछे देखता हुआ, आगे बढ़ता जाता रूपा जी एक भव्य मकान के सामने रुका। रात्रि अधिक हो गई थी। मकान के अधिक हिस्सों में अंधेरा था। एक कमरे में हल्की रोशनी जल रही थी। एक झूला हल्की आवाज कर शान्त घर में अपना बोध करा रहा था।

रूपाजी ने बन्द दरवाजे पर एक धक्का मारा। झूले की आवाज रुक गयी। रूपाजी ने किवाड़ की सांकल धीमे धीमे खड़खड़ायी। ऊपर की खिड़की से आवाज आयी —

"कौन ?"

"मैं हूँ खोलो।" रूपाजी ने धीमी आवाज में कहा।

घर की भव्यता नौकरों के अस्तित्वको सूचित कर रही थीं। महेशचन्द्र ने नीचे आ कर दरवाजा खोला। वे ऊपर लौटे और रूपाजी उनके पीछे सीढ़ियाँ चढ़ गया।"

झूले की आवाज पुनः होने लगी। महेशचन्द्र को झूला बहुत प्रिय था। अनेकों राज्यों और राज दरबारियों को विषाद-ग्रस्त उलझनों में डालनेवाली योजनाओं पर झूले का झोंका अनेकों भाव प्रेरित करता।

"क्यों, क्या हुआ ?" महेशचन्द्र ने पूछा। दिन के समय में शान्त स्थिर और प्रसन्न दीखते, मुख पर रात्रिमें अनेकों रेखायें उत्पन्न हो गयी थीं। उसके मुख पर थकान और चिन्ता के चिन्ह थे।

"हाथ तुड़ा आया।" रूपाजी ने हाथ दिखलाया। रूपाजी के इस कष्ट का महेशचन्द्र के हृदय पर कुछ असर हुआ हो ऐसा नहीं मालूम हुआ। उन्होंने थोड़ा चिढ़ कर पूछाः—

"परन्तु तुमने किया क्या यह तो कहो ?"

"मार खा कर लौट आया हूँ।" रूपाजी ने सत्य बात कही।

"हरामखोर, हरबार तू बनी बाजी बिगाड़ डालता है। तू मुझे कहाँ से मिला ?"

"आपके कहने के अनुसार हो तो करता हूँ।"

"मेरे कहने अनुसार करता तो ऐसा होता ? पूरा पूछता नहीं समझता नहीं और अपनी बेवकूफी के अनुसार काम करता है। जा मर जा। नीच। मुझे क्या ?"

रूपाजी कुछ बोला नहीं। परन्तु महेशचन्द्र इतने में ही छोड़ देगा ऐसा नहीं था। इसका निश्चय उसके मुख के भावों से प्रकट होता था। क्रोध में कुछ समय बिता महेशचन्द्र ने पूछाः—

"परन्तु तूने किया क्या यह तो बता ?"

"गाड़ी लेकर सभा स्थान पर गया। वहाँ गाड़ी खड़ी कर भीड़ में घुस गया, फिर ध्यान पूर्वक खोजा। मेरी आँख चूँकती नहीं। वही हैं मुझे निश्चय हो गया।"

"मेरे कहने पर भी निश्चय नहीं हुआ था ?"

"चारों ओर अच्छी तरह देखा, सभी ओर नजर दौड़ायी फिर गाड़ी पर जा कर बैठ गया। वह वहाँ ही रहने वाला है यह खबर मिली।"

"कौन मधुसूदन ? वह तो वहाँ ही रहता ही है, यह तो मैंने तुमसे कहा ही था।"

"साहब, सुनिये तो थोड़ा। सभा समाप्त होने पर वह वहाँ से निकल मोटर पर बैठा, मुझे समझ में आया कि अब काम बना।"

"साथ में कौन कौन था।"

"दो जने थे परन्तु मैंने ठीक से देखा नहीं। मेरी आँखें केवल दीवान साहब पर ही गड़ी हुई थी।"

"ठीक ठीक कह डाल।" रूपाजी की दीर्घ वार्ता के तरीके को नापसन्द करते हुए महेशचन्द्र ने कहा।

"मैंने गाड़ी हाँक दी। कुछ देर के लिये मोटर आगे निकल गयी। परन्तु एक जगह भीड़ के कारण पुलिस ने उसे रोक रक्खा था। मैं भी साथ हो गया। सड़क छोड़ मोटर दूसरी ओर मुड़ी। मैं घबड़ाया। मुझे लगा कि उसे अपने बाल-बच्चों वाला घर मिल जावेगा।"

"शशिरेखा को आज सुबह तक तो कुछ मालूम था ही नहीं। सभा में लड़कियाँ न जाँय ऐसी व्यवस्था स्वयं मैं उनके पास जाकर कर आया था।"

"परन्तु उस ओर मोटर घूमी तो क्या समझूँ ? मैं दूसरी गली से जो नजदीक और सकरी थी उसमें मोटर के आगे जा पहुँचा। मोटर पीछे थी। मैं गाड़ी को घर के पास वाली गली में थोड़ा अन्दर ले गया, और गाड़ी से उतर कर हिम्मत करके मोटर पास आने के साथ ही घोड़े को पीछे की ओर ढकेल कर ठीक मौके से गाड़ी भिड़ा दी। घोड़ा मर जाय तो परवाह नहीं परन्तु मोटर तो उलटना ही चाहिए।"

"फिर ?"

"मोटर उलटी नहीं। सिर्फ उछल कर रह गयी।"

"तुम्हारा काम ही ऐसा है। क्यों अधूरा काम करते हो ?"

"मैंने तो पूरा होने की आशा में ही गाड़ी तुड़वा डाली। जिसे चोट

पहुँचना था उसे तो चोट लगी ही। मगर सामने वही घर आ गया था और उन्हें लोग उठा कर अन्दर ले गये।"

"मगर तेरा हाँथ कैसे टूटा ?"

"यह भी बतलाता हूँ। मेरे यहाँ से उस घर में दूध दिया जाता है यह तो आप जानते ही हैं इस कारण घर के सभी लोग मुझे पहचानते हैं। मैं मकान में यह देखने गया कि वह मर गया या नहीं ? वहाँ तो आपके लड़के और वह दूसरा उसका दोस्त सभी मुझे दिखलायी दिये। जान पहचान का लाभ उठा मैं वहाँ बैठ गया। मालकिन को भी मेहमानदारी करनी थी, इस लिये पाँच मिनट के लिये वहाँ अकेला छोड़ कर अन्दर गयीं। मैंने फिर एक निश्चय किया। छूरा मेरे पास था ही परन्तु चलाने के वक्त मुझे बहुत से विचार आये। शेर के मुँह में डाल देने पर भी बच जानेवाला मनुष्य क्या मारा जा सकता है ?"

"तुम यह बात मत किया करो ! मैंने क्या कहा था और तुमने क्या किया ?" महेशचन्द्र बीती बातों का उल्लेख आते ही बोला।

"आपने नहीं कहा था कि रास्ता साफ करना है ? शिकार में किसी को कहनेवाली बात भी न मिलेगी और अपने ऊपर शंका भी न होगी तथा मन चाहा काम भी हो जायेगा। मेरे भाग जाने से भी लोगों को वास्तविकता समझ में आ जायेगी। मेरे जैसे शिकारी की उपस्थिति में दीवान साहब जैसे अधिकारी शेर द्वारा मारे जाँय ? इसीलिए मुझे भागकर छिप जाने से छुटकारा मिल सका। उनको मारने में मेरा कोई स्वार्थ नहीं हो सकता, इस कारण सभी यह धारणा बना लेंगे कि घटना सच्ची है और आज तक वैसा ही बना भी है।"

"तुझे क्या करना था यह बिना समझे तूने यह सब कर डाला। उसका हाथ पैर टूट जाय अपने कार्य में असमर्थ हो जाय यही मेरी इच्छा थी और तूने कहा कि उसे समाप्त कर दिया। यदि समाप्त भी कर दिया होता

तो ठीक होता। यह तो फिर से जिन्दा हो गया। अब मुझे और तुम्हें दोनों को फाँसी होगी।"

कभी भी सोच में न पड़नेवाला महेशचन्द्र सोच में तल्लीन हो गया हो ऐसा प्रतीत हुआ। अपने कार्य में प्रतिद्वन्द्विता वह सहन नहीं कर सकता था। उसे निश्चय था कि कुछ दिनों पश्चात् राजा वीरसिंह उसे अवकाश दे अपने मित्र मधुसूदन को दीवान पद का पूर्ण अधिकारी बना देंगे। ऐसा न हो सके इसलिए उसने कई चक्रव्युहों की रचना कर डाली थी। मधुसूदन को बन्दूक चलाने की रूपाजी द्वारा मिलनेवाली शिक्षा की व्यवस्था में उसने एक चाल चल सफलता पाई ऐसा लगा। वाणी के वशीकरण द्वारा रूपाजी जैसे कुसंस्कारी लुटेरे को भुलावे में डालना उसके लिए कुछ कठिन न था। गहरी लालच दिखला मधुसूदन को रास्ते से दूर कर देने की राजा वीरसिंह तथा उनकी रानियों की भी इच्छा है ऐसा उसको समझाया। राजा, रानी तथा दीवान को अपनी योग्यता का ज्ञान कराने के; अवसर की प्रतीक्षा का इच्छुक रूपाजी ने मचान के पास से गिरते हुए शेर के साथ मधुसूदन को भी नीचे ढकेल दिया।

थोड़ी देर पश्चात् मचान से उतर कर रूपाजी ने देखा कि मधुसूदन के माथे से खून बह रहा है। शेर का पञ्जा अवश्य लगा होना चाहिए। घायल हुआ शेर चोट करनेवाले को हाथ में पा कर जिन्दा छोड़ देनेवाला नहीं है। शेर के इस प्रकार के स्वभाव से परिचित इस शिकारी ने मधुसूदन की नाड़ी पर हाथ रखकर जाँच की। दो चार क्षणों में हृदय की गति बन्द हो जायेगी ऐसी स्थिति उसे मालूम हुई और वह वहाँ से अदृश्य हो गया।

उसे मिलनेवाला भारी ईनाम मिल गया। मगर उसे एक नवीन सूचना मिली कि महाराजा वीरसिंह उसे फाँसी देना चाहते हैं। रास्ता साफ करने की योजना बनानेवाले महेशचन्द्र की धारणा से अधिक रूपाजी ने रास्ता साफ कर दिया था। उसका यह परिणाम था!

वर्षों तक वह अदृश्य रहा। केवलमात्र महेशचन्द्र ही उसका स्थान जानते थे। रूपाजी ने विवाह किया, शहरी प्रभाव में पड़ा। खूब अधिक शराब सेवन करने के कारण पैसा और स्वास्थ्य दोनों ही बरबाद कर अत्यन्त निर्धन अवस्था में पुनः महेशचन्द्र की शरण में गया। महेशचन्द्र ने व्यापार कर पेट पालने के लिए कुछ धन दिया। उसके मित्रों में एक गाड़ीवाला था। उसकी आमदनी का विचार कर उसने भी एक गाड़ी लेकर चलाना शुरू किया। उसकी पत्नी चर्खा चलाती और एक भैंस रख उसका दूध बेचकर पति की दारू से बची शक्ति को उस अल्पआयसे मामूली सी वृद्धि करती।

महेशचन्द्र को कुछ ही दिनों के बाद यह सूझा कि यदि मधुसूदन की मृत्यु का आरोप वीरसिंह के ही मत्थे मढ़े जाने की व्यवस्था बन जाय तो हमेशा के लिए उसकी मुट्ठी में वह हो सकता है। उसने इस बात का प्रचार कराया। कई झूठे सच्चे कागज तैयार किये, आवश्यकतानुसार साक्षी देनेवाले गवाह भी तैयार कर लिए और एजेन्सी द्वारा चार छः महीने तक इस विषय की जाँच चलती रहे इसके लिए प्रार्थना पत्र जाली नाम से भेज दिया।

अंगूठे पर रावण चित्रित करना यह राज अधिकारियों के लिये कुछ अशक्य नहीं है। एक, दो, पांच प्रार्थना पत्र तक तो कुछ छानबीन करने की उन्हें आवश्यकता नहीं दीखती। परन्तु वे संख्या में सौ दो सौ हो जांय तो सम्भवतः जांच करने का विचार हो। जांच में वीरसिंह और मधुसूदन का परस्पर, उसके पश्चात् शशिरेखा का नाम, रानियों और प्रजाजनों का संशय, फिर एकाएक मधुसूदन की मृत्यु—ये सभी बातें इकट्ठा करते ही सहज ही वीरसिंह की ओर संशय हो जाय ऐसा था।

वीरसिंह के विरुद्ध सभी प्रमाण पूर्ण उतरें इसकी व्यवस्था उसने (महेश-चन्द्र ने) कर रक्खी थी। एक रूपाजी और दूसरी शशिरेखा। रूपाजी पैसे के लालच से इच्छानुसार बयान देने को तैयार था कि अभय का वचन देकर वीरसिंह

ने स्वयं ही उसे मधुसूदन के खून करने का भार दिया था, ऐसा कहने में उसे कोई बाधा न थी। शशिरेखा का वीरसिंह के ऊपर संशय है केवल इतना ही वह प्रगट कर दे तो कार्य सिद्ध था। परन्तु शशिरेखा इस प्रकार वीरसिंह को दोष नहीं दे रही थी। महेशचन्द्र ने शशिरेखा से ऐसा कहलाने के लिये अनेकों प्रयास किये मगर सफल न हुए। फिर भी उन्होंने आशा न छोड़ी थी।

इधर उसने 'साहब' के नाम से परिचित एक भील नायक की सरकार द्वारा गिरफ्तारी का समाचार पढ़ा। नायक को अपना नाम नहीं मालूम था, पिता के नाम का भी ज्ञान न था। पुलिस की जांच में मिली इस प्रकार की सूचना वाला यह विचित्र समाचार वकील मण्डल के अध्यक्ष मनमोहन राय द्वारा उसने सुना। अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा की संतुष्टि के लिए वह अदालत में केस वाले दिन गया। परन्तु आरोपी को देखते ही उसके पैर एक बार काँप गये। उसे निश्चय हो गया कि यह आरोपी मधुसूदन ही है। मधुसूदन ने एक बार भी महेशचन्द्र की ओर नहीं देखा, परन्तु महेशचन्द्र ने समझा कि यह सारा ढङ्ग अपने छुटकारे के लिये उसने रचा है। वह अदालत में रुक नहीं सका, शीघ्रता पूर्वक वहाँ से बाहर निकल भागा।

"यह तो जिन्दा है! अवश्य बदला लेगा। इसे तुरन्त ही मरवा डालना अति आवश्यक है।"

उपरोक्त विचार का उसके मन में प्रादुर्भाव हुआ। पुत्र के सुधार और राजा के बचाव की व्यवस्था हेतु आये हुए महेशचन्द्र को सब कार्य छोड़कर अपने जीवन रक्षा की आवश्यकता दीखी। मधुसूदन भूतकाल के विषय में एक भी शब्द बोले, इसके पहले ही उसके बोलने की शक्ति नष्ट कर देना चाहिये।

उसने मधुसूदन के पग पग की खबर रक्खी और अपने पुराने सहायक रूपाजी का भी सक्रिय योग लिया। रूपाजी के पास अच्छी से अच्छी केवल एक युक्ति थी, किसी का खून करना। यह उसके लिये साग सँवारने जैसा सरल कार्य था। यदि मधुसूदन जीवित हो तो रूपाजी के लिये पहले और

फिर महेशचन्द्र के लिये खतरनाक हो जायेगा। इसलिये रूपाजी ने जो तुरन्त योजना शीघ्रतापूर्वक कार्यान्वित की थी उसे विस्तारपूर्वक कह सुनायी और उसमें जो असफलता मिली उसका भी उसने थोड़े में बयान कर दिया और अपने हाथ टूटने की कहानी भी कह सुनाया।

महेशचन्द्र कुछ देर तक मौन रहे। शीघ्रतापूर्वक विचार तथा योजनायें उनके हृदय में व्यवस्थित रूप धारण करने लगीं। रूपाजी भी चुपचाप बैठा था। कोई महत्वपूर्ण योजना गढ़ गयी हो ऐसा मुख का भाव बना उन्होंने रूपाजी से पूछा :—

"निरञ्जन वहाँ निश्चित रूप से था ?"

"जी हाँ।"

"उसे बुलाओ।"

"वे क्या करेंगे ? मैं तो वहाँ अब नहीं जाऊँगा। वे सब मार डालेंगे।"

"तुम देखो तो जरा। मैं तुम्हें नहीं भेज रहा हूँ।" इतना कह उन्होंने एक सोये हुए नौकर को जगाया और कहा—

"अभी शशिरेखा के घर जाकर वहाँ से निरञ्जन बाबू को अपने साथ लिवा लाओ।"

आँखें मलता हुआ नौकर मालिक को मन ही मन अनेकों गालियाँ देता हुआ वहाँ से बाहर निकला। महेशचन्द्र के मुख से ग्लानि के चिन्ह बहुत दूर चले गये हों ऐसा लगने लगा।

———

३२

परिचय

रूपाजी का उपद्रव शान्त होने के पश्चात् निरञ्जन को कोई कार्य नहीं था, वह वृन्दा के साथ गप्प मारने बैठा। वृन्दा बात करने बैठ जाय तो उसकी बात पूरी हो जाय ऐसा न था। एक दूसरे की हँसी उड़ा थोड़ा थोड़ा हँसने भी लगे। वृन्दा को चिढ़ाने के लिये निरञ्जन ने कहा :—

"हृदयनाथ का विवाह यदि मिस कोलिन्स के साथ हो जाय तो सभी दुनियाँ व्यायाम करने वाली बन जाय।"

"ऐसा विवाह हो सकता है? एक भारतीय और दूसरी अमेरिकन? हो ही नहीं सकता!"

"क्यों नहीं हो सकता? देखो सेन्ट निहाल सिंह, सर ...."

"इसमें कौन गुजराती है?"

"ऐसा कह तुम गुजरातियों का अपमान कर रही हो, तुम्हारे ऐसा कहने के कारण मैं हृदयनाथ के लिये कोई हबशिन अथवा पेटागोनियन लाऊँगा।"

"बहुत अच्छा। तुम्हे केवल बातों के सिवाय और आता ही क्या है?"

"बात से आगे बढ़ने की मुझे आवश्यकता होती ही नहीं। परिश्रम के लिये हृदयनाथ है। मुझे तो केवल ध्यान रखना है। देखा नहीं मेरे आने के साथ ही रूपाजी का छूरा कैसा जमीन पर गिर गया? यदि मैं न आया होता तो ऐसा कभी नहीं हो सकता था!" निरञ्जन ने खूब गम्भीर मुँह बनाकर कहा।

"तुम्हारा सिर! कुछ करा धरा तो होता नहीं! बाप ने भी घर से निकाल दिया।"

"वे घर से निकालते हैं, इसका एक खास कारण है। अपनी माँ को भी मैं भूल जाऊँ ऐसा हूँ। बाप निकाल न दे तो माँ की याद किसे आये ?" निरञ्जन को माता का सुख भी न मिला था। उसके बाल्यावस्था में ही उनका देहान्त हो चुका था। वृन्दा को लगा वह हँसते हँसते आँसुओं के निकट घसीट जायेगी। शान्त दीखते निरञ्जन की बात हृदय में चोट करें ऐसी थीं। वृन्दा को अपने पिता का स्मरण हो आया। उसने वार्ता समाप्त कर दी और निरञ्जन को भी सो रहने की सलाह देकर चली गयी।

निरञ्जन की आँखें रमा को ढूँढ़ने लगीं। इच्छानुकूल बहाना बना वह समूचे मकान में फेरा लगा आया। शशिरेखा और हृदयनाथ साहब के पास से हटते न थे। वृन्दा घड़ी बात करती, घड़ी काम करती और घड़ी में पढ़ने बैठ जाती किन्तु उसके मन में भी शान्ति न थी। हृदयनाथ को अधिक जागना पड़ेगा, इसकी न जाने क्यों उसे चिन्ता हो गयी थी।

मात्र रमा कोठरी के कोने में एक किवाड़ी के बगल में अंधकार में बैठी हुई थी। आवश्यकता बिना वह अधिक उठती न थी। उस दिन रात अधिक चली जाने पर भी वह सोयी नहीं। वृन्दा किसी काम के लिये मकान के दूसरे हिस्से में गयी। रमा की खोज में निकले निरञ्जन ने वह अकेली है यह अनुमान कर लिया। एकान्त ढूँढ़नेवाले को एकान्त मिल ही जाता है ....। इच्छानुकूल एकान्त भी यदि उसे प्राप्त हो जाय तो भी वह अपने हिस्से में कम पाने का असन्तोष ही व्यक्त करता है। निरञ्जन रमा के पास आ कर खड़ा हो गया। रमा को पहले से धारणा थी कि निरञ्जन उसे चाहे जो भी उपाय कर ढूँढ़ निकालेगा। रमा को कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। परन्तु उसने खिड़की की ओर देखा और निरञ्जन के आगमन को जानबूझ कर अनजान प्रगट किया।

"रमा !" कभी भी नम्रता पूर्वक न बोलने वाले निरञ्जन के स्वर में अजीब मार्दवता उमड़ आयी थी।

रमा बोली नहीं। केवल निरञ्जन की ओर उसने दृष्टि उठायी।

"मैं एक बात कहने आया हूँ।" निरञ्जन ने रमा को चुप देखकर कहा।

"कहिये।" रमाने एक शब्द का उच्चारण किया।

"तुम्हें बुरा तो नहीं लगेगा ?" निरञ्जन ने प्रश्न किया। अपनी बात से दूसरे को बुरा लगेगा इसकी कभी भी चिन्ता न करने वाला निरञ्जन इस प्रकार से रमा की इच्छा जानने को आतुर हो उठा।

"मुझे भली बुरी लगने की किसी को चिन्ता नहीं, फिर आपको क्यों चिन्ता होनी चाहिए ?" रमा ने स्पष्ट कहा।

"यही बात मैं कहना चाहता हूँ। तुम्हें बुरा लगेगा इसकी चिन्ता दूसरे किसी को न हो किन्तु मुझे तो है ही।"

"कारण ?"

"सच कहूँ ? मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।" निरंजन ने कुछ रुक रुक कर कहा।

"परन्तु आप मुझे क्यों प्यार करते हैं ?" 'मुझे' शब्द पर भार देकर रमा ने पूछा। उसकी वाणी में व्यथा का भान हो रहा था।

"उसे मैं कह नहीं सकता। तुम्हें .... तुम्हें ही.........चाहता हूँ इतना ही मैं जानता हूँ।" रमा पृथ्वी की ओर देखने लगी। उसे लगा यदि वह कुछ बोलने की चेष्टा करेगी तो रो पड़ेगी। न बोलकर उसने मन के भावों को दबाया।

कुछ क्षणों के पश्चात् निरंजन ने पूछा:—

"मुझे कुछ उत्तर क्यों नहीं दिया ?"

"क्या उत्तर दूँ ? मैं तो विधवा हूँ।"

"इससे क्या ?"

"विधवा को कोई नहीं चाहता।"

"यह दूसरे भले मानें। मैं उन लोगों से भिन्न हूँ।"

"ओह ! तुम मुझसे प्रेम करते हो यह मैं जानती हूँ । परन्तु तुम भूल जाओ । इसमें कुछ तथ्य नहीं है ।"

प्रारम्भ में हुआ निरञ्जन का संकोच हट गया उसने पूछा—

"रमा ! मेरी भलाई किसमें है इसे मैं जानँगा कि दूसरा कोई ?"

"तुम नहीं जान सकते । समाज से विरोध करने में लाभ क्या है ? एक विधवा को पाकर तुम अपने बाप को खो दोगे, सगे सम्बन्धियों से अलग होगे, और अपनी प्रतिष्ठा खोकर अपना समूचा भविष्य गर्त में डाल दोगे यदि ऐसा मैं होने दूँ तो मेरे जैसा स्वार्थी दुनिया में और कौन होगा ? मैं तुम्हें यह........ ..." रमा एक दम रुक गई ।

"रमा ! तुम्हें पाने पर मैं यह सब सहन कर सकता हूँ ।"

"तुम्हारे और तुम्हारे पिता के बीच वैमनस्य का दोष मैं बटोरना नहीं चाहती ।"

कोठरी में कोई आ रहा हो ऐसा आभास हुआ । रमा ने खिड़की से देख लिया । चिढ़कर निरञ्जन ने पीछे की ओर देखा और कोठरी के बाहर निकलने के लिये कदम बढ़ाने का उपक्रम किया । वृन्दा अन्दर आ रही थी ।

"आपको कोई बुला रहा है ।" वृन्दा ने कहा ।

"कौन ? यहाँ कौन ? हृदयनाथ ?" हँसी करने के विचार से निरञ्जन ने कहा ।

"नहीं साहब, कोई और दूसरा ही ! समझे ?" वृन्दा ने खीझ कर कहा ।

"अरे ठीक से कहो तो ? मुझे इस आधी रात के समय कौन बुला रहा है ?"

"बाहर चबूतरे पर जाकर पूछिये तब जान जायेंगे । आपके पिताजी का भेजा कोई आदमी है । बुलाने आया है !" वृन्दा ने उत्तर दिया ।

"मुझे इस समय कहीं भी जाना नहीं है। चाहे कोई बुलाये।"

"सो आप जाकर उससे कह आइये।"

अनिच्छापूर्वक निरञ्जन चबूतरे पर गया। पिता ने तुरन्त नौकर के साथ ही उसे बुलाया था। निरञ्जन ने पूछाः—

"परन्तु इस आधी रात के समय ऐसा जरूरी क्या काम है?"

"छोटे बाबू! यह तो मुझे नहीं मालूम?"

"बाबूजी की तबीयत तो अच्छी है न?"

"इसे मैं कैसे जानूँ? मुझसे कुछ कहा नहीं है।"

"निरञ्जन ने अन्दाज लगाया कि इस समय पिताजी की तबीयत ठीक न होगी इसी कारण उसे बुलवाया है। अस्वस्थता के सिवाय और किसी भी दूसरे प्रसङ्गवश उनके पास जाने की निरञ्जन की इच्छा होती ही न थी। उसने जाने का निश्चय किया।

"खड़े रहो। मैं आ रहा हूँ।" कह निरञ्जन दरवाजे के अन्दर घुसा तो उसके पीछे ही वृन्दा खड़ी थी।

"क्यों? मैं कह रही थी न? अब जाना पड़ा न?"

"मैं अभी लौट कर आता हूँ। याद रखना। तुम्हारे ऊपर भी चौबीस घण्टे का पहरा बैठा दूँगा।"

"हँ........हँ........।" कह वृन्दा ने सर उचकाया।

"हृदयनाथ पूछे तो कह देना मैं चला गया।"

"मैं आपकी नौकरानी नहीं हूँ।"

"नहीं वह तुम नहीं हो। परन्तु हृदयनाथ तो मेरा नौकर है।" हँसते हुए निरञ्जन ने कहा।

"बातें बहुत करने आती है। लो...........।" वृन्दा ने हाथ का अँगूठा दिखलाया।

निरञ्जन वहाँ से चल पड़ा। रास्ते में उसके मन में अनेकों विचार उत्पन्न हुए। किस कारणवश पिता ने बुलवाया है? रमा का सम्बन्ध छोड़ने को कहें तब? तब क्या, एक नहीं अनेकों बार दिया हुआ उत्तर और अधिक स्पष्टता से दिया जा सकता है। न जाने क्यों वह रमा को इतना अधिक प्रेम करता है? स्त्रियों के मन को हरना, यह तो उसके दिलचस्पी की बात थी। वह युवतियों में अत्यधिक आदर पाता था। उसकी बात, उसकी छटा, उसके हँसने का ढंग, उसके चिढ़ाने की कला, बुरा लगने पर भी सुनने की उत्कट इच्छा हो ऐसी गप्प मारने की योग्यता और दलीलों की बेहूदी विचित्रता निरञ्जन को मोहक बनाती। इस कारण स्त्रियों के प्रति उसे कोई मोह न था। परन्तु रमा की बात आते ही उसका गाम्भीर्य्य बढ़ जाता था।

रमा से कहते उसे संकोच हो रहा था। यूरोपियनों के समान हिन्दुओं में अविवाहित स्त्री पुरुष को परस्पर प्रेम प्रगट करने की छूट नहीं होती। सह शिक्षा ने कितना ही सुलभ कर दिया है, परन्तु मूर्ख बनने और मार खाने का भय पुरुषों में से जब तक नहीं मिटता तब तक उसका सम्पूर्ण उपयोग नहीं हो सकता। निरञ्जन का रमा के कुटुम्ब के साथ घनिष्ट परिचय था, उस परिचय में उसने वृद्धि भी की थी। परिचय बढ़ाने में रमा का आकर्षण कारण स्वरूप था यह पहले वह समझ न पाया था और जब उसकी समझ में आया उस समय दूसरे लोग इस आकर्षण के रहस्य को जान गये थे। रमा ने क्या कुछ कम कहा था? उसकी परिस्थितियों ने उसके गुण को कम कर दिया था। फिर निरञ्जन के साथ बोलने का जब कभी प्रसङ्ग आता उसमें उसने कभी अप्रसन्नता प्रगट नहीं की। निरञ्जन की बातें सुन वह भी दूसरों के समान ही हँसती। बहुधा शशिरेखा और वृन्दा की उपस्थिति में, उनकी हँसी में रमा की हँसी विलीन हो जाती। परन्तु निरञ्जन के अनुभवी पिता और रमा की दुःखी माता को दोनों के परस्पर आकर्षण का भास हो गया। निरञ्जन के पिता ने तो शशिरेखा के मन को निश्चय ही करा दिया था कि उसका आवारा नालायक लड़का कदाचित् रमा को लेकर भाग न जाय। दोनों के बड़ों ने दोनों को पृथक् करने का प्रयास किया।

ऐसे ही संयोगों में साहब वाली घटना निरञ्जन को रमा की निकटता का अवसर दे रही थी। निकटता का लाभ उठाने में भी तकदीर के जोर की आवश्यकता है। प्रेमियों का एक दुखड़ा निरन्तर रहता है। यदि वह आस्तिक हुआ तो ईश्वर को और नास्तिक हुआ तो प्रकृति को सदा कोसा ही करता है कि संसार अनावश्यक मनुष्यों से बसा हुआ है। आड़ स्वरूप माता पिता, निरुपयोगी दादा-दादी, बेकारी के दिन गुजारनेवाले स्नेही और मित्र, बेकार हुड़दंग मचाने वाले और चिल्लाने वाले बालक, भीड़ करने वाले नौकर और खिड़की तथा बरामदे से क्षण भर के लिए भी न हटने वाले पड़ोसी, इन सब लोगों की संसार में क्या आवश्यकता है? प्रेमियों के इन दहाड़ते हुए दुश्मनों के लिए प्रकृति अथवा ईश्वर यदि अकेले से कुछ नहीं कर सकता तो दोनों मिलकर कोई रास्ता क्यों नहीं खोज निकालते? संसार की आबादी घटाना हो तो प्रेमी युगलों को पुलिस में तथा न्याय आसनों पर परीक्षण रूप में आसीन करना चाहिए।

निरञ्जन को निकटता मिली, उसका उसने सहज ही उपयोग किया। इन उपयोगों में से वह नित्य उपयोग का कोई मार्ग पा सकता था। परन्तु वृन्दा नौकर और पिता ने मिल कर आशा पर पानी फेर दिया।

घर आते ही उसके पिता ने भावपूर्ण उसका स्वागत किया। निरञ्जन को यह अत्यधिक नवीन लगा। पिता के अस्वस्थ अथवा क्रोधित पाने की धारणा लेकर वह आया था। परन्तु महेशचन्द्र थोड़े भी अस्वस्थ अथवा क्रोधित नहीं दीख रहे थे।

"आओ निरञ्जन! तुम कहाँ थे?" पिता ने उसे अपने झूले के निकट कुर्सी पर बिठाया। वे पुराने ढंग की मर्यादा के कायल थे। बड़े बूढ़े जहाँ बैठे हों वहाँ युवकों और बालकों को खड़े रहना चाहिए, यही उनकी मर्यादा है। इन्हीं कायदों की सख्ती से निरञ्जन अधिकतर पिता से भागता फिरता था। व्यवहार में नवीनता पा निरञ्जन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा:—

"मोटर दुर्घटना में साहब के घायल होने के कारण हम सब शशिरेखा के यहाँ उतर पड़े।"

"मैं जानता हूँ। यह घटना भी बहुत अनुकूल होगी, क्यों? खैर। तुम्हारी जो इच्छा आये करो। मेरी ओर से कोई बाधा नहीं है यही कहने के लिये तुम्हें बुलाया था। रमा के साथ तुम्हारा विवाह होता हो तो मैं कोई बाधा न डालूँगा।"

निरञ्जन के मुख पर नया भाव उत्पन्न हो आया। पुराने विचारों का ऐसा पक्षपाती धर्म परायण पिता विधवा-विवाह का समर्थन कर रहा है? सूर्योदय की दिशा परिवर्तित हो गयी क्या?

ऐसा ही हुआ था। रूपाजी के साथ वार्ता करते हुए अत्यधिक चिन्ता में आ पड़े महेशचन्द्र के हृदय में एकदम प्रकाश फैल गया।

निरञ्जन को मधुसूदन की कन्या के साथ विवाहित कर दिया जाय तो सभी मुश्किलें दूर हो जायँ। मधुसूदन बिछौने से उठे उसके पहले ही यह प्रसङ्ग हो जाना चाहिए।

ऐसे विचार के आने के साथ ही उसने निरञ्जन को बुला भेजा। ऐसे सम्बन्ध राज्य विपत्तियाँ टाल देते हैं तो क्या सामाजिक आपत्ति नहीं टाल सकेंगे? निरंजन के दामाद बन जाने पर फिर मधुसूदन द्वारा समधी से वैर नहीं चुकाया जा सकेगा।

निरञ्जन प्रफुल्लित हो उठा। एक बड़ी कठिन बात सरल हो गयी थी। उसके मुख के ऊपर की प्रसन्नता का महेशचन्द्र को ज्ञान हो गया। वह बोला:—

"जाओ अब सो रहो। मुझे और कुछ नहीं कहना है। यदि तुम्हारा विवाह कल हो सकता हो तो उसे करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं स्वयं शशिरेखा के पास जाकर तुम्हारे लिये सब कुछ कह आऊँगा। फिर क्या? तुम्हें अब अधिक अपने से पृथक रखने की मेरी इच्छा नहीं है।"

निरञ्जन अपने कमरे में जाकर सो रहा। उसे गहरी नींद आयी। दूसरे दिन वह देर से उठा। कभी जल्दी कभी देर सदा अनिश्चित उठने और सोने वाले निरञ्जन को आज शरीर हलका लगा। उसका मन भी चपल बन गया। तत्काल ही वह शशिरेखा के यहाँ पहुँच गया।

पिता द्वारा रमा के साथ विवाह करने का अनुमोदन मिलने की सूचना वह स्वयं रमा को सुनाने के लिये व्याकुल हो रहा था।

३२

वह मुख

शशिरेखा के छोटे से घर में निरंजन ने बड़ा जमघट देखा। हृदयनाथ तो था ही, उसके सिवाय मन्मथ, अखाड़े के दूसरे प्रमुख तथा विद्यार्थी, राज-परिवार के दो चार प्रसिद्ध लोग, मनमोहन राय और तीन डाक्टर वहाँ बैठे थे। शशिरेखा पलङ्ग के निकट ही बैठी थीं। वृन्दा और रमा भी सकुचाती हुई अपनी माँ के निकट बैठी थीं। नवीनता तो यह थी कि उसके पिता महेशचन्द्र भी वहाँ एक उच्च आसन पर विराजमान थे।

निरंजन जब आया उस समय कमरे में निस्तब्धता फैली हुई थी। बहुत ही शान्तिपूर्वक अखाड़े के विद्यार्थियों ने निरञ्जन के लिये स्थान कर दिया। निरञ्जन का स्थान अखाड़े के उपनेता के रूप में हृदयनाथ के साथ ही निश्चित था। वह भी वहीं जाकर बैठ गया।

"साहब कैसे हैं?" निरञ्जन ने हृदयनाथ से बहुत धीमे से पूछा।

"अच्छे हैं। परन्तु प्रश्न दूसरा ही उठ खड़ा हुआ है।" हृदयनाथ ने कहा।

"क्या?"

"अभी बतलाता हूँ। पहले जो डाक्टर साहब कह रहे हैं उसे सुनो।" तीनों डाक्टर बहुत ही धीरे धीरे आपस में बातें कर रहे थे। उनके गम्भीर मुखाकृति से प्रगट हो रहा था कि वे बहुत ही गम्भीर विषय पर विचार कर रहे हैं। उसमें से जो सबसे बड़ा डाक्टर मालूम होता था बोलाः—

"ऐसा रोगी हम लोगों में से किसी के पास अभी तक नहीं आया परन्तु रोगों के बारे में जो पढ़ने में आया है उसके आधार पर ऐसा नहीं हो सकता

यह नहीं कहा जा सकता। असह्य शारीरिक अथवा मानसिक आघात से मनुष्य-चेतना के ऊपर एक परदा पड़ जाता है। ऐसा मनुष्य भाषा नहीं भूलता, संस्कार नहीं भूलता, परन्तु पूर्व इतिहास भूल जाता है, और ज्ञान उत्पन्न होते ही एक नवीन जीवन प्रारम्भ करता है। इस नवीन जीवन में पुनः कोई शारीरिक अथवा मानसिक आघात लग जाय तो पूर्व वाला वह पर्दा फट जाता है और नवीन जीवन के ऊपर पर्दा पड़ जाता है। इस कारण उसे पुनः पूर्व जीवन की पूर्ण स्मृति हो आती है। यहाँ भी वैसा ही हुआ मालूम देता है।"

"शिकार की घटना के पश्चात् ही मधुसूदन इस बात को भूल गया, यहाँ तक की उसे अपना नाम तक स्मरण न रहा। उसका कचहरी में दिया हुआ बयान झूठ न था। अब मोटर दुर्घटना पश्चात् वह शशिरेखा को पहचान सका। परन्तु हृदयनाथ और मन्मथ जैसे उसके साथ रहने वाले व्यक्तियों को भी वह पहचान नहीं सका। उसकी स्मृति के दो भाग हो गये। प्रथम की स्मृति का टुकड़ा पीछे छुट गया।" दूसरे डाक्टर ने कहा।

"सचमुच बड़ी मुश्किल है। स्मृति के दोनों टुकड़े जुटना चाहिए। नहीं तो उसके ध्यान में जो आयेगा उसी में लिप्त हो जायेगा और नाजुक मस्तिष्क पर असह्य भार पड़ जायेगा तो मस्तिष्क सदा के लिए स्थान छोड़ देगा। सबसे उचित तो यह मालूम होता है कि जहाँ से पहली स्मृति का सिलसिला भङ्ग होना प्रारम्भ हुआ है उसी स्थान से वह सिलसिला शुरू कर उसकी स्मृति की साँकल के कड़ी को क्रम क्रम कर जोड़ना चाहिए।" तीसरे डाक्टर ने कहा।

"इसलिए लौट कर मैं सुन्दरपुर जाऊँ क्या ?" शशिरेखा ने पूछा।

"जी हाँ ! इसके सिवा दूसरा रास्ता नहीं है।" डाक्टर ने उत्तर दिया।

"वहाँ जाने में कठिनाई क्या है ? महाराजा साहब ने स्वयं मुझे लिखा है कि आप सब लोगों को मैं कुछ दिनों के लिए वहाँ लिवा लाऊँ।" महेशचन्द्र

ने मुश्किल को आसान बनाते हुए कहा। वह इच्छानुसार शीघ्रता पूर्वक किसी का भी अन्तरङ्ग मित्र बन सकता था।

डाक्टरों ने सम्मति दी कि जितनी जल्दी वे लोग ले जा सकें उतना ही अच्छा होगा। उन्हें शारीरिक कष्ट अधिक नहीं है इसलिए कभी भी वे पूर्ण ज्ञान में आ जायेंगे ऐसा है। यदि पूर्व स्मरण स्थल के सिवाय दूसरा ज्ञान पूर्ण रूप में हो आयेगा तो मष्तिष्क का सन्तुलन सुरक्षित रखना कठिन हो जायेगा। उपरोक्त कारण पर डाक्टर साहब ने अधिक जोर दिया।

महेशचन्द ने कहाः—

"मैंने महाराजा साहब को आज सुबह तार दिया है। उत्तर आ ही जाता है। अधिक सम्भावना है कि वे स्वयं ही आयें। परन्तु मैं दूसरा तार भेजे देता हूँ कि मधुसूदन बाबू को लेकर हम लोग सुन्दरपुर आ रहे हैं।

डाक्टरों ने शीघ्रता पूर्वक वैसा ही करने की सलाह दी। पहलेवाला निवास-स्थान सुलभ हो तो उसमें ही मधुसूदन बाबू को रखने का आग्रह किया।

"डाक्टर साहब, यदि आप भी साथ रहें तो?" हृदयनाथ ने पूछा।

तीनों डाक्टरों ने एक दूसरे की ओर देखा। एक डाक्टर के साथ रहने की आवश्यकता तो थी ही। इसलिये सहायक डाक्टर की ओर निर्देश करते हुए मुख्य डाक्टर ने कहा—

"एक का जाना ठीक होगा। आप चले जाँय?"

"मैं तो आप तीनों साहबों को चलने के लिये कह रहा हूँ।" हृदयनाथ ने कहा—"आपकी स्वीकृति मिल जाय तो साँयकाल की गाड़ी में डिब्बा रिजर्व करालूँ।"

"अधिक की आवश्यकता नहीं है। एक काफी हैं। घबड़ाने का कारण नहीं है।" डाक्टर ने मधुसूदन को नींद की दवा दी थी। उसका असर देर तक बना रहे ऐसी थी। उस असर के हटने के पहले

सुन्दरपुर पहुँचा जा सके तो अच्छा होगा, इस कारण सायंकाल की गाड़ी पसन्द की गई। महेशचन्द्र ने महाराजा वीरसिंह जी को दूसरा तार भेजा। अनावश्यक आदमियों को वहाँ बैठने की मनाही की सलाह दे दोनों डाक्टर पुनः आने के लिये कह कर बिदा हुए, केवल एक डाक्टर वहाँ रह गये। सम्पूर्ण वातावरण वाह्य शान्ति के रहते हुए भी अशान्त लग रहा था। मनमोहन राय और महेशचन्द्र भी जाने को प्रस्तुत हुए। जाते जाते महेशचन्द्र ने पूछा:—

"महाराजा को अभी तक तो कुछ हुआ नहीं न ?"

"नहीं, जिनके खून का अपराध लगा हुआ था वह तो जीता जागता मिल रहा है !" मनमोहन राय ने उत्तर दिया।

"खून की कोशिश तो समझी जायेगी न ? मधुसूदन बाबू बच गये यह तो संयोग था।" महेशचन्द्र अभी भी अपना चक्र चलाये ही जा रहे थे।

"परन्तु यह तो मधुसूदन बाबूके बयान पर निर्भर है ! यदि वे इन्कार कर देंगे तो कुछ भी नहीं हो सकता।"

"इनके ऐसे मस्तिष्क पर इतना भरोसा किया जायेगा ?"

"तब दूसरा क्या उपाय है ?"

"खून करने वाला यदि स्वयं उपस्थित होकर वैसा बयान दे तो ?"

"रूपाजी ?" तेज विद्यार्थियों को बिना देखे भूगोल के शहर याद रहते हैं। उसी प्रकार अच्छे वकीलों को भी मुकदमें के उल्लेखनीय लोग याद रहते हैं। "क्या वह मिल गया ?"

"जी, और उस समय वह उपस्थित होकर यदि सब बातें प्रकट कर दे तो ?"

महेशचन्द्र कुछ बोले नहीं और दोनों व्यक्ति अपने गन्तव्य स्थानों को चले गये।

दूसरे कमरे में हृदयनाथ ने अखाड़े के सभी साथियों को बुलाया था।

जब तक साहब की तबियत अच्छी नहीं हो जाती और जब तक उन्हें भील मण्डल की प्रवृत्ति का पुनः भान न हो जाय तब तक इस मण्डल की व्यवस्था किस प्रकार की जाय यही विचार चल रहा था। अखाड़ा और मण्डल क्रम क्रम से एक होते हुये कितने समय से दिखाई पड़ रहे थे। अखाड़े के विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष कार्य की शिक्षा ग्रहण करने का वह उपयोगी क्षेत्र बन गया था। साहब के नाम से परिचित व्यक्ति अचानक मधुसदन के नाम से प्रगट होनेवाले मण्डल के नेता के प्रति हृदयनाथ के साथ ही साथ अन्य सबका भी पूज्य भाव था। राजनीतिक कठिनाइयों में फँसे हुए व्यक्ति के प्रति अपने आप सहानुभूति उत्पन्न होती है, चाहे वह किसी भी जाति का कोई अपरिचित ही क्यों न हो।

मधुसूदन के प्रति पूज्यभाव तो सबको पहले से ही था। उस पर सरकार ने उन्हें पकड़ कर वैसे ही छोड़ दिया, इससे इतना अधिक महत्व हो गया कि पूरे भारत में उनकी और उनके संस्था की प्रख्याति हो गयी।

इस समय इस संस्था की व्यवस्था कौन करे यह प्रश्न उपस्थित हुआ। सबकी दृष्टि हृदयनाथ की ओर उठी। हृदयनाथ ने भी वैसी ही धारणा कर रक्खी थी। अखाड़ा व्यवस्थित और नियमित बन गया था। किसी भी संस्था को जीवित बनाना हो तो उसमें जीवन संचार करनेवाले को जीवनदान कर हट जाना चाहिए। प्रकृति भी यही करती है। व्यक्ति के अभाव में निर्जीव तथा भंग होती संस्था कोई सजीव वृक्ष नहीं है परन्तु व्यक्ति की शोभा वृद्धि करती चित्र मात्र है। बहुत समय से हृदयनाथ के मन में यह भाव उठा करता था कि अब अखाड़े का कार्य छोड़कर दूसरे प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य बनाये। इस प्रवृत्ति के प्रति अभी तक कोई निर्णय नहीं कर सका था। एकाएक भील मण्डल की व्यवस्था उसे स्वयं सम्भालनी पड़ी ऐसी परिस्थिति उपस्थित हुई। उसने साहब के मण्डल का भार ग्रहण करने में प्रसन्नता प्रगट की। परन्तु उसने कहा —

"अभी मन्मथ जाए। मैं साहब के साथ जा रहा हूँ आवश्यकतानुसार वहाँ रहूँगा। पश्चात् मैं मण्डल में आ जाऊँगा।"

यह योजना उचित थी। मन्मथ ने जाने का निश्चय किया। सभी लोग वहाँ से चले गए। हृदयनाथ लौट कर मधुसूदन की पलङ्ग के पास जा बैठा। निश्चय कर लिया कि साहब की तबीयत इस समय ठीक है और डाक्टरों के कथनानुसार उन्हें गहरी नींद आ गई है। अब उसे वहाँ से जाना अथवा बैठना इसकी असमन्जसता हृदयनाथ को हुई। आज प्रातःकाल तक हृदयनाथ ही अकेला साहब का सम्बन्धी था। सुबह होते ही उसका सम्बन्ध समाप्त हो गया और साहब अपने घर में अपने परिवार में पत्नी और पुत्रियों के बीच सो रहे थे। वह ही पराया था। उसे चले जाना चाहिए। वह निरञ्जन के आने की प्रतीक्षा कर रहा था, इतने में वृन्दा ने आकर कहाः—

"रसोई हो गई है।"

हृदयनाथ को बीती रात की याद आ गयी। संसार की रसोई स्त्रियों को ही करना चाहिए ऐसे पुराने प्रकार के असंस्कारी और क्रम क्रम स्त्रियों को तिरस्कृत करनेवाले विचार उसे आए। भोजन करने सरीखा अतिपार्थिव आचार स्त्री सरीखी अपार्थिव सौन्दर्य की मूर्ति के हाथों से पूर्ण जड़ता त्याग कर्म-काण्ड की कोई सजीव विधि बन जाता है ऐसा उसे लगा।

परन्तु स्त्री के हाथों की रसोई को घर घर फिरकर बारम्बार नहीं किया जा सकता। घर का बलवान रसोइयाँ उसकी प्रतीक्षा करता कलछुल पटकता होगा, यह उसे याद आया। उसने कहाः—

"इस समय तो मैं घर जाऊँगा। भैया से कल से मिला नहीं हूँ और शाम को मुझे आपलोगों के साथ ही चलना है।"

शशिरेखा को उसका कहना उचित लगा। उन्होंने अनावश्यक आग्रह नहीं किया। हृदयनाथ ने पूछाः—

"निरञ्जन कहाँ है ?"

"बाहर हैं। खिड़की के पास खड़े हैं।" वृन्दा ने बतलाया और वह उसी हिस्से में चली गयी।

हृदयनाथ कमरे से बाहर आया। खिड़की पर निरञ्जन न था। किन्तु वृन्दा सामने खड़ी दीखी। यथार्थ है अथवा भ्रम इसी का विचार कर आगे बढ़ते हुए हृदयनाथ से वृन्दा ने कहा:—

"मैं भी मण्डल में सम्मिलित होऊँगी।"

"अच्छा।"

"आश्रम में रहूँगी।"

"परन्तु वहाँ अभी तक कोई स्त्री......।

झिझकते हुए हृदयनाथ को बीच में ही टोक कर वृन्दा ने कहा—

"मेरे पिताजी ने आश्रम की स्थापना की है। उसे संचालित करने में मैं क्यों न सम्मलित होऊँ ?"

इतना कह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह शीघ्रतापूर्वक अन्दर चली गयी। कमरे में रङ्ग भरा इन्द्रधनुष अंकित हो मिट गया हो ऐसा हृदयनाथ को आभास हुआ। हृदयनाथ अपने पर इतना निर्बलता सूचक सौन्दर्य छाप पड़ने देने के लिए अपने ऊपर क्रोधित हो उठा।

"यदि इसे आश्रम में आना ही है तो मुझे नहीं जाना है।" मुँह चढ़ा उसने मन ही मन कहा।

"क्यों चलना है कि नहीं ?" एक ओर से निरञ्जन की आवाज सुनायी दी।

"मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ कब से। कहाँ चले गये थे ?" हृदयनाथ ने पूछा।

उत्तर देने की निरञ्जन ने जरूरत न समझी। भील मण्डल का जब नवीन भाग्य गढ़ा जा रहा था तब उस समय का लाभ उठा वह अपने भाग्य को गढ़ने हेतु रमा को खोज रहा था। वृन्दा दरवाजे के पीछे खड़ी खड़ी युवकों के विवेचन सुन रही थी, रमा अकेली ही थी। उसके निकट जाकर निरञ्जन ने कहाः—

"रमा!"

"आप क्यों बारम्बार मेरे पास आते हैं?"

'मैं कैसे न आऊँ? मुझे सुन्दर समाचार तुमसे कहना है।"

"सुन्दर समाचार सुनने के लिए मैं पैदा ही नहीं हुई हूँ।"

"ऐसा क्यों कह रही हो? मेरे पिताजी ने तुम्हारे साथ विवाह करने की अनुमति दे दी है।"

रमा ने अपनी दृष्टि ऊँची कर निरञ्जन की दृष्टि से मिला एकाकार बना लिया। अकथनीय उलझन में दोनों विचरण कर रहे थे।

'निरञ्जन बाबू, आप चले जाँय। मुझसे कभी मिलने की कोशिश भी न करें। मैं तो दुःखी हूँ ही। परन्तु आप क्यों दुःखी बनने का प्रयत्न कर रहे हैं?"

"मैं दुःखी होने के लिए पैदा नहीं हुआ हूँ। मेरे पिता सरीखे संकुचित विचारवाले मनुष्य ने भी स्वीकृति दे दी। अब बाकी ही क्या रहा?"

"परन्तु मैं इन्कार करूँगी ऐसा विचार आपने क्यों नहीं किया?"

निरञ्जन जीवन में पहली बार चौंका। उसकी चमक रमा ने भी देखा।

"क्या? तुम इन्कार करती हो?"

"जी हाँ।" कृतिम निष्ठुरता पूर्वक रमा ने कहा।

"कारण?"

"मेरी माँ की यह इच्छा नहीं है और उनकी इच्छा विरुद्ध मैं कोई काम कभी करूँगी नहीं।"

"उनके ऐसे अविवेकी कार्य के लिये तुम जन्म भर दुःखी ही रहोगी?"

"क्या करूँगी? उन्हें यह कार्य अच्छा मालूम ही नहीं देता। मैं पुनः विवाह करूँ यह उन्हें मेरी मृत्यु से अधिक दुःखित करे ऐसा है। इसलिए मैं ऐसा निश्चय किये बैठी हूँ। अपने सुख के लिए उनका दुख और अधिक क्यों बढ़ाऊँ?"

'रमा! परोपकार की भी सीमा है।"

"उसे कौन जाने? मैं तो अपने माँ का मन रखती हूँ। परोपकार नहीं करती।"

"फिर मैं क्या करूँ?"

"मेरा विचार करना छोड़ दो।"

"यह नहीं हो सकता। मैं कहाँ तक..............।"

"माँ स्वीकृति न दें तब तक।"

"रमा! निरञ्जन को चोट नहीं लगती, यदि चोट लगती है तो फिर घाव भरता नहीं समझा!"

"मैं क्या करूँ? घाव होने पर मैं पट्टी भी न बाँध सकूँ इतनी बेबश हूँ। निरञ्जन बाबू आप लौट जाइये।"

निरञ्जन को ठेस लगी हो इस प्रकार वह एक दम घूम पड़ा और वह से लौट पड़ा। बेबश? उसे विचार आया। मनुष्यको जड़ बन्धन के मुकाबले सूक्ष्मबन्धन अधिक नहीं है क्या? बेड़ी और रूढ़ि रूपी रिवाज, कैद की भावना इसमें कौन सा तत्त्व अधिक बन्धन कारक है? बेड़ी, रिवाज अथवा कैद ये अपवाद रूप बन्धन; रूढ़ि, रिवाज और भावना ये नित्य के बन्धन;

मानव कब इनसे छुटकारा पायेगा इसे कौन कह सकता है ?

बाहर आते ही उसने हृदयनाथ को बावला बना हुआ देखा। यह विचित्र मनुष्य-स्त्रियों के संसार में असहाय बन जाता है, इसका निरञ्जन को ज्ञान था। उसने कृत्रिम लापरवाही प्रदर्शित करते हुए अपने नित्य के ढंग अनुसार कहाः—

"क्यों चलना है कि नहीं ?"

"मैं तो तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ कब के कहाँ चले गये थे ?" हृदयनाथने पूछा।

उत्तर देने की निरञ्जन ने आवश्यकता न समझी। दोनों मित्र घर की ओर चले।

३४

रैन बसेरा

हृदयनाथ जब घर लौटा तब दोपहर हो चुकी थी। गर्मी सख्त पड़ रही थी। पहले वह अपने कमरे में गया। स्नान कर भोजन करने के लिए आ रहा हूँ ऐसा एक नौकर से उसने रसोईये को कहलाया। अपने कमरे के अन्दर से ही जाया जा सके ऐसा स्नान घर बना था। उसके समूचे बदन में गर्मी व्याप गयी थी। स्नान घर में जाकर ठंडे पानी का नल खोलकर वह उसके नीचे बैठ गया।

समीप ही अरविन्द का कमरा था। वाद्य का स्वर कमरे में से आते हुए हृदयनाथ ने सुना। सितार बज रहा था। हृदयनाथ को संगीत की बिलकुल परख नहीं थी। उसे अरविन्द की इस निर्बलता पर हँसी आई। जल से घटती हुई गरमी का आनन्द उठाने का प्रयत्न किया।

सितार का स्वर अधिक स्पष्ट हो गया।

"संगीत में क्या है ?" हृदयनाथ बड़बड़ाया। शरीर पर फैलते जाते पानी की ओर उसका ध्यान था।

"अभी ठंढक क्यों नहीं बढ़ रही है ?" हृदयनाथ के मन में विचार उत्पन्न हुआ। प्रातःकाल की घटना उसे बेचैन कर रही थी। शान्ति का इच्छुक निरर्थक आवाज सुने और भारी पन महसूस करे ऐसी ही अजीब ऊब हृदयनाथ को हुई।

पानी की ठंढक से होकर झनकार भरा स्वर उसे सुनाई पड़ने लगा।

परन्तु संगीत में लुब्ध होने के पश्चात् वह बन्द हो ही नहीं सकता। झनझन झनझन करती हुई गत अधिक और अधिक अटपटी; अधिक और

अधिक मोहक बनने लगी। स्वर लहरी का कोई सुनहला-रुपहला जाल उसके आस-पास बुना जा रहा था। उसे आभास भी नहीं हुआ कि वह स्वयं उस जाल में फँसता जा रहा है। वह तो केवल स्नान कर रहा था। कदाचित संगीत की तुच्छता पर विवेचन कर रहा था।

एकाएक उसके शरीर में जलन हुई। ठण्ढे जलका प्रवाह उसके शरीर पर ढलता जा रहा था, इस ठण्ढे जल में अग्नि की धारा बहती सी उसे लगी। समूचे स्नान घर को गुंजित करती स्वर लहरी, मानों अग्नि की लपटों को प्रज्वलित कर रही हो, ऐसा उसे लगा। जान सुन कर संगीत विमुख रहने वाले इस तपस्वी के संगीत संस्कार जाग्रत हो उठे। उसकी दृष्टि में रेत का रेगिस्तान प्रत्यक्ष हुआ, जल और हरियाली विहीन भूमि; न सहन होने वाली थकावट से थकित हो उतरनेवाले सारसों के जोड़ों की चीख उसने सुनी; मृग-जल के पीछे निराशा भरी छलाँगे भरती हरिणों की जोड़ी याद हो आयी, उसका उष्ण शरीर भी किसी तृष्णा को शान्त करने के लिये छलाँगे भर रहा था।

मध्याह्न काल में सारंग का स्वर संसार में छाता जा रहा था। गाँधार और धैवत को लाँघ, छलाँग भरती स्वर लहरियों में उष्णता थी, तृष्णा थी, विकलता थी। उसके अवरोह में अतृप्ति, निराशा और रुदन टपकता था।

"मैं जल रहा हूँ! मैं जल रहा हूँ!!" हृदयनाथ व्याकुल हो रहा था। संगीत का ऐसा प्रभाव शरीर तथा वातावरण के ऊपर होता है इसका पहला ही प्रत्यक्ष अनुभव उसे हुआ। उसने स्नान बन्द कर दिया। शीघ्रता से कपड़े पहने, अग्नि की लपटों से निकलकर भाग रहा हो इस प्रकार वह बाहर निकला और सीधा अरविन्द के पास गया। अरविन्द को अपने निकट का कुछ भान न था। वह तो राग के रुपहरी बादलों का घट्ट बनाये जा रहा था। व्याकुल हृदयनाथ सहज ही पुकार उठा—

"भैया!"

अरविन्द का मिज़राब एक दम अटक गया। स्वर अटका ध्वनि गूँज रही थी।

"क्यों रात में बहुत देर से आये ? मैं इन्तजार कर रहा था ?" अरविन्द ने कहा।

"रात में आप सारङ्ग बजा रहे थे या दीपक ?" हृदयनाथ ने पूछा। उम्र के साथ संगीत के प्रति विमुख होते जाते हृदयनाथ पर संगीत प्रिय कुटुम्ब का संस्कार बचपन में ही पड़ा था; यदि वह इच्छा करे तो राग पहचान करने जितना ज्ञान तो उसे बालक पन से ही था।

"सारङ्ग था। तुम्हें राग से मित्रता करने की इच्छा कब से उत्पन्न हुई ?"

"मैं इसी तरह पूछ रहा था। सारङ्ग दोपहर में गाया जाय तो व्याकुलता बढ़ायेगा अथवा शान्ति देगा ?"

अरविन्द को हँसी आयी। हृदयनाथ संगीत में इतना रस ले यह उसे आश्चर्य लगा। उसने उत्तर दिया:—

"मिस कोलिन्स ने तुम्हें संगीत का ज्ञाता बना दिया क्या ? व्यायाम में संगीत की यथार्थतः तुम्हें जरूरत हुई ? यह राग तो ऐसा है कि प्रथम तो उष्णता प्रगट होती है, पश्चात् शान्ति देता है। क्यों ? जिन्हे अशान्ति नहीं उन्हें शान्ति का मूल्य क्या ?"

हृदयनाथ कुछ बोला नहीं वह विचार में पड़ गया किस प्रकार सङ्गीत उस पर विजय प्राप्त कर सकी ? कलायें उसे पराजित कर रहीं हैं क्या ? तपस्वियों को विचलित करने के लिये अनादि काल से चलती आती योजना, अप्सरा, और सङ्गीत का उसके ऊपर परीक्षण किया जा रहा है क्या ?

नौकर उसे बुलाने के लिये आया। उसे याद आया कि रसोइयाँ उसकी प्रतीक्षा में बैठा है। उसे वृन्दा की रसोई का स्मरण हुआ और वह समझने

लगा कि कितनी ही बातों में मार्दव की आवश्यकता भी पड़ती है। जाते जाते उसने कहा:—

"मैं आज साहब के साथ जाने वाला हूँ।"

"तुम्हारे साहब का तो कोई नया इतिहास प्रगट हुआ है न ?"

"जी हाँ।" कह वह वहाँ से चला गया। अरविन्द के मुख पर अनमयस्कता थी उसे शीघ्र ही विवाह कर डालना था। पुनः विवाह करने के लिये प्रस्तुत पुरुष मानो स्वयं अपराध करने के लिये प्रस्तुत हुआ हो ऐसी उसकी स्वयं की मान्यता हो जाती है। अपने प्रथम पत्नी को वह विस्मरण नहीं कर सकता, उसे दिया हुआ वचन भी वह नहीं भूल सकता। विवाह करने की निरन्तर सम्मति देने वाले मित्रों और संगी-साथियों की सलाह मान लेने पर भी ऐसा हुआ करता है। कुछ समझ में नहीं आता और न कुछ होता है, ऐसी अनुभवयुक्त बात कह वह हृदय में हुई व्यथा की अपेक्षा करता। इस विवाह में बहुमूल्य वस्त्र जेवर पहनने की योजना बनाती कुटुम्ब की स्त्रियाँ तो मुँह सामने ही—"क्यों ? इतना ही प्रेम था न! तुम तो इन्कार कर रहे थे न, मगर हम जानती थीं।" ऐसे ऐसे आक्षेप कर स्वार्थी और निष्ठुर पुरुष जाति के प्रति अपना स्पष्ट अभिप्राय प्रगट कर देती थीं।

बेचारा पुरुष मुँह छिपाने की इच्छा करता है। समूची दुनियाँ का अपराधी हो ऐसा वह मुँह चोर बन जाता है। कटाक्ष भरी स्मित से यदि कोई उसकी बात सुने तो उदास मुख पुनः विवाह करने के लिये अनकों बार उपस्थित किये गये कारणों को पुनः गिनाता है और वह दुबारा विवाह करता है। न्याय के लिये इतना तो कहना ही चाहिये कि उसने अपना पुनः विवाह किया है। कोई यह न जाने ऐसी अन्तःकरण में इच्छा रक्खे रहता है और प्रत्यक्ष क्षुद्र वृत्ति स्त्री वर्ग में इसे सुना देने की आतुरता रखता है कि जिन जिन समाजों ने छूट दी है उस समाज में पुनः विवाह कर लेने का लाभ उठा लेने में स्त्रियाँ भी नहीं चूकतीं। परन्तु उनका हुआ विवाह वह अकेले ही जाने, ऐसी व्यवस्था भाग्यवश बनती है। स्त्रियों को सुना देने के लिये आतुर बने

पुरुषों की वाणी क्या सफल हुई है ?

हृदयनाथ प्रथम विवाह के ही विरुद्ध था, फिर वह दूसरी बार विवाह को पसन्द कर ही नहीं सकता था। वह प्रसङ्ग उपस्थित होने पर उसमें योग नहीं देगा ऐसा अरविन्द को निश्चय था। इसलिये तो अधिक अनुकूल होगा ऐसी अरविन्द की धारणा हुई। गृहस्थाश्रम के इस जटिल प्रश्न को सुलझाते हुए व्यथित अरविन्द ने बहुत दिनों के बाद अपना सितार हाथ में लिया था। वे अपना हृदय उसमें उतार रहे थे, परन्तु वैसा करते हुए उन्होंने हृदय को किसी अजीब भावों से मथ डाला था।

प्रथम श्रेणी का पूरा डिब्बा साहब के लिये रिजर्व करने का हृदयनाथ ने निश्चय किया। वह स्वयं स्टेशन गया। पश्चात् शशिरेखा के यहाँ गया। इतने में महाराज वीरसिंह का भेजा हुआ तार आ गया। पहले तो वे स्वयं ही मधुसूदन को देखने के लिये उसी दिन आ रहे थे किन्तु मधुसूदन को सुन्दरपुर ले जाने का समाचार मिलने से महाराज स्वयं आधे रास्ते आयेंगे, दोनों गाड़ियों का जिस स्टेशन पर मेल होता है वहाँ वे आगतों की प्रतीक्षा करेंगे। यही समाचार आया था। घंटे घंटे पर मधुसूदन का समाचार तार द्वारा उन्होंने मंगाया था।

मधुसूदन के साथ शशिरेखा, वृन्दा और रमा तो जाने वाली थीं ही। महेशचन्द्र भी अपने पुराने सहयोगी की सम्हाल में साथ न रहें यह नहीं हो सकता था। हृदयनाथ और मन्मथ भी साथ जाने वाले थे। ऊपरी आनन्द का अभिनय करता हुआ निरञ्जन बहुत उद्विग्न हो रहा था। उसे भी सभी के साथ जाने में ठीक प्रतीत हुआ रमा को देखने का अवसर तो मिलता ही रहेगा। अन्तःकरण से यदि प्रेम हो तो कुछ कहने की जरूरत नहीं। इच्छित मुख को देखने की लालसा मनुष्य को अनेकों बार देशाटन कराती है यह सभी के अनुभव की बात है—जिसके लिए कोई स्पष्ट कारण बता आज्ञा नहीं माँगता। कोई माँग भी करे तो कोई देता नहीं। इसीलिए निरञ्जन भी साथ जाने को तैयार हुआ। उसके पिता भी साथ ही थे और सुन्दरपुर में वे रहते

ही थे इस कारण भी उसे जाने का पूर्ण अधिकार था।

हृदयनाथ बिना किसी विशेष कारण के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में नहीं बैठता था। रेलगाड़ी का थर्डक्लास का डिब्बा हिन्दुस्तानियों के अज्ञान, कुसंस्कार और पराधीनता का अचूक प्रतिनिधि है ऐसा वह मानता था और दलित भारतवासियों के साथ मुसाफिरी कर पराधीनता का प्रायश्चित समझ वह भोगता था।

मधुसूदन को आराम से गाड़ी में सुला उनकी पत्नी और कन्याओं को परिचर्य्या हेतु निकट बैठा अपनी आवश्यकता न होने के कारण उसने तीसरे दर्जे के डिब्बे में अपने लिए जगह खोज निकाली। निरञ्जन साथ ही था उससे हृदयनाथ ने कहा:—

"मैं तो थर्डक्लास में बैठूँगा। Democratic Class?"

"उसे मैं क्या नहीं जानता? तुम्हारी संगति में सुख प्राप्त होनेका नहीं है।"

"परन्तु तुम्हारे लिये सेकेन्ड क्लास का टिकट लिया है।"

"परवाह नहीं। तुमसे ऊब जाऊँगा तब वहाँ जा कर बैठ जाऊँगा।" इतना कह निरञ्जन भी हृदयनाथ और मन्मथ के साथ ही गाड़ी में घुस पड़ा। एक ग्रामीण सरीखे खिड़की के पास बैठे मनुष्य को घिसका कर उसकी जगह पर निरञ्जन आराम से बैठ गया। निरञ्जन के अनेकों कार्यों का प्रायश्चित हृदयनाथ को करना पड़ता था। बेचारा ग्रामीण उस बेन्च से उठ कर सामने वाले बेन्च पर एक कोने में सिकुड़कर बैठ गया।

उसे सिकुड़ने का कोई कारण न था। परन्तु उसका आत्म-गौरव रहित स्वभाव तुच्छ बना रहा था। उस बेन्च पर एक गृहस्थ और उसकी घूँघट वाली पत्नी लम्बा बिछौना बिछा अपने अधिकार से चौगुने स्थान पर अधिकार जमाये हुए बैठे थे। उतने स्थान पर उस गृहस्थ का अधिकार था। उसके मुख के भावों से ऐसा झलक रहा था कि समूचे डिब्बे पर वह अपना अधिकार चाहता हो। उसमें इन तीन नये यात्रियों ने प्रवेश किया जिस कारण वह और क्रोधित हो उठा।

निश्चय ही वह कुछ बोला नहीं। परन्तु उसका चेहरा सभी कुछ कह रहा था। घूँघटवाली स्त्री को साथ ले यात्रा करने वाले यात्रियों की ऐसी धारणा प्रतीत होती है कि समूचे संसार से लड़ने का अधिकार उन्हें प्राप्त है। प्रत्येक पुरुष घूँघट को भेद कर उसकी पत्नी का अपनी ही दृष्टि के लिये सुरक्षित रक्खा हुआ मुख देख रहा है इस ख्याल से उसकी आँखें और उसका मुख युद्ध युद्ध, पुकार रहे थे। 'रण में राजपूत छुपते नहीं" इस युक्ति अनुसार वह गृहस्थ वीरतत्व छिपा नहीं पा रहा था वह आँख चढ़ाता, बाँह चढ़ाता, छाती फुलाता और मूँछ पर ताव देता। तीनों मित्रों ने इस गृहस्थ का तीव्र संकल्प परखा। मन्मथ तीनों में छोटा था, हृदयनाथ तो स्त्री की ओर देख नहीं सकता था किन्तु निरञ्जन को कोई भी बाधा रोके ऐसा न था। व्यर्थ ही क्रोधित होते हुए गृहस्थ के क्रोध को स्पष्ट प्रगट करने की इच्छा उसे हुई। वह घूँघट वाली स्त्री की ओर देखने लगा। घूँघट में चमकी हुई आँख बहुत सरलतापूर्वक उसकी आँखों से मिल गई।

घूँघट के मालिक का क्रोध काबू में न रहा। उसके श्वासोच्छ्वास में दूसरे सुन सकें इतना वेग हो गया। अधिक से अधिक आवाज हो इस प्रकार खिड़की बन्द की और खोली, नीचे पड़े हुए जूतों को घसड़ घसड़ घसीट कर आवाज की। बिछौने के बगल में रखा हुआ एक मजबूत डण्डा बाहर निकाल कर इस प्रकार रक्खा कि सब लोग देख सकें और कबूतर के समान गर्दन फुला कर सीधा किया। वह किसी की परवाह न करता हुआ उठ खड़ा हुआ और ऊपर बर्थ पर रक्खे हुए गुलाबजामुन में से एक उठा उसने घूंघटवाली पत्नी के हाथ में दिया।

युद्धकाण्ड का प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ। घूंघटवाली स्त्री बगल की ओर मुड़ कर गुलाब जामुन खाने लगी।

निरंजन ने हृदयनाथ की ओर आँख मार कर कहा—

"तुम्हारे ही अनुरूप दीखता है।"

उसके समक्ष स्त्रियों की बात आ जाती थी तब कुछ सूझ न पड़ने के कारण निरर्थक क्रोध करता था, यह अपनी टेव हृदयनाथ को याद आयी और वह हँस पड़ा।

अभागा गुलाब जामुन चौबीसों घंटे खाया नहीं जा सकता। घूंघटवाली स्त्री ने गुलाब जामुन खा पुनः सामने मुँह कर लिया। निरंजन ने पुनः उसके साथ आँखे लड़ाईं और घूंघट में से जितनी मुखाकृति देखी जा सकती थी उतनी देखने लगा। अधिक मुखाकृति बिगाड़ते हुए उसके पति ने पत्नी को अपने स्थान पर बिठाया और आप उसकी जगह पर बैठ गया। परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन से "आँख लड़नेवाली" स्थिति में बहुत अधिक सुधार नहीं हुआ। मौन युद्ध को रसमय बनाने के लिये निरंजन ने उस व्यक्ति से पूछाः—

"कहाँ से आ रहे हैं ?"

"दूर से।" बात करने की इच्छा न थी।

"तब तो जाना भी दूर ही होगा ?"

"जी।" नाक चढ़ा कर उसने कहा।

"राजपूत हैं ?

"नहीं।"

"पुलिस में नौकरी करते हैं ?"

"नहीं ?"

उसका लड़ाका स्वभाव देखकर ही अन्तिम दो प्रश्न निरञ्जन ने किया था। कुछ क्षणों के बीत जाने के पश्चात् उसने झगड़ा बढ़ाने की चेष्टा की।

"आपकी पत्नी हैं ?" घूँघटवाली स्त्री को बिना निर्देश किये निरञ्जन ने पूछा। उस व्यक्ति से अब सहन नहीं हो सका। उसकी समझ में आया कि यह सीधा आक्रमण हो रहा है। वह भभक उठा—

"महाशय, आप अपना काम कीजिए।" इतना कह उसने अपनी क्रोधित लाल-लाल आँखें जितने लोग बैठे थे उन सभी लोगों की ओर फिराया। नवयुवक मन्मथ से अट्टहास किये बिना नहीं रहा गया। हृदयनाथ भी इस बिना कारण लड़ाई लेनेवाली चाल को रोक नहीं रहा था।

"गाड़ी में काम क्या है ? जो चार आदमी मिलें उन्हें देखना और बातें करना। क्यों चाचा ठीक है न ?" अगले स्टेशन से चढ़े हुए यात्रियों में से एक वृद्ध यात्री की निरञ्जन ने सहायता ली।

"हाँ भाई हाँ ! यह तो चिड़िया रैन बसेरा है।" वृद्धयात्री ने सामान्य सत्य कहा।

"तो...हाँ !......। वह अधेड़ यात्री एकाक्षरी उद्गार मुँह से थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् निकालकर क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ ऐसा प्रगट कर रहा था।

निरञ्जन पर जब उपद्रव करने का भूत चढ़ जाता था तब उसका व्यवहार अप्रिय हो जाता था। किसी के अभिप्राय की परवाह न करनेवाले निरञ्जन ने बहुत दिनों पश्चात अपने इस असंस्कारी व्यवहार का प्रयोग किया था। जीवन प्रभात के किसी क्षण अथवा आशा की अन्तिम घड़ी अनुभव करते हुए युवक का ही ऐसा व्यवहार माफ हो सकता है। उस यात्री के "तो" और "हाँ" वाले उद्गार को ताक पर रखते हुए निरञ्जन ने उससे ही अधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

"घूँघट परदेश में करना चाहिये क्या ?"

यात्री उच्चस्वर में गरज उठा—

"मिस्टर ! आप भले आदमी नहीं मालूम होते। अधिक बातें करेंगे तो ठीक नहीं होगा। दूसरे की पंचायत में आप क्यों पड़ते हैं ?"

अब हृदयनाथ भी हंसी नहीं रोक सका। निरञ्जन को बुरा मालूम हुआ।

अपने सामान्य प्रश्न का उत्तर न दे लड़ाई करने की धमकी देनेवाले व्यक्ति का अन्याय किस प्रकार सहन किया जाय। उसने कहाः—

"इसमें क्रोध करने की कौन सी बात है। यह तो बातें की जा रही हैं। दो घड़ी के लिये मिल जाने से परिचय बढ़ता है। बात करने से आप घिस थोड़े ही जायेंगे। क्यों चाचा! बोलते क्यों नहीं?"

बातचीत के बीच चाचा बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। रेलगाड़ी के ऊँघ देनेवाले प्रभाव से सभी परिचित हैं। ब्रोमाईड के साथ रेलगाड़ी को भी मेटीरिया-मेडिका में स्थान मिलना चाहिए। चाचा चौंक उठे और एक बहुत ही सनातन सत्य का उच्चारण कियाः—

"सत्य कह रहे हो भाई! चार दिन की जिन्दगी है इसमें लड़ना क्या?"

चाचा की उम्र पचहत्तर वर्ष से कम की न रही होगी। इसलिए जीवन के अन्तिम दिनों की फरियाद में अधिक कड़ुआस भरी थी।

एकाग्रता भङ्ग करने के लिए गाड़ी रुकी। इस स्टेशन पर महाराजा वीरसिंह सब लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराजा का नाम प्रातः स्मरणीय गिना जाता था। इनकी ख्याति एक राजा की अपेक्षा त्यागी महात्मा पुरुष के रूप में अधिक थी। वे अधिकाधिक सरल और न्याय परायण थे। राज्य महल के एक छोटे कमरे में उनका निवास था। थोड़ी सी भूमि में खेती करा उससे वे अपना कालक्षेप कर रहे थे। राज्य की आय से वे कुछ नहीं लेते थे। प्रजा के उस धन के वे केवल रक्षक मात्र हैं ऐसी उनकी मान्यता थी और उसे प्रजा के हित में ही वे व्यय करते थे। मधुसूदन के अदृश्य होने के बाद से उन्होंने अपना जीवन क्रम ही भिन्न प्रकार का बना लिया था। स्वयं अधिक कष्ट उठा, भगवान की अचानक दी हुई सत्ता और साधन को प्रजा के लिए ही उपयोग करने लगे। उससे किसान सम्पन्न हुए, व्यापारियों की पूँजी बढ़ी, गाँव सुन्दर और रमणीक बने, मुकदमेबाजी कम हो गई, ग्राम-व्यवस्था और राज्य तन्त्र में लोक-सम्मति और प्रजा-शासन प्रथा प्रारम्भ हुई। प्रजा राजा में अपनापन मालूम पड़ने लगा। इतना ही नहीं राजा के

प्रति प्रजा के प्रतिनिधि रूप में अत्यधिक पूज्यभाव उदित हुआ। परतन्त्र राजा प्रजा को स्वतन्त्रता के मार्ग की ओर ले जा सकता है, ऐसा उन्होंने सिद्ध कर दिया।

अपने ही कार्य में सुख माननेवाले महाराज वीरसिंह के हृदय में एक लगी हुई चोट का घाव भरे बिना रह गया था। मधुसूदन को वे भूल नहीं सके थे, जिस करुण संयोग में वह अदृश्य हो गये थे उसका पाप स्वयं उनके सिर पर है, यह वे एक क्षण के लिए भी नहीं भूल सके थे। उसी मित्र की अकल्पित भेंट आज होनेवाली थी। मृत्यु पाया हुआ मित्र जीवित होगा, इस कल्पना में निहित सुख के ध्यान से ही महाराज वीरसिंह आज प्रफुल्लित हो रहे थे। महाराज वीरसिंह अपने थोड़े से कर्मचारियों के साथ स्टेशन पर खड़े थे। उन्होंने धड़कते हृदय से डिब्बे में प्रवेश किया। सोये हुए मधुसूदन के निकट डाक्टर और शशिरेखा तथा थोड़ी दूरी पर रमा और वृन्दा बैठी हुई थीं। इन दोनों बच्चियों को महाराज वीरसिंह अनेकों बार बुलाते और उनकी शिक्षा की व्यवस्था करते थे। बाद में सुना गया कि मधुसूदन ने जीवन-बीमा कराया ही न था। बीमा के धन के रूप में शशिरेखा को मिला धन वीरसिंह ने ही भेजा था।

महाराज वीरसिंह अपने पुराने मित्र और आश्रय दाता को कुछ देर तक देखते रहे। उनकी आँखों में आँसू उमड़ आये। शशिरेखा की स्थिति भी करुणा जनक बन गयी। कुछ देर तक कोई कुछ बोला नहीं। फिर वीरसिंह ने डाक्टर से पूछा:—

"मेरा सैलून है। उसमें ले जाया जा सकता है?"

"उठाने में जाग जायेंगे। उचित होगा कि यहीं रहें।"

"बच्चियों को सैलून में बिठाओ। मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।" वीरसिंह ने व्यवस्था कराया। हृदयनाथ और मन्मथ भी आ उपस्थित हुए, निरञ्जन को महाराज पहचानते थे। शशिरेखा ने हृदयनाथ और मन्मथ का परिचय कराया।

"पिछले वर्षों में रक्षा करनेवाले ये दो व्यक्ति हैं।"

हृदयनाथ और वीरसिंह एक दूसरे के नाम से परिचित थे। डिब्बे में भीड़ होने लगी। इस प्रदेश के प्रख्यात पुण्य श्लोक महाराजा वीरसिंह अपने किसी बाल-सखा बीमार मित्र को बीमारी की हालत में लिवा ले जाने के लिए पधारे हैं, ऐसी खबर पाकर लोग महाराजा वीरसिंह और उनके भाग्यशाली मित्र के दर्शन के लिए आतुर बन गये। महाराजा के यश में एक चाँद और जुड़ा।

महेशचन्द्र निकट खड़े-खड़े निःश्वास छोड़ रहे थे और महाराजा वीरसिंह के साथ ही साथ वह भी आँखों में आँसू ला रहे थे। बहुत देर तक उनको किसी ने देखा नहीं इस कारण 'हे भगवान' ऐसा छोटा उद्‌गार निकाल आनन्द, शोक, आश्चर्य, आभार इत्यादि अनेकों दिल की कसक एक साथ ही प्रदर्शित की। भगवान बुलाने से बोलते नहीं। यदि बोल उठते होते तो उनका नाम लेना इतना सरल न बन गया होता।

गाड़ी चली तब मधुसूदन ने आँख खोली। उन्होंने वीरसिंह को देखा। कहने लगे:—

"वीरसिंह अब मुझे कब छोड़ोगे? तुम्हारी दीवानगिरी मुझे नहीं फली।" फिर उन्होंने आँखें मूँद लीं। पन्द्रह वर्ष से अधिक का भूतकाल इस समय उनके मन में रमण कर रहा था।

समय पर गाड़ी सुन्दरपुर पहुँची। सौभाग्यवश पुराना बंगला थोड़ा बहुत परिवर्तन के साथ उपलब्ध था। उसमें मधुसूदन को उतारा गया। शशिरेखा के साथ वीरसिंह भी रात दिन मधुसूदन के पास बैठे रहते। पुरानी बातें अब भूली जा चुकी थीं। उनकी चर्चा करनेवाले का ही अब अपमान होता, वीरसिंह के प्रति लोगों में इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी।

मधुसूदन स्वस्थ होने लगे। उनके मन पर कुप्रभाव न पड़े इस क्रम से

उन्हें अतीत का स्मरण कराया जा रहा था। सम्बन्ध और बनाव का अनुसन्धान भूला हुआ मस्तिष्क आंकड़ा पूर्ण करता भूले रास्ते को पहचानता जा रहा था। एक जन्म को दूसरे जन्म से अपरिचित बनाती हुई मृत्यु सरीखी अचेतनता एक ही जन्म में लौट आए यह सम्भव नहीं है। क्रम-क्रम मधुसूदन को सभी बातें समझ में आईं। मात्र एक बात उसे समझ में न आयी। रूपाजी ने किस कारणवश उसे धक्का मार कर शेर के साथ नीचे ढकेल दिया था?

रूपाजी के भाग जाने के पश्चात् लूटपाट करने के लिए निकली एक भील टोली जंगल में एक उत्तम पोशाकवाले मधुसूदन को मरा पड़ा देखा। उनके पास से कदाचित् कुछ मिल ही जाय, इस लालच में उनके जेब को उन लोगों ने ढूँढ़ा। थोड़ा कुछ मिला भी। इतने में एक अनुभवी भील ने बतलाया कि जख्मी का हृदय अभी धीरे धीरे धड़क रहा है। ऐसी हालत में खूँख़ार भील लोग भी किसी को नहीं मारते। जीवन की और आयु भोगने के लिए मधुसूदन को उन लोगों ने सम्हाल कर उठा लिया। अपने बचाव के लिए और जीवनदान के लिए भी उन्हें भारी रकम मिलेगी ऐसी आशा हुई।

मधुसूदन बच गया, सचेत हुआ परन्तु वह नई दुनियाँ में जागा। वह भूतकाल भूल कर ही जागा। भील लोगों को उनकी धारणा अनुसार पैसा नहीं मिला। किन्तु धन की तुलना में उससे भी अधिक मूल्यवान उनमें प्राण प्रतिष्ठा करनेवाला एक गुरू मिला। उन्होंने भीलों को आत्मगौरव का भान कराया। आत्मा में जागरण होता है तो जागरण करानेवाले को लोग पूजते हैं। मधुसूदन भी भीलों का पूजनीय नेता बन गया।

यह समूचा इतिहास वह भूल गया। उसके समक्ष जो योजना प्रस्तुत थी उसी में दत्त चित्त हो लग गया। मधुसूदन अपने जीवन को सलग्न रीति से अब देख सका।

३५

विधवा का प्रेम

हृदयनाथ और मन्मथ को लगा कि मधुसूदन के मस्तिष्क के सन्तुलन में उनकी अब आवश्यकता नहीं है। पूर्व जीवन के सहयोगियों के सिवाय दूसरे सभी का वहाँ से हट जाना अधिक श्रेयस्कर होगा। इस कारण शीघ्रता पूर्वक दोनों ने सुन्दरपुर छोड़ दिया। हृदयनाथ ने वापस लौटने की शशिरेखा से आज्ञा प्राप्त करली। नीचे वाले खण्ड में आने पर बगल से एक सिसकी भरती आवाज सुनायी पड़ी —

"जा रहे हैं?"

हृदयनाथ ने इस मिठास के स्त्रोत की ध्वनि सुन उधर दृष्टि घुमायी। वृन्दा उसके अति निकट खड़ी उससे प्रश्न कर रही थी। हृदयनाथ की आँखें वृन्दा की आँखों से मिल गईं। वृन्दा की आँखो में—आँख की पुतलियों में हृदयनाथ का प्रतिबिम्ब दीख रहा था। यह भौतिक सत्य है। सामने सामने दृष्टि मिलाने वालों की मूर्ति उभड़ आती है किन्तु इस सत्य का हृदयनाथ को प्रथम अनुभव हुआ। अपना ही पुनरावर्तन? हृदयनाथों की श्रेणी? सूर्य्य सकुंचित हो हथेली पर आ जाने से जैसे कोई चौंक उठे उसी प्रकार हृदयनाथ वृन्दा के आँखों की पुतलियों में अपना प्रतिबिम्ब देख चौंक उठा।

"जी हाँ।" इतना ही उत्तर देकर वह शीघ्रता पूर्वक बाहर चला आया। माधुर्य की किरणों सरीखी शब्दधार उसके पीछे से आकर उससे टकराई—

"फिर आइयेगा।"

इसका उत्तर देने के लिए वह रुका नहीं।

अपने हृदय के सूनेपन को ढ़ाँकता निरञ्जन हृदयनाथ को रेल गाड़ी में

बिठा देने लिए स्टेशन पर कृत्रिम बहाना बना कर आया था। हृदयनाथ ने उससे पूछाः—

"तुम कब तक लौटोगे ?"

"मैं अब लौटूँगा ही नहीं।" निरञ्जन ने उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"मैं यहीं रहूँगा।"

"तुम्हें यहाँ अच्छा लगेगा ?"

"यह अलग बात है। परन्तु अपनी चिता तो यहीं जलेगी।" हँसते हँसते निरञ्जन ने कहा। उसकी विचित्र भाषा में बहुधा कोई मतलब होता ही न था। हृदयनाथ उससे झूठी गप्प हाँकने वाले के रूपमें परिचित था।

"तुम्हे चिता भी जला सकेगी ? ऐसे दुष्ट हो। गाड़ी में उस बेचारे यात्री को व्यर्थ ही परेशान कर डाला ?" हृदयनाथ ने विनोद किया।

"तुम भूलते हो। चिता की अनेक जातियाँ हैं। मुझे कोई बाधा नहीं पड़ेगी।"

व्यर्थ की बातें समाप्त हुईं और गाड़ी आगे बढ़ी। निरञ्जन ने हृदयनाथ से हाथ मिलाया और खूब जोरों से दबाया। फिर वह हृदयनाथ की जाती हुई मूर्ति की ओर देखता रहा। हृदयनाथ को नवीनता लगी। उसे भय उत्पन्न हुआ। चलती गाड़ी से वह कुछ नहीं कह सका।

निरञ्जन ने घर जाकर पिता से भी खूब बातें की। पिता-पुत्र बीच बहुत साधारण प्रेम था। महेशचन्द्र अपने पुत्र से मान और मर्यादा को सम्हाले रखने का आग्रह करते थे, पुत्र को पिता में उतनी अधिक श्रेष्ठता दीखती न थी। निरञ्जन जितना मौजी था उतना ही हठी भी था, पिता अपने कर्तव्य की मर्यादानुसार ही पुत्र का पालन कर रहे थे। व्यर्थ का दिखावटी प्रेम उनके पास न था। इस कारण पिता-पुत्र का हृदय एक दूसरे के निकट आ ही न सका।

फिर भी आज दोनों ने खूब बातें कीं। पिता ने पुत्र के प्रति बहुत अधिक प्रेम प्रदर्शित किया और मधुसूदन का स्वास्थ्य सुधरते ही रमा के लिए पूर्ण प्रयत्न करेंगे यह भी बतलाता।

रात में वह शशिरेखा के घर गया। रमा और उसके आकर्षण से परिचित होने के कारण शशिरेखा को उसका आना रुचता न था। लड़कियों को विशेष कर रमा को निरञ्जन के संसर्ग से दूर रखने का सोचा करती थीं। ऐसे प्रयत्न करने की उन्हें आवश्यकता ही न पड़ती, कारण रमा स्वयं ही कितनों दिनों से निरञ्जन से नहीं मिली। मधुसूदन के घटना-चक्रके कारण निकटता बढ़ती ही जा रही थी पर अन्तिम बात करने के बाद फिर निरञ्जन से एक शब्द भी नहीं बोली।

शशिरेखा के घर जाकर निरंजन ने अपनी आदत अनुसार रमा के सिवाय सभी के साथ खूब गप्प मारी। दुनियाँ दुखी होती जा रही है। ऐसा अधिकांश लोगों की धारणा हो गयी है। सामान्यतः बातचीत में भी यही चर्चा अधिकतर होती है। मिस कोलिन्स, स्त्रियों की प्रगति, कला, इन सभी विषयों पर टीकायें होती। "खतम करो ऐसा ही सही।" शशिरेखा ने कहा।

"दुनियाँ का क्या होनेवाला है?"

"दुनिया का बुरा समय आ गया है, मैं सच्च कह रहा हूँ।" निरंजन ने व्यङ्ग किया। बातचीत का उसको शौक और उसे अधिक जानकारी भी थी कि इच्छानुसार जिस चाहे प्रसङ्ग पर और चाहे जिस पक्ष की ओर से वह तर्क कर सकता था। वृन्दा को उसकी बातचीत में मजा आता था। वह भी बातूनी थी, इस कारण निरंजन की बातें उसकी वृत्ति को अधिक ज्वलन्त बनाती।

"आप माँ के साथ क्यों बैठ जाया करते हैं? दुनियाँ का बुरा होनेवाला है ऐसा आप से किसने कहा?" वृन्दा ने बहस शुरू किया।

"तब तुमने पढ़ा क्या है? एक हजार वर्ष में मनुष्य समाप्त हो जायेंगे!"

"इस प्रकार की गप्प न मारा कीजिये!"

"कल ही मैंने पढ़ा है। इंग्लैण्ड के बड़े वैज्ञानिकों ने सूचना प्रकाशित की है कि एक हजार वर्ष में दुनियाँ का कोयला समाप्त हो जायगा। फिर ?"

"बिजली का उपयोग बढ़ेगा।"

"उससे क्या? दस हजार वर्षों में दुनिया इतनी ठण्डी पड़ जायेगी कि बिजली को उत्पन्न करना ही असम्भव हो जायेगा।"

"नौ हजार वर्ष तो जीयेगी न ?"

'भविष्य का पूर्ण रूपेण विचार करना चाहिये। मृत्यु पश्चात् क्या होता है इसका निश्चय करने के लिए भी विद्वान कितना प्रयत्न किया करते हैं और कराते रहते हैं? अभी तो मैंने इससे भी अधिक भयङ्कर भविष्य को कहा ही नहीं!"

"धूमकेतु के साथ पृथ्वी टकरा जायेगी ?"

"यह तो भाई बहन के खेल समान सरल है। इतने से तो एशिया खण्ड उजड़ जायेगा, अधिक नहीं। परन्तु दुनियाँ की इससे भी बुरी दशा है।"

"एशिया खण्ड के लिए तो बहुत आनन्दपूर्ण समाचार आपने सुनाया! क्या बैठे बैठे गप्पाष्टक का सर्जन किया करते हैं?"

"मैं पक्षपात नहीं करता। मेरी धारणा अनुसार सभी का भाग्य समान ही है। पृथ्वी की बात अलग रक्खो परन्तु सूर्य्य सहित समूचा सूर्य्यमण्डल दस लाख वर्ष बाद रहेगा नहीं। हरक्यूलिस नक्षत्र का, लाख सूर्य्य जैसा एक तारे में पड़ सब नष्ट हो जायेगा। फिर क्या करोगी ?"

वृन्दा हँसी, शशिरेखा को भी इस विचित्र वाद-विवाद से हँसी आयी।

"जैसे सब कुछ आपके कहने अनुसार ही होगा! ऐसी बातें आप कर रहे हैं!"

वृन्दा को दस लाख वर्ष के पश्चात् वाले भविष्य के प्रति कुछ अधिक घबड़ाहट नहीं हुई। परन्तु निरञ्जन के वार्तालाप का अन्तिम अक्षर

स्वयं ही प्रकट कर रहा है ऐसा उसमें आग्रह विद्यमान था। उसने कहा: -

"मेरे कहने अनुसार होता हो तो मैं इतनी प्रतीक्षा न करूँ। एकाध ही घंटे में सब खेल पूरा करदूँ ?"

रात अधिक हो रही थी। बातों में कुछ अर्थ न था। बातों में अर्थ होता ही नहीं, फिर भी वह मनुष्यों में बड़ी से बड़ी और गम्भीर से गम्भीर कार्य्य-क्रम बन जाती है। निरञ्जन उठकर घर जाने लगा। बहुत ही सरलता से आनन्द पूर्वक अपने साथ आती हुई वृन्दा से पूछा:—

"तुम्हारी बहन कहाँ हैं ?"

"अन्दर पढ़ती होंगी।"

"क्षण भर के लिए मुझसे नहीं मिल सकतीं ? मुझे बहुत जरूरी काम है !"

"क्यों नहीं ! मैं कह देती हूँ।" कह कर वृन्दा लौट पड़ी।

शशिरेखा भी सुन रही थी। वर्तमान युग के युवकों की हिम्मत की विवेचना वह करने लगी। कोमल स्वभाववाली इस माता से निरञ्जन का अपमान किया जा सके ऐसा न था। अब वृन्दा को भी निरञ्जन के साथ बात करने से मना कर देने का अस्पष्ट विचार वह गढ़ रही थी। इतने में वृन्दा अकेली वापस लौटी शशिरेखा ने उसे कहते हुए सुना: —

"बहिन तो इस समय मिलने से इन्कार कर रही हैं। वह कुछ लिख रही हैं, इसलिए फिर किसी समय मिल लेंगी, ऐसा उन्होंने कहा है। क्षमा करियेगा। बुरा न मानियेगा !"

"नहीं नहीं। इसमें क्षमा की क्या बात है।" इतना कह निरञ्जन नीचे चला गया।

बगीचे से हो कर मन्द चाल से लौटते हुये निरञ्जन के मन में कोई विचार उत्पन्न हुआ हो इस प्रकार वह रुका। जेब से उसने ऐक छोटा सा कागज

और फौन्टेनपेन निकाला, उसपर कुछ लिखा। कुछ दूर पर मन्द प्रकाश में एक नौकर टहलता हुआ दीखा उसे बुला कर उसने वह कागज दिया और कहा:—

"सबेरे नौ बजे यह चिट्ठी वृन्दा बहन को दे देना।"

'जी साहब।" दीवान के पुत्र को सभी पहचानते थे। नौकर ने उत्तर दिया।

"भूल न हो। किसे दोगे?"

"छोटी बिटिया रानी को।"

"हाँ, किसी दूसरे को न दे देना?"

इतना कह बंगले के बाहर की ओर बढ़ा। ऊपर खिड़की में हल्की सी परछाईं अभी हिलकर हटती सी उसे दिखी। अनेकों बार परछाइयाँ भी हृदय को बेध डालती हैं। निरञ्जन कभी निःश्वास नहीं छोड़ता था। उसने परछाँईं को देख निःश्वास नहीं छोड़ा। केवल उसके मुख पर प्रति क्षण खेलनेवाली स्मित हल्की पड़ गई।

बंगले के बाहर थोड़ी दूर पर एक सुन्दर छोटा सा तालाब था। निरञ्जन कवि न था, चित्रकार न था, प्रकृति-सौन्दर्य उसे पागल नहीं बना देता था। प्रत्येक प्रकार की उन्मत्तता के प्रति वह हँसनेवाला अलमस्त युवक था। अंधेरे का आलिङ्गन करता हुआ तालाब उसे आकर्षक लगा। जिन्दगी भी किसी अन्धकार के साथ पग-पग मिल जानेवाला छोटा तालाब सा नहीं है क्या?

अंधेरी रात में सन्नाटा छाया हुआ था। संसार को खिजानेवाले तारों का अस्तित्व शून्यता की वृद्धि कर रहे थे। अन्धकार में भी आँखें देखने का प्रयत्न करती हैं और देख भी सकती हैं। निरञ्जन मन्द गति से तालाब की सीढ़ियाँ उतरा और अन्तिम सीढ़ी पर जा कर बैठ गया। पैर से जूता निकाल डाला और पैरों को पानी में डाल दिया। जल ने पैरों को रास्ता दिया। जल अत्यन्त

शीतल, उदार और वत्सल है ऐसा निरंजन को लगा। उसके हंसते प्रफुल्लित स्वभाव के तह में तरङ्गित होता हुआ गाम्भीर्य आज उभर पड़ा।

"रमा ने एक क्षण के लिये मिलना भी अस्वीकार कर दिया?" विचारों का समुद्र लहराने लगा। चारो ओर उसने दृष्टि दौड़ाई। तालाब और अन्धकार का सम्बन्ध उसे भव्य लगा। पुनः उसके मुख की स्मित ताजी हो गयी।

"ऊब कर मरने में मजा है कि नहीं?" उसने अपने मन से तर्क किया।

"इस मजे का क्यों न स्वाद लिया जाय?" उसने इस विचार के पक्ष में तर्क किया। थोड़ा रुककर उसने कुछ निश्चय किया। जेब से रूमाल निकाला और दोनों पैरों को एक साथ मिला उसे कसकर बांध दिया। बांधते बांधते वह कुछ बड़बड़ाने लगा। दूसरा रूमाल निकाल दोनों हाथ बाँधा। अपने ही हाथों से अपने हाथ बाँधने में कठिनाई होती है। अतः विचित्र रीति से उँगलियों और दाँतों का उपयोग कर हाथों को रूमाल से बाँध ही डाला।

उसने पुनः चारो ओर देखा। उसे सहज ही विचार आया—

"आत्महत्या करनेवालों को लोग कायर कहते हैं। क्या मैं कायर हूँ?" दूसरे ही क्षण वह हँसा।

"कायर कहनेवालों को आत्महत्या का अनुभव क्या? इसके आवेग को वे क्या जानें?"

उसने पानी के अन्दर देखा। अन्दर कुछ न था। केवल तलों में तारों की परछाईं दृष्टिगोचर हो रही थी।

शरीर पानी की गहराई खोजेगा और मैं जीवन की गहराई खोजूँगा। मृत्यु पश्चात् शून्य है तो वह इस शून्य जीवन से खराब तो नहीं होगा। मृत्यु पश्चात् जीवन होगा तो मिलेगा, अवश्य ही नवजीवन मिलेगा हानि क्या है?

निरञ्जन खड़ा नहीं हुआ। उसने छलाँग नहीं मारी। अपने स्वभावानुसार आराम के साथ वह जल पर लेट गया। उसका हाथ पैर बंधा हुआ था। हाथ पैर जरा भी हिला नहीं। उसके मुख से श्वाँस भी नहीं निकली। वह लेट गया। भूचर प्राणी समान शान्ति स्वर से एक प्रश्न कर जल ने मृदुल अंक में उसे समेट लिया।

टप-टप-टप दौड़ती चप्पल की आवाज के साथ कोई सीढ़ियाँ उतर कर आया। वह पानी में उतरे इसके पूर्व ही जल ने एक बार ग्रहण किये हुए निरञ्जन को ऊपर तक उछाला। निरंजन पहले के ही समान स्थिर था। डूबकर किस प्रकार मरा जाता है इसका वह रसपूर्वक अनुभव कर रहा था। ज्योंही वह उतराया कि तुरन्त उस आगन्तुक ने हाथ बढ़ाया। हाथ में कपड़े का फैला हुआ एक छोर आ गया। समूचे सरोवर को खींच लाना हो ऐसी शक्ति लगा उस छोर को उसने खींचा।

नवीनता अनुभव करते हुए निरञ्जन को समझ न पड़ा। पुनः जल के अन्दर सीधे डूब जाने के बदले में वह बगल की ओर क्यों खींचता जा रहा है? कुछ समझ सके इसके पहले ही वह सीढ़ियों से टकराया। बंधा हाथ उसने सीढ़ी पर रख दिया और पैरों को पानी में उतराता छोड़ उसने ऊपर की ओर देखा।

कपड़े का छोर पकड़े रमा खड़ी थी, वह सीढ़ी पर बैठ गयी। श्वांस भरती हुई वह कह उठी :—

"हाय-हाय! यह तुमने क्या किया?"

हाथ पैरों को उसी प्रकार रहने देकर निरंजन ने उत्तर दिया—

"कुछ नहीं! मैं तो स्नान कर रहा हूँ। गर्मी सहन नहीं हुई इसलिये पानी में लेट रहा।"

रमा कपड़े का छोर तो पकड़े ही थी। अब उसने निरंजन का हाथ और पैर भी पकड़ लिया।

"अब तुम्हें स्नान करना हो तो स्नान करो और जो भी इच्छा हो करो। मैं हाथ नहीं छोड़ूँगी। मैं भी तुम्हारे साथ ही खिंच जाऊँगी।"

"रमा!"

"पानी में रहकर पूछोगे तो मैं बोलूँगी नहीं। बाहर निकलो।"

"परन्तु मैं आऊँ कैसे? हाथ तो तुमने पकड़ लिया है।"

"जो जी में आये करो। मैं तो छोड़ने की नहीं।"

अपने पकड़ाये हुए हाथों का निरञ्जन ने सीढ़ियों पर बलपूर्वक टेक लगाया और छलाँग मारी, वह पानी के बाहर निकल आया। भींगे कपड़ों से पानी झरने लगा। तालाब भी पीछे लौट कर भागे जाते हुए मित्र को आकर्षित करने को, किनारे पर आने के लिए भँवरों की रचना कर अदृश्य करता जा रहा था। नीरव सरोवर और नीरव अन्धकार में ये वर्तुल मन्द-मन्द स्वर कर अदृश्य होने लगे।

"रमा तुम कैसे आयी?"

"तुमसे कुछ कहने के लिए आयी थी।"

"क्या?"

"मैं तुमसे विवाह करने को तैयार हूँ।"

निरञ्जन को अपने ऊपर स्वयं तिरस्कार हो आया। रमा क्या यह समझती है कि इस प्रकार षडयन्त्र रचकर निरञ्जन उससे विवाह की धारणा रखता है? उसके मुख पर ग्लानि छा गयी। पानी में डूबने के पहले इस प्रकार रमा ने कहा होता तो आनन्द से उसका हृदय धड़क उठता। इस समय तो ये शब्द उसे उसकी तुच्छता का भान करा रहे थे।

"माताजी ने स्वीकृति दे दी?" निरञ्जन ने प्रश्न किया।

"हाँ .... नहीं .. ....नहीं! परन्तु वह हाँ कह देंगी।"

"रमा, माँ की स्वीकृति मिलने पर ही हम विवाह करेंगे। अभी उसकी क्या बात है?"

'तुम्हें जँचे तो मुझे लेकर यहाँ रहो। तुम्हें न रुचे तो हम दोनों चलें और विवाह कर लें। माँ से क्षमा माँग लूँगी!"

निरञ्जन हँसा—"परन्तु मेरा हाथ तो छोड़ो!"

"हाथ नहीं छोड़ूँगी।"

"क्यों ?"

"मुझे एक वचन दो।"

"क्या ? कहो ?"

"मेरे साथ तुम विवाह करोगे।"

"हाँ! परन्तु एक शर्त पर। तुम्हारे माता की सम्मति होगी तभी। उनका हृदय तुमने आज तक नहीं दुखाया। मैं डूबकर मर जाऊँगा ऐसी धारणा मान कर ही तुम माँ का हृदय दुखित करने को तैयार होती हो। निरञ्जन बहुत खराब है। उसमें नीति नहीं है, वह सिद्धान्तों पर नहीं चलता, यह सब सत्य है। परन्तु एक बात वह नहीं कर सकता, उसके लिए भारी से भारी खतरा उठानेवाले को वह उस खतरे में पड़ने का अवसर नहीं दे सकता।"

रमा शान्त बैठी रही। निरञ्जन उसके सामने देखता रहा। रमा की आँखों से आँसू बह आये।

"रमा अब तो हाथ छोड़ो।" निरञ्जन ने कुछ देर रुक कर कहा।

"तुम फिर पानी में डूबोगे तब ?" हिचकी भरती हुई रमा ने पूछा।

निरञ्जन को रमा के आँसू पोछने की उत्कट इच्छा हुई। वह अपना हाथ सरलतापूर्वक छुड़ा सकता था और रमा के शरीर का स्पर्श भी कर सकता था, परन्तु निरञ्जन ने ऐसा कुछ नहीं किया। उसने अपना हाथ उसके हाथों में रहने दिया और बोला—

"रमा मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि पानी में नहीं डूबूँगा।"

"पानी में न डूबोगे परन्तु और किसी प्रकार से......।"

"मैं अपनी बड़ी से बड़ी आशा की सौगन्ध खाता हूँ और वचन देता हूँ कि मैं आत्मघात नहीं करूँगा ।"

"वह कौन सी आशा है ?"

"रमा से विवाह करने का अधिकार मिलने की ।"

रमा ने तुरन्त हाथ छोड़ दिया । दोनों जहाँ के तहाँ ही बैठे रहे । दोनों का मन एक था । स्त्री की सम्मति थी । परस्पर स्पर्श करने को हाथ तड़प रहे थे ।

निरञ्जन अथवा रमा ने हाथों को जरा भी बढ़ाया नहीं । हाथ बढ़ाया होता तो पाप नहीं लगता । निरञ्जन को बहुत ही ओछी बात का पाप लग रहा था । शरीर की समीक्षा में, शरीर की वासनाओं से भी प्रबल कोई शक्ति उसके शरीर को जला रही थी । उसे क्या कहा जाये ? प्रेम ? कौन जाने ! आत्मघात का भय दिखला प्राप्त किया हुआ शरीर निरञ्जन को चोरी किये हुए शरीर सा प्रतीत हुआ ।

परन्तु बिना स्पर्श किये हुए ही रमा उसे अपनी लग रही थी । यह क्या ? शरीर का स्पर्श होते ही अन्तरङ्ग की रमा अन्तरध्यान हो जायेगी ऐसा निरञ्जन को लगने लगा ।

"हम लोग चलें ?" रमा ने पूछा ।

"हाँ, चलो ।"

दोनों सीढ़ियाँ चढ़ने लगे । निरञ्जन ने पूछा—

"रमा, तुम यहाँ कैसे आयीं ?"

"तुम्हें ही देखते-देखते । तुम्हारे पीछे पीछे ।"

"परन्तु ऐसा करने का कारण ?"

"यह तुम्हारा वृन्दा के लिए लिखा पत्र ।" कह रमा ने विवरण समझाया । निरञ्जन की चिट्ठी वृन्दा को देने के लिए नौकर से हुई वार्तालाप

रमा खिड़की में खड़ी सुन रही थी। उसको प्रबल जिज्ञासा हुई। वह नीचे आयी और नौकर से चिट्ठी माँगी। आनाकानी कर नौकर ने पत्र दे दिया। पत्र में लिखा था:—

वृन्दा बहन,

मेरी पृथ्वी और मेरी सूर्यमाला आज ही अभी ही, नहीं होगी। रमा बिना मेरा एक एक क्षण हजारों और लाखों वर्ष सा बनता जा रहा है। तो फिर अपने कहे हुए भविष्य अनुसार मैं नष्ट हुआ जाता हूँ। किसी को यह बात कहना नहीं।

—निरञ्जन

इस चिट्ठी को पढ़ते ही रमा के आँसू का बाँध टूट पड़ा। आश्चर्य-चकित नौकर को इच्छानुसार कल्पना करने के लिए छोड़ वह निरञ्जन के पीछे दौड़ी। तालाब की ओर उसे जाते हुए उसने दूर से देखा, वह उसके पीछे-पीछे दौड़ी। वह घाट पर पहुँची थी कि पानी में हल्की सी आवाज हुई। निरञ्जन की अन्धकार में पहचानी मूर्ति अदृश्य हो गयी।

"परन्तु मेरे कपड़े का छोर हाथ में न आया होता और मैं थोड़ा आगे गहरे में डूबा होता तब?" निरंजन ने प्रश्न किया।

"तो मैं भी तुम्हारे पीछे वहाँ ही गिरती और डूब जाती।" रमा ने उत्तर दिया।

"बड़ा अच्छा हुआ कि मैं मरा नहीं!"

"ऐसा?"

"अकेली विधवा को ही जलानेवाले पुरुष वर्ग के पाप का प्रायश्चित मुझसे किस प्रकार होता? माँ की आज्ञा न मिलने तक यदि मैं वियोग सहन न करूँ तो मैं कितना बड़ा स्वार्थी हूँगा।"

रमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मकान पास आ गया। भीतर वृन्दा का मधुर स्वर सुनायी पड़ा। वह गा रही थी—

"दूर दूर से कुंज में मोर करे टुहुकार।
सखी टुहुका में जीती मैं, मोर मोरा दीदार॥

दोनों सुनते रहे। रमा ने कहा—

"कपड़े बदल कर जाओ।"

"नहीं! मैं ऐसे ही जाऊँगा। मेरा घर कौन दूर है!"

"परन्तु कोई इस प्रकार भींगा देखेगा तब?"

"सभी जानते हैं कि मैं विचित्र हूँ। तुम चिन्ता न करो!"

"मैं चिन्ता कैसे न करूँ? तुम्हारी चिन्ता करने वाला दूसरा कौन है?"

निरंजन को रमा के प्रति एक प्रकार का अद्भुत ममत्व उत्पन्न हो आया। रमा उसकी, वह रमा का, ऐसा कोई स्पष्ट निश्चय उसके हृदय में हो गया।

"रमा! तुम किसकी?" निरञ्जन ने पूछा।

"तुम्हारी.........! तुम्हारी निरंजन....!" वह एक पग समीप आयी। उसने अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बलपूर्वक बाँधी। वह मानो निरंजन के अंग में अविभूत हो जाना चाहती हो ऐसा प्रतीत हुआ। दूसरे ही क्षण उसने अपने पग लौटा लिये। वह बोली :—

"नहीं, नहीं! माँ की स्वीकृति बिना.........? परन्तु वह निश्चय ही आज्ञा देंगी।"

"देंगी ही!" निरंजन ने अपना मत प्रगट किया।

"परन्तु तब तक?"

"तुम्हारी बहन क्या गा रही है? सुनो!"

"सखी दुहुका में जीती मैं.........।"

वृन्दा का गाना समझा।

फिर एक भी शब्द बिना बोले दोनों बिलग हो गये।

"माँ! किस कारण से आज्ञा न देंगी?" दोनों ने सोचा।

३६

पिया को ढूँढन निकली

निरंजन का पिता ऐसा ? निरंजन और महेशचन्द्र में आपस में नहीं पटती थी, इसका कारण हृदयनाथ की समझ में अब आया। बल्कि निरंजन की कितनी ही कमजोरियों का भी उसे स्पष्टीकरण मिल गया। ऐसे क्रूर, स्वार्थी और विश्वासघाती पिता के घर में जन्म लेकर भी निरंजन के संस्कार इतने उच्चस्तर के कैसे हो सके, यही उसे आश्चर्य हो रहा था। स्फटिक सदृश्य विशुद्धि बिना कोई पिता हो सकता है ? माता हो सकती हैं ?

मधुसूदन की अनुपस्थिति और घटना के प्रसङ्ग बीच भीलों की दो टोली लड़ पड़ी। मानसिक परिवर्तन बहुत दुर्गम है। रात-दिन जीवन खपाते हुए, परिश्रम के अन्तिम में भी वह साध्य हुआ है ऐसा नहीं लगता। सुधार यह महान तपश्चर्य्या है, वह एक घड़ी, एक वर्ष अथवा एक जीवन में परिणाम नहीं बता सकता। एक सुधरे हुए भील की स्वच्छ सुन्दर झोंपड़ी जल गई। नदी के उस पार से आये दूसरे भीलों की टोली के कितने ही भीलों ने वहाँ रात बिताई थी, उन पर झोंपड़ी जला डालने की शंका हुई। मन के बहकने पर अपनी पुरानी आदत पर आ जाते देर नहीं लगती। इस पारके भील उत्तेजित हो उठे और राय देने के लिये साहब के न होने के कारण उस दूसरे टोली को अपनी झोंपड़ी जलानेवाला मान कर उस टोली का झोंपड़ा जला डालने के लिये तत्पर थे। आश्रम से आठ दस गाँव दूर जंगल में यह स्थिति उत्पन्न हुई। विपक्षियों को सूचना मिल गयी थी। मरने और मार डालने का भान न रहने देने वाला क्रोध दोनों टोली में व्यापा और अभिमान पूर्ण हुए परस्पर संकल्पों का संदेश पहुँचानेवाले मित्रों ने क्रोध में और आहुति दी।

हृदयनाथ और मन्मथ गाड़ी से उतरे तैसे ही उन्हें इस कलह का पता लगा। थोड़ा भी बिना विश्राम करे कुछ स्वयं-सेवकों को साथ लेकर रात ही रात वे उस स्थान की ओर चल पड़े।

पिछली रात्रि में एक पक्ष ने धावा करने की योजना बनायी थी। शिक्षित और अशिक्षित वृद्ध और युवा, सभी भीलों के मुख पर पूर्व के संस्कार का राक्षसीपन उभड़ आया था। भोलरे, छोड़े हुए हथियार फिर हाथों में झूमने लगे। दूर से स्वयं-सेवकों की आती हुई टोली दीखी। भीलों को अन्धकार में समझ पड़ा कि विपक्षी हमला करने आ रहे हैं। नये यौवन का रसास्वादन चखनेवाले नवयुवक भीलों में से दो तीन लोगों ने तीर कमान उठा लिया। वृद्धों ने उन्हें रोका। इस प्रकार मसाल लेकर विपक्षी हमला नहीं करेंगे, ऐसा उन्होंने समझाया। इतने में भीलों का स्वीकृत जयनाद स्वयंसेवकों ने किया। जयनाद का जादूई असर था। भीलों ने भी जयनाद का प्रचण्ड घोष किया। जंगल के कोने-कोने ने जयनाद की प्रतिध्वनि की।

टोली आपस में मिली। भील मन्मथ से भेंटे, स्वयंसेवकों से गले मिले। केवल कठोर दिखते हुए हृदयनाथ के साथ उन्होंने कोई व्यवहार नहीं दिखाया। भीलों ने साहब का समाचार पूछा, तब मन्मथ बोलाः—

"साहब की हालत अच्छी है। परन्तु उन्हें अभी आराम करने की आवश्यकता है। यहाँ वे लौट कर आयें तब तक के लिये उन्होंने अपने स्थान पर इन हमारे अधिकारी हृदयनाथ जी को भेजा है।"

भील लोग आँखें गड़ा गड़ा हृदयनाथ को देखने लगे उनमें से कुछ नायकों ने हृदयनाथ को कभी कभी आश्रम में आते हुए देखा था। साहब का स्थान ग्रहण करने योग्य कोई दूसरा मनुष्य होगा, ऐसी भीलों की मान्यता नहीं थी। भीलों के पूज्य भाव को यदि साहब ने मर्य्यादित न रक्खा होता तो साहब को देवता मान वे उनकी पूजा अर्चना भी करने लगते। हृदयनाथ के व्यक्तित्व में किसी को कोई कमी नहीं दीखी। क्रम क्रम कर भील एक के पश्चात् एक हृदयनाथ के पैर लगे और भेंट की। हृदयनाथ को यह सम्मान

अधिक भार युक्त लगा, अपनी योग्यता से अधिक सम्मान मिल रहा है ऐसा उसे लगा।

पश्चात् सामनेवाले विपक्षी भीलों के वैमनस्य सम्बन्धी बातें हुईं। भीलों ने अपना निश्चय बतलाया। मन्मथ और हृदयनाथ ने उन्हें समझाया। उनके कार्य अपराध गिने जायेंगे, इस धमकी का उनके मन पर कोई असर नहीं हुआ। परन्तु साहब को इसकी खबर मिलने से उन्हें दुःख होगा यह बात उन पर असर कर गई। सब ने एक वृद्ध भील की ओर देख कर यह प्रकट किया कि यदि इनका मन स्वीकार कर ले तो हमलोग बदला लेने की भावना त्याग दें।

वृद्ध भील क्रोध से थर थर काँप रहा था। उसे यह सब समाधान की बात अच्छी नहीं लगी। उसी के उस्काने पर सब भील युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए थे। उसने कहा:—

"मुझे यह बात स्वीकार नहीं है।"

मन्मथ और हृदयनाथ उस भील के पास गये, परन्तु उसे शान्ति नहीं मिली। कुछ क्षणों पश्चात् उसने कहा:—

"आप हमारे साथ आयें।"

मन्मथ और हृदयनाथ उसके साथ गये।

"आपको मैं जली हुई झोपड़ी दिखलाता हूँ!"

"उसमें देखने को क्या है?" मन्मथ ने कहा।

"उसी में तो सब कुछ देखने का है।"

दोनों व्यक्ति उसके साथ गये। थोड़ी दूर आगे जाने पर वह जली हुई झोपड़ी दिखलायी दी। कुछ जले हुए बाँस खड़े थे। जले हुए भाग के एक ओर की ताजी खोदी हुई भूमि उसने दिखला कर कहा:—

"झोपड़ी जल गई तो उसकी परवाह नहीं है। परन्तु भूमि खोद कर जो यहाँ से चोरी की है उसका क्या होगा?"

"किस चीज की चोरी हुई ?"

"आपसे कहता हूँ। यहाँ साहब के कपड़े छिपाये थे।"

"कैसा कपड़ा ?"

मधुसूदन को प्रायः मृत अवस्था में जो भीलों की टोली उठा लायीं थी, उस टोली का नायक अब वृद्ध हो गया था। उस टोली ने मधुसूदन का कपड़ा और सोने की एक घड़ी को बहुत ही सावधानी से जमीन में गाड़ कर छिपा दिया था। ज्यों ज्यों मधुसूदन के प्रति उनमें सम्मान बढ़ता गया त्यों त्यों इस पुराने वस्त्रों के प्रति टोली का श्रद्धा भाव बढ़ता गया। दो चार बार साहब को उन लोगों ने उनके पुराने वस्त्रों को दिखलाया भी था। परन्तु हमेशा साहब उन वस्त्रों को देख कर मानसिक उड़ान में लीन हो जाते। वस्त्र उन्हें किसी दिव्य सत्त्वमें प्रवेशकर देते हैं ऐसा भीलों ने समझा। इसलिए अत्यन्त पवित्र, गूढ़ और साहब के शरीर से सम्बन्ध रखती वस्तु के रूप में टोली के उस नायक ने उन वस्त्रों को छुपा रक्खा था। उन वस्त्रों को कोई निकाल ले गया इतना ही नहीं, उसने उसके ऊपर की झोपड़ी को भी जला दिया। हृदयनाथ को लगा कि इसमें किसी जानकार मनुष्य का हाथ अवश्य ही होना चाहिये।

"आपने किस कारण से समझा कि सामने उस पारवाली टोली का ही यह काम है ?" हृदयनाथ ने पूछा।

"उस टोली का एक भील उस समय हमारे साथ था। उसे लेकर रूपाजी दो दिन पहले यहाँ आया था। उसने पूछा और मैंने साफ हृदय से उसे बतला दिया कि सब कुछ यहाँ छिपा है। इसलिए उसके सिवाय और कौन ले जा सकता है।"

हृदयनाथ को निश्चय हो गया कि रूपाजी ने ही यह कृत्य किया है। इसका कोई कारण होना चाहिये। मधुसूदन जीवित न रहे, यदि जीवित रहे तो चेतना न आये और यदि चेतनता आये तो भी वह भूतकाल के प्रसङ्ग का स्मरण नहीं कर सके, यही उसका उद्देश्य होना चाहिये। किसी भी

विचित्र रीत से मधुसूदन के प्रकट होने में रूपाजी को अधिक भय हुआ होगा। किस कारणवश शिकार से मधुसूदन वापस नहीं लौटे ? रूपाजी साथ में ही था। दोनों अदृश्य हो गये फिर दोनों मिल गये। मधुसूदन अभी तक कुछ बतला नहीं रहे हैं। रूपाजी मधुसूदन का जीवन बराबर खतरे में ही डाला करता है।

हृदयनाथ ने पता लगाने का भार अपने ऊपर लिया। उन्होंने विपक्षी दल से बातचीत करने तक प्रतीक्षा के लिये कहा। वि
साहब का भक्त था। झोपड़ी जलाने की बात को दूसरा दल अस्वीकार करता था। इस कारण रूपाजी तथा इसी टोली के अन्य किसी दूसरे व्यक्ति का यह कार्य्य है ऐसा हृदयनाथ को निश्चय हुआ। टोली के अ
भी निर्दोष हैं।

वह विपक्षी दल से मिला। जो वृद्ध रूपाजी के साथ आकर इस टोल के वृद्ध भील के पास आ छिपाये हुए कपड़ों का भेद मालूम कर गया था, उसे हृदयनाथ ने भय दिखलाया। भोले भील ने सभी बातें स्वीकार कर लीं। साहब को जब भील टोली अपने निवास-स्थान पर उठा लायी थी उस समय जो वस्त्र और सामान थे उन्हें लाकर देने के लिए रूपाजी ने कुछ ही दिनों पूर्व आकर लालच दिया था इसके लिए उसने और रूपाजी ने चोरी किया और झोपड़ी जला दिया था।

"रूपाजी कहाँ है?"

"यह मैं नहीं बताऊँगा।"

"परन्तु रूपाजी को कुछ होगा नहीं इसकी मैं जिम्मेदारी लेता हूँ।"

भील पिघला और उसने छिपे हुए रूपाजी को मधुसूदन के कपड़ों के साथ हृदयनाथ के सम्मुख उपस्थित किया। रूपाजी को हृदयनाथ के प्रति बैर था। उसकी योजना हृदयनाथ ने धूल में मिला दी थी। रूपाजी का चलता तो उसी दिन वह हृदयनाथ को जीता न छोड़ता। फिर भी एक वीर पुरुष को वीर पुरुष के प्रति स्पर्धता के लिए अन्तःकरण में सम्मान उत्पन्न हुए

बिना नहीं रहता। रूपाजी ने पहले तो सीधे मुँह बात नहीं किया। मगर हृदयनाथ और मन्मथ ने मिलकर उसके वीरत्व को उसकाया। बड़ा से बड़ा अपराधी भी अपराध स्वीकार कर ले कभी ऐसा क्षण भी उपस्थित होता है।

"रूपाजी, भलेही तुम्हें कुछ न कहना हो तो न कहो परन्तु तुम्हारे जैसा बहादुर बिना कारण ही मधुसूदन को छोड़ जाय और शेर के मुँह में डाल दे इसे मैं नहीं मान सकता।" हृदयनाथ ने कहा।

"कारण है क्यों नहीं?" रूपाजी ने उत्तर दिया।

"उसे बतलाओ। नहीं तो तुम्हारी बहादुरी की जो बातें सुनी हैं उस पर पानी फिर जायेगा।"

"दो दीवान लड़े, उसमें मुझे भी मिला दिया!"

"कौन दीवान?"

महेशचन्द्र और मधुसूदन का नाम रूपाजी ने लिया।

"ये तो कभी लड़े नहीं!" हृदनाथ ने चकित होते हुए कहा।

"आपको क्या मालूम होगा! रास्ता साफ़ कर डालने के लिए मुझसे बड़े दीवान ने कहा और बड़ी लालच दी।"

"फिर?"

"फिर जंगलमें ले जा कर बन्दूक की गोली से मैं उन्हें समाप्त करनेवाला था। किन्तु न जाने क्यों हाथ नहीं उठाया। शेर को उन्होंने गलत गोली मारी इसलिये मैंने समझा कि अब इन्हें शेर छोड़ेगा नहीं। शेर तो मचान पर उचका पर उससे कुछ हुआ नहीं, परन्तु मैंने डरते डरते उन्हें धक्का मारा। मेरा काम हो जायेगा और मैं खूनी भी न बनूँगा इसी धारणा से मैंने वैसा किया।"

"महेशचन्द्र क्या यह सब स्वीकार करेंगे?"

"नहीं वे नहीं कर रहे हैं। वे तो कहते हैं कि मैंने रास्ता साफ करने के लिये कहा था, मार डालने लिए कहाँ कहा था? ऐसा सफेद भूठ बोलने वाले को क्या कहा जाय?"

हृदयनाथ को मधुसूदन के कपड़े मिल गये। हृदयनाथ ने दोनों टोलियों को शान्त कर दिया। रूपाजी महेशचन्द्र के खिलाफ शहादत देने को तैयार हुआ। हृदयनाथ को बारम्बार यही विचार हो आता था—मनुष्य इतना अधिक क्रूर कैसे बन सकता है? महेशचन्द्र जैसा संस्कारी पुरुष ऐसे घृणित कार्य में कैसे संलग्न रहा?

फिर वह निरञ्जन का पिता है। निरञ्जन का पिता ऐसा? पहले तो उसे सारी बातें असंभावित लगी। परन्तु ज्यों ज्यों वह विचार करता त्यों त्यों पुराने व नये उदाहरण मिलने लगे। स्वार्थके लिए मित्रों से विलगाव भी हो जाता है। स्वार्थ के कारण ही मालिक का कृतघ्नी भी होता है। स्वार्थ के आगे पिछले उपकारों को भी भूल जाता है।

रूपाजी ने स्वीकार किया उस दिन सांयकाल हृदयनाथ अकेले नदी के किनारे टहलते टहलते इन्हीं विचारों में तल्लीन हो गया था। गाँव दो गाँव दूर तक वह आगे और आगे बढ़ते हुए रेती में चला जा रहा था। उसका मत था कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन-यापन की व्यवस्था बदल दिया जाय तो वह अपराध करना छोड़ दे। उसकी इस मान्यता पर प्रहार होता दीखा। महेशचन्द्र के निर्वाह का सम्पूर्ण साधन था। फिर किस कारण वश उसे यह रास्ता ग्रहण करना पड़ा? क्यों द्वेष इतना अधिक शक्तिशाली कारण है कि उसके लिए मनुष्य जघन्य कार्य करने को प्रेरित होता है? देश के स्वार्थ-त्यागी नेताओं की परस्पर ईर्षा उसे स्मरण आयी। विरोधियों के लिए समाचार-पत्रों में आती टीकायें उसे याद आयीं।

एकाएक उसके विचार रुक गये। हवा के एक शक्तिशाली झोंके ने उसके मुँह पर झटका दिया। उसकी आँखों में बालू भर गयी। आँख खोला तो दूर आकाश में धूल का अम्बार दिखलायी दिया। उसे लगा कि आँधी

चढ़ी आ रही है। वह लौटने लगा। नदी के गर्भ में एक डोंगी तेज गति से बहती हुई दिखलायी दी। आँधी भी तेज गति से आगे बढ़ती आ रही थी। उसके बाल और कपड़े हवा में फर फर कर उड़ने लगे। पाल को फुला हवा डोंगी को तेजी से आगे ढकेलती जा रही थी। हृदयनाथ चिल्ला उठाः—

"डोंगी किनारे लगा लो। पीछे आँधी आ रही है।"

"लगे तब न!" नाव से आवाज आई। एक मल्लाह मस्तूल पर चढ़ पाल की डोरी खोल पाल को समेटने लगा था, किन्तु आँधी में पाल और डोरी इधर उधर उड़ रहे थे। डोंगी ने एक झोंका खाया। मानों पानी पीना हो इस प्रकार वह एक ओर झुक गई और फिर उछली।

"क्या करते हो? डोंगी इस ओर को लाओ।" हृदयनाथ ने चिल्ला कर कहा। खुली जगहों में आवाज उड़ जाया करती है। उस पर आँधी का बहुत जोर झोंका था। धूल का बादल एकदम पास आ गया मालूम हुआ। डोंगी झोंके खाने लगी। मल्लाहों और आँधी के बीच प्रतिद्वन्दिता में नाव की गति कम हो गयी, उसकी—हिलोरें अधिक लेने लगी। पाल के भार से नाव उछल रही थी। डोंगी में यात्री बैठे हुए उसे दिखाई दिये। हृदयनाथ की आवाज सुन मल्लाहों ने जवाब दिया—

"चिल्लाने से क्या होता है?"

"डोंगी डूब जायेगी सो?" डोंगी को भयङ्कर झटका लगता देख हृदयनाथ ने कहा।

"हम समझते हैं। यहाँ होते तो मालूम पड़ता!" जी तोड़ मेहनत करते हुए माँझी ने चिल्ला कर कहा।

आँधी बिलकुल नजदीक आ गयी। गर्द आँख में भरने लगी। नाव सहज ही चक्कर लगाने लगी और पाल की झड़प में आया एक माँझी नदी में गिरता दिखाई पड़ा। क्षण मात्र में हृदयनाथ नदी में कूद पड़ा और तेज

आँधी समूचे स्थान में जहाँ तक दृष्टि की सीमा थी फैल गयी। अन्धकार पूरा पूरा छा गया।

"डोंगी डूबी!" माँझी की हल्की सी चीख सुनायी पड़ी।

आँधी की गति से ही हृदयनाथ डोंगी के निकट पहुँच गया। झकझोरें खाती डोंगी को उस क्षण उसने थाम लिया और बाजुओं के बल से उ े जोर से पकड़ रक्खा।

"क्या हुआ?" डोंगी डूबने की चिन्ता में खड़े माझी का उद्गार निकला।

"मैंने डोंगी पकड़ रक्खी है। अन्दर कौन है?" हृदयनाथ ने लहरों पर उछलते उछलते पूछा।

"दो औरतें हैं। हे भगवान्! लाज बचनेवाली नहीं है?" माझी ने दुःखित स्वर में उत्तर दिया।

मारुत मातङ्ग सरीखे पवन ने डोंगी को दूसरा झटका मारा। हृदयनाथ को लगा कि डोंगी उसके हाथों को तोड़ कर पानी में धंसना चाहती है। यह डूबी, अब डूबी, ऐसा सबको लगा। थोड़ा पानी भी डोंगी में भर गया। समूची शक्ति का प्रयोग कर हृदयनाथ ने डोंगी को दुबारा पकड़ा। परन्तु वज्र सरीखे लोह खण्ड को मुक्के से तोड़ डालनेवाले इस कसरती युवक को भासा कि उसका मुक्का तूफान के आगे निरर्थक है। अधिक देर तक वह नाव को पकड़ कर रख सके यह सम्भव नहीं था। असीम कष्ट उसके स्नायुओं में मालूम हुआ।

"माँझी, औरतों को बचाना हो तो मुझे सौंप दो। डोंगी हाथ में नहीं रहेगी।" हृदयनाथ ने डूबती डोंगी को पकड़ कर बचाते हुए कहा।

"जी हाँ! जी हाँ! मैं ऐसा ही कर रहा था कि इतने में मेरा भाई पानी में गिर गया, मैं अकेला क्या करूँ?" माँझी बोला।

"परवाह नहीं। औरतों को पानी में कुदा दो और तुम साथ रह कर इस नाव को बहता छोड़ दो।"

हृदयनाथ के बगल में पानी में कोई कूदा। हृदयनाथ ने डोंगी से एक हाथ हटाया और पानी में कूदनेवाले को पकड़ लिया। दूसरा हाथ भी डोंगी से उसने हटा लिया और दूसरे कूदने वाले को भी पकड़ लिया।

डोंगी पास में ही डूब गयी। हृदयनाथ और उसके दोनों हाथों में पकड़ी गई स्त्रियों को डूबते हुए डोंगी के पानी के झोंके ने उछाला और पुनः अपनी ओर खींचने लगा।

"आप लोग कोई घबड़ाइयेगा नहीं। मैं अच्छी तरह से किनारे ले चलूँगा।" पानी पीते हुए हृदयनाथ ने कहा।

"ऐसे नहीं........जरा भी घबड़ाइयेगा तो हम तीनों डूबेंगे....... मैं जैसा कहूँ वैसा करें........आपको तैरना आता है?" अपने हाथों पर लिटाते हुए हृदयनाथ ने पूछा।

"जी।" एक स्त्री ने उत्तर दिया।

"बहुत ठीक। मेरे हाथ पर ही रहें। जरा भी डूबेंगी नहीं। हृदयनाथ उतान पानी पर लेट गया, दोनों हाथों पर दोनों स्त्रियों को लिटा लिया और दोनों ने हृदयनाथ के हाथों को मजबूती से पकड़ लिया। केवल पैरों के बल से हृदयनाथ तैरने लगा। डोंगी को पकड़ रखने के मुकाबले दोनों स्त्रियों को लेकर तैरना उसे अधिक सरल लगा।

"मैं साथ ही हूँ।" माँझी भी पीछे पीछे तैर कर आ रहा था।

तूफान आगे बढ़ गया था। इस अन्धे शक्तिशाली तूफान को, कौन डूबा और कौन बचा यह जानने की परवाह नहीं होती। उसे तो घूमना था, दौड़ना था, उसके झटके में जो आये उसे चक्कर दिलाना था। उसने पुष्कल धूल को चूसा और बिखराया। जिस तीव्र गति से वह आया उतनी ही तीव्र गति से चला गया।

केवल मात्र जल अभी तक उछलता रहा और आकाश में धूल साथ एकत्रित हुआ बादल गड़गड़ा रहा था। एक बार बिजली चमकी और वर्षा की बूँदें टपकने लगीं।

हृदयनाथ का पैर जल के अन्दर जमीन से टकराया। उसे लगा कि वह किनारे के निकट आ गया है। पानी में वह खड़ा हो गया। दोनों तैरती हुई स्त्रियों का हाथ पकड़ कर उसने उन्हें खड़ा कर दिया। परन्तु दो में से एक भी खड़ी नहीं रह सकीं। दोनों बहुत अधिक थक गयी थीं। दोनों को चक्कर आ गया, दोनों ने हृदयनाथ का हाथ पकड़ लिया।

हृदयनाथ को लगा कि वह स्वप्न देख रहा है। वह स्त्रियों को बारम्बार देखने लगा और स्वप्न सरीखी काल्पनिक सृष्टि को उसने देखा। वह पुकार उठा—

"वृन्दा! मिस कोलिन्स!"

तीनों के वस्त्र जल से तराबोर थे। ऊपर से वर्षा की बूँदें पड़ती जा रही थीं।

वृन्दा और मिस कोलिन्स ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। उसके हाथों पर झूमतीं थकान के कारण एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती थीं। भींगे कपड़ों में काँपती दोनों युवतियों को उसने हाथों से बल-पूर्वक पकड़ा और सम्हाल कर पानी से बाहर ले आया। मक्खन सरीखा कोमल उन दोनों का हाथ ठीक से उसके हाथों में रह नहीं पाता था। वह उनके हाथों को बल-पूर्वक दबाता, परन्तु एक दो क्षण पश्चात् उसका पंजा सहज ही नीचे की ओर सरक जाता था। स्त्रियों का हाथ इतना अधिक चिकना होता है? उसके मन में प्रश्न हुआ।

रेती पर तीनों बैठे। वर्षा भी कम हो गयी थी। बिजली सहित मेघ आगे बढ़ गया था। वह भी तूफान का अनुकरण कर रहा था। वह भी कदम-कदम मिलाकर चल रहा था।

माँझी निकट आकर खड़ा था। उसने कहा :—

"किनारा छोड़ कर उस बड़ के नीचे बैठिये। मैं वहाँ आग सुलगा दूँगा।" अंधेरे में उसने टीले के उस पार उँगली से इशारा किया।

"ठीक है। तुम जाओ, हम लोग आ रहे हैं।" वृन्दा ने कहा।

"आप लोग यहाँ कैसे?" हृदयनाथ ने पूछा।

"आपके पीछे पीछे!" वृन्दा ने उत्तर दिया।

"ऐसा? आपको कैसे मालूम कि मैं यहाँ हूँ?"

"मिस कोलिन्स को भारत से प्रस्थान करना है। वह आपसे मिलना चाहती थीं। वह मुझसे भेंट करने के लिये सुन्दरपुर आयीं। वहाँ खबर मिली कि नदी के रास्ते से जल्दी आश्रम में पहुँचा जा सकता है। मिस कोलिन्स को नदी किनारे का सृष्टि सौंदर्य्य भी देखना था!"

"किन्तु इस प्रकार अकेले निकला जाता है?"

"क्यों डोंगी साथ में थी। आप किनारे में ही हैं यह सूचना मिलने पर डोंगी तेजी से खेकर यहाँ लायी गई।"

"ऐसे भयङ्कर तूफान में आप लोगों ने यह जीवट किया? यह आश्चर्य की बात है। माँझी लाया कैसे?" हृदयनाथ ने पूछा।

"वह तो इन्कार कर रहा था, मगर हम लोगों ने आग्रह किया। मुझे विश्वास था कि आप यहीं कहीं मिल जायेंगे।" वृन्दा ने कहा।

अन्धेरे में भी वृन्दा का शरारत पूर्ण मुँह दिखाई पड़ रहा था। उसका उत्तर सुन हृदयनाथ उसकी ओर देखता रहा।

"दूर पर चिनगारियाँ दीखीं। माँझी ने जाकर आग सुलगा दिया है।" हृदयनाथ ने कहा।

"चलो वहाँ चलें। बहुत थक गयी हो? मैं उठा लूँ?"

"नहीं, हाथ ही पकड़ लेने दें इतना ही बस।" वृन्दा बोली।

तीनों आग के पास गये। आग के प्रकाश में भींगे वस्त्र पहने युवतियाँ अनजाने संसार में सकुचती हुई अप्सरायें उतर आयी हों ऐसा लग रहा था।

वृन्दा और मिस कोलिन्स को बैठा कर हृदयनाथ वहाँ से अदृश्य हो गया। ऐसी स्थिति में चित्रित करने योग्य युवतियों को निहारते हुए हृदयनाथ को क्या कम संकोच हो रहा था?

३७

प्रतिज्ञा भङ्ग

एक वृक्ष से पीठ टिका पैर पर पैर रक्खे हृदयनाथ बैठा था। तूफान चला जा चुका था। बादल भी जा चुके थे। मन्द पड़ गई वर्षा का जल पत्तियों पर से बूँदें बन बन टपक पड़ती थीं। सूखता जाता हुआ वस्त्र अभी ठंढा था। उतरते हुए ग्रीष्म में वर्षा ने तो मामूली सा दीखावा कर शीतलता अर्पित कर दी थी। वायु ने भी अब सौम्य रूप धारण कर लिया था। अठखेलियाँ कर लज्जित बनी किसी भी किशोरी के समान वह पत्तो के आड़ में छिपी हो ऐसा लग रहा था। चुपके से समीर ने हृदयनाथ का स्पर्श किया। ठण्ढ़क से भरे कपड़ों के भीतर उसके शरीर में साधारण सा कंपन हुआ। उसने पीछे की ओर दृष्टि फेरी वृन्दा का हँसता मुख दिखलायी पड़ा।

"भ्रम।" दूर आँगन के पास बैठी दोनों युवतियाँ दीखने के पश्चात् फिर यहाँ निकट में यह मुख कैसे दीखा? भ्रम ही तो है?

समीर की अधिक स्पष्ट लहर उससे मिली। शान्ति पूर्वक उसने उसकी शीतलता का अनुभव किया। पानी की लहरों में और वायु की लहरों में कुछ समानता है। उसने विचार किया की पानी की लहरों के ऊपर तैरा जा सकता है, वायु की लहरों पर तैरा नहीं जा सकता। तब कौन उस वायु के लहरों पर तैर कर हिलोरें लेता हुआ आता है? वृन्दा को वायु में तैरना आता है क्या? वायु में तैरना यह नृत्य सरीखा मनोहर नहीं लगता? परियों का नृत्य भी मन्द समीर पर लहरा कर आती हुई वृन्दा के अभिनय सरीखा होगा?

"कहाँ है वृन्दा?" उसने अपनी आँखे मूँदी, खोलीं, फिर अपने मन से पूछा। चमकता जुगनू एक वृक्ष से दूसरे पर जा रहा था।

"वृन्दा, वह हवा में उड़ती है ?" मन में विचार कर हृदयनाथ हँसा। सचमुच ही वृन्दा हवा में नहीं उड़ती थी। परन्तु सुवास का पुञ्ज उड़ता उड़ता हृदयनाथ से टकराया। यह सुवास मोंगरा की न थी, गुलाब की न थी, चम्पा की न थी, तब किसकी थी ? वर्षा ने पृथ्वी को सींच उसे परागमय बना दिया। वन-वृक्षों ने वर्षा से प्रथम भेंट किया था इस रस समागम से सम्पूर्ण वन में किसी अभूतपूर्व कार्य की धारा बह रही थी। पृथ्वी और वृक्षों ने मुक्त हृदय से लहर लहर में परिमल भर भर कर पवन को स्वतन्त्रता-पूर्वक रमण करने के लिये मुक्त कर दिया था। क्या वह तूफान वाला ही पवन तो वृन्दा को अपने अंक में भर कर उठा नहीं लाया ?

सुवास के बहे जाते पुंज में वृन्दा दिखलायी। हृदयनाथ ने ऊपर की ओर दृष्टि कर देखा। उसे भय लगा कि पवन की लहरों पर वृन्दा उड़ कर आ रही हो तो ? वृक्षों की सघनता के बीच से आकाश दीख पड़ा। आकाश में रह रह कर वृन्दा की दोनों आँखें हृदयनाथ के सम्मुख हंसती दिखाई पड़ रही थीं।

"नहीं ये आँखें नहीं हैं। ये तो तारे हैं !"

... मों पर डार दियो सारी रंग की गागर....

दूर से मीठे मन्द मन्द स्वर सुनाई पड़े। वृन्दा और मिस कोलिन्स आग के निकट अकेली बैठीं थीं। समय बिताने के लिये वृन्दा को कुछ गाने की इच्छा हुई। इच्छानुसार मन्द स्वर में उसने होली गाना शुरू कर दिया—

"मों पर डार दियो सारी रंग की गागर !"

दीपचन्दी ताल पर मानों केशर की रङ्ग भरी गागरें बहती जा रही हों ऐसा हृदयनाथ को लगा।

"जादूई वन है ? मैं कैसे बदल गया ? स्वर लहरी रुचिकर लग रही है ?"—उसके मन में विचार आया।

स्वर का पुल बंध गया था। उस पुल पर होकर वृन्दा नाचती रमण

करती हृदयनाथ के समीप आयी। हृदयनाथ ने दोनों कानों के ऊपर हाथ रख लिया। उसके दोनों हाथों पर किसी ने फूंक मारा—गुदगुदी होने का आभास हुआ। उसने एकाएक कानों पर से हाथ हटा लिया।

समीप में कोई भी न था। वृन्दा ने गाना बन्द कर दिया था। आग और उसके पास बैठी दोनों युवतियाँ दूर से भी दिखलायी पड़ें इस रीति से वह पेड़ों की आड़ में बैठा था। उसके दोनों हाथ स्वभावतः दुःख रहे थे। डोंगी को तूफान से सुरक्षित रखने में उसके हाथों को काफी झटका लगा था यह सब सत्य था या स्वप्न इसका निश्चय करने के लिये उसने अपने हाथ में चिकोटी काटी। सत्य था। स्वयं वह है इसका स्पष्ट भान उसको नहीं था। अपने स्थान से किसी नये अनजान स्थान पर घसीट कर वह आ गया था। वन अनजाना था।

परन्तु वृक्षों के एक ओर उदय होता चन्द्रमा भी क्या अनजाना था? समूचे प्रदेश में केवल एक मात्र था। चन्द्रमा ही उसे परिचित दीखा। उसने कभी चन्द्रमा को एकाग्र दृष्टि से नहीं देखा था। चन्द्रमा की चाँदनी में वह कभी इच्छा करके नहीं टहलता था। चन्द्रमा में हमेशा उसे निर्बलता ही दीखती रही। उसका अप्रिय माना हुआ चन्द्रमा सचमुच ऐसा ही है?

उसने अपलक दृष्टि से चन्द्रमा की ओर जीवन में पहली बार देखा।

चन्द्रमा में उन्मत्त बनाने वाली क्या चीज़ है? प्रेमी और कवियों को दीवाना बना देने वाले चन्द्रमा के प्रति हृदयनाथ में कोई उच्च भावना थी ही नहीं। वह कभी उसके प्रभाव से उन्मत्त नहीं बन सकता, ऐसा उसे निश्चय था।

एकाएक उसके और चन्द्रमा के बीच रेशमी पर्दा पड़ गया। किसी कोमल हाथों की नन्हीं हथेलियों ने उसकी आँखों पर अपना अधिकार कर लिया।

'भ्रम !' हृदयनाथ ने मन में ही अपना समाधान कर लिया। आज उसे अनेकों बार भ्रम हुआ था। विचित्र विचित्र दृश्य उसने कल्पना में देखे थे। यह भी उसी प्रकार की–एक झूठी कल्पना ही थी ? नहीं...?

परन्तु भ्रम का अस्तित्व अधिक क्षणों तक नहीं रहता। कल्पना अधिक समय तक आँखों को झूठा नहीं बना सकती। उसपर उस सरीखे कल्पना विरोधी को तो ऐसी कल्पना खीझ युक्त हो पड़ेगी। चन्द्रमा कहाँ ? प्रकाश कहाँ ? आँखों पर निश्चय ही किसी की हथेलियाँ हैं क्या ?

अपना विशाल पंजा उसने आँखों पर रक्खा। छोटी छोटी हथेलियाँ और पतली पतली कोमल उँगलियाँ उसके पंजों में दब गयीं। उँगलियों को दबाने के कारण दुःख हुआ हो वैसी समीप से सिसकारी सुनायी पड़ी। पंजों में पंजा रह गया और हृदयनाथ ने पीछे की ओर देखा। वृन्दा उसके समीप सटकर बैठी हुई थी।

"कितने जोरों से पंजा दबा दिया ?" वृन्दा बोल उठी।

"मुझे मालूम नहीं था कि तुम हो ! क्षमा करना।" थोड़ा खिसक कर हाथ छोड़ते हुए हृदयनाथ ने कहा।

"कर चुकी क्षमा ! पानी में भी कितनी जोर से हाथ पकड़ा था ?" वृन्दा ने अपने हाथ दिखलाया।

"अ रे रे ...... !"

"अ रे रे .. ...क्या कर रहे हो ? देखो तो जरा ?" वृन्दा ने जबरदस्ती अपना हाथ हृदयनाथ के हाथों पर रख दिया। सोने से रङ्ग के हाथ और उस पर गहरी नीलमा .... मानों नीलम के कड़े हों।

वृन्दा के हाथों पर हृदयनाथ ने सहानुभूति पूर्वक हाथ फिराया, और हृदयनाथ बदल गया। महान ब्रह्मचारी ने सौंदर्य्य परखा। कस कस कर बांधा गया उसका मन मुक्त हो गया। हृदयनाथ ने मन को तरङ्गित होने दिया।

वृन्दा के हाथों का स्पर्श करते ही हृदयनाथ को लगा कि वह चन्द्रमा का स्पर्श कर रहा है और चन्द्रमा की चाँदनी को भी स्पर्श कर रहा है। वह पुष्प की मृदुता का भी स्पर्श कर रहा है और पुष्प के परिमल का भी स्पर्श कर रहा है।

जीवन में प्रथम बार उसे अजीब रसिकता का बोध हुआ। संगीत के समुद्र में चन्द्रमा की नौका तैर रही हो। मलयागिर का तरङ्गित पवन फर फर आकर उस नौका को नचा रहा है। उस नौका में जो युगल जोड़ी बैठेगी उसे कैसा अनुभव होगा और कैसा न होगा? हृदयनाथ को ये विचार एक साथ आये। कभी भी न कंपित होने वाला बलिष्ठ हाथ फिरते फिरते अनेकों बार काँप उठा। वस्त्रों की कमी लुप्त हो गयी थी। फिर भी बार-बार उसे रोमान्च हुआ। कुछ देर बाद उसने वृन्दा के मुख की ओर एकाग्र दृष्टि से देखा।

"क्या देख रहे हो?" वृन्दा पूछ बैठी।

"तुम्हारा मुख। परन्तु तुम क्या देख रही हो?'

"तुम्हारा मुख।"

' यह तुम्हें नहीं रुचेगा।"

"कारण?"

"तुम मेरा मुँह देख कर नाक सिकोड़ा करती थीं। उस दिन तुम्हींने मुँह बिचकाया था। याद है न?"

"वह तो अब भी सिकोड़ूँगी!"

"क्यों?"

"यों!" वृन्दा ने अपने स्वभाव अनुसार ओठों को सहज ही लम्बा

बनाया। कितने ही सिकोड़ मुख के माधुर्य्य की वृद्धि कर देते हैं। वक्र चन्द्रमा के समान।

लम्बे किये ओठों पर हृदयनाथ बाज सरीखा टूट पड़ा। उसने अपना सम्पूर्ण भान खो दिया। जीवन में प्रथम बार उसने चुम्बन लिया। जीवन का प्रथम चुम्बन-माने? युग युग तक का स्मरण! चिरस्मरणीय रोमान्स! प्रलम्ब सुख अनुभव!

दोनों गुँथ गये—किसी ने ओंठ नहीं हटाये।

"हृदय... नाथ..!" अनेकों बार वृन्दा के मुख से मन्द मन्द शब्दोच्चार हुआ।

चौंक कर हृदयनाथ ने वृन्दा को छोड़ दिया। उसके कानों में किसी के हँसी की आवाज सुनायी दी।

"वृन्दा! कौन हँस रहा है?" हृदयनाथ ने पूछा।

"कोई नहीं! हम तुम अकेले ही हैं।"

"भाभी को हँसते और बोलते हुए सुना?"

"भ्रम! वह तो बेचारी स्वर्ग में हैं!"

"भूत होकर भी तुम्हारा विवाह रचाऊँगी, ऐसा उन्होंने मुझसे कहा था।"

"सत्य कहा था। इससे चौंकते क्यों हैं?"

दूर पर लोग प्रकाश लिये आते मालूम हुए। आँधी में हृदयनाथ और वृन्दा दोनों को लोग खोजने के लिये पृथक पृथक निकले हुए थे, वे आग का प्रकाश देख इधर को ही आ रहे थे।

नीचे मुख किये आग तापती हुई मिस कोलिन्स के पास हृदयनाथ और वृन्दा दौड़ कर आ बैठे।

....

हृदयनाथ के अखाड़े में विशेष रौनक दिखाई पड़ती थी। उसने संस्था की सदस्यता से त्याग-पत्र प्रेषित किया था। त्याग-पत्र हृदयनाथ के स्वयं सभा में उपस्थित होने पर ही स्वीकार किया जायेगा ऐसा सभा ने निश्चय किया था। हृदयनाथ ने अनेकों प्रार्थना की कि सभा में उसे उपस्थित करा उसका मान भङ्ग न किया जाय, किन्तु सदस्यों ने नहीं माना। विजित योद्धा मुँह छिपाता हुआ आ एक कोने में बैठ गया।

निरञ्जन ने हृदयनाथ का त्याग-पत्र सभा के समक्ष पढ़ा और यह सत्य है अथवा नहीं उसने हृदयनाथ से पूछा। निरञ्जन आज की सभा का अध्यक्ष था।

हृदयनाथ ने स्वीकार किया।

निरञ्जन ने सभा से पूछा :—

"इस त्याग-पत्र को स्वीकार करना है ?"

"नहीं।" मन्मथ बोल उठा। दूसरे पाँच सात सदस्यों ने भी उसका अनुमोदन किया।

निरञ्जन ने कहा :—

"त्याग-पत्र स्वीकार नहीं किया जा सकता। सर्व सम्मति से सभा का यही निश्चय है।"

हृदयनाथ आश्चर्य चकित हो गया। घबड़ा कर बोला—

"परन्तु मैं तो विवाह करने वाला हूँ !"

सभापति ने स्वयं अपने को गम्भीर बनाया। निरञ्जन एक वचन में ही बात करने लगा।

"उसके लिये तुमको किसने मना किया है ?"

"विवाह पश्चात् मैं इस संस्था में नहीं रह सकता।" हृदयनाथ ने उत्तर दिया।

"ऐसा नियम कहाँ है ? इस नियम को तुम स्वीकार कराना चाहते थे,

परन्तु सभा ने तो स्वीकृति नहीं दिया था! इसलिये तुम्हारा त्याग-पत्र निरर्थक है।"

"मैंने प्रतिज्ञा भङ्ग की है। विवाहित को सभासद के पद पर रहने का अधिकार नहीं है।" हृदय ने कहा।

"जिसने अपने जीवन में कोई प्रतिज्ञा भङ्ग न की हो वह अपना नाम प्रगट करे।" निरञ्जन ने सभी से पूछा।

किसी ने अपना नाम नहीं दिया।

"मैं दस मिनट का समय देता हूँ।" निरञ्जन ने पुनः कहा।

लम्बा दस मिनट का समय भी बीत गया। निरञ्जन ने निर्णय दिया :—

"त्याग-पत्र अस्वीकृत। सभा समाप्त।"

....

"निरञ्जन! मैं प्रतिज्ञा नहीं निभा सका।" एकान्त होने पर हृदयनाथ ने कहा।

'यह ठीक हुआ। मिस कोलिन्स का अभिप्राय है कि Eugenics की दृष्टि से तुम्हारा ही विवाह सार्थक है।"

"मैंने प्रतिज्ञा भंग किया है। तुम प्रतिज्ञा पालन कर रहे हो। मुझसे अधिक श्रेष्ठ हो।"

"एकाध वर्ष अधिक नहीं!"

"मैं उम्र की श्रेष्ठता नहीं कह रहा हूँ। शशिरेखा की सम्मति प्राप्ति बिना रमा के साथ विवाह न करने के तुम्हारे निश्चय में कितना स्वार्थ त्याग है?"

"बकवाद मत करो! इसमें तो मेरा स्वार्थ है, स्वार्थ त्याग नहीं।"

"परन्तु यह आज्ञा जल्दी ही मिल जायगी। वृन्दा और मैंने निश्चय किया है कि माँ जब तक तुम्हारे विवाह के लिये आज्ञा प्रदान नहीं कर देंगी तब तक हम अविवाहित ही रहेंगे।"

"ऐसा क्यों ?" कभी भी आश्चर्य चकित न होने वाला निरञ्जन चकित हो बोल उठा।

किन्तु हृदयनाथ ने उसका उत्तर नहीं दिया। पिता और पुत्रके असमानता पर विचार करते हुए हृदयनाथ ने निरञ्जन की ही महत्ता निश्चित की और उसने उसके पिता के विषय में कभी कोई बात की ही नहीं।